हिमाचल प्रदेश
का
लोक संगीत
संपादक
मोहन राठौ

हिमाचल प्रदेश
का
लोक संगीत

मुख्य संपादक
जगदीश शर्मा

संपादक
मोहन राठौर

संपादन-प्रकाशन सहायक
डॉ. कर्म सिंह

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी
शिमला-171001

ISBN—81-86755-20-9

प्रकाशक : सचिव
हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी
शिमला-171001

संस्करण : 2000

मूल्य : 125/-

मुद्रक : ईशान ऑफसेट एण्ड लेज़र प्रिंटर्स
पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

HIMACHAL PRADESH KA LOK SANGEET

Edited by : *MOHAN RATHOUR*
Published by : Himachal Acadamy of Arts Culture & Languages
Shimla-171001

दो शब्द

प्रो. प्रेमकुमार धूमल
मुख्य मन्त्री हिमाचल प्रदेश
अध्यक्ष
हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी

हिमाचल संस्कृति देव–संस्कृति के रूप में विख्यात है और यहां यह देव संस्कृति हिमाचली लोक कलाओं एवं लोक साहित्य के माध्यम से सतत् प्रवाहमान है। यह लोक साहित्य मुख्यतया श्रुतसाहित्य के रूप में अनादि काल से इस लोक संस्कृति के बीज तत्त्वों को अपने भीतर परम्परा अनुसार सुरक्षित रखे हुए है। प्रदेश में लोकगीतों, लोकगाथाओं एवं गीतियों का विपुल भण्डार है और इनमें प्राचीन सांगीतिक परम्परा अपनी पराकाष्ठा में लक्षित की जा सकती है। यहां का प्राकृतिक वातावरण उन्मुक्त है अतः यहां की लोकसंगीत लहरी भी उन्मुक्त, स्वच्छन्द, सरल तथा सरस है और नैसर्गिक ताल एवं लय में निबद्ध है जो शास्त्रीय तथा अर्द्धशास्त्रीय संगीतात्मकता से परिपूर्ण है इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि शास्त्रीय संगीत लोक संगीत को ही अपना आधार बनाता है।

आज का युग भौतिकवाद से अधिक प्रभावित है अतः मानव–मन भावना–जगत से दूर होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में यह आशंका बनती जा रही है कि कहीं हमारा समाज नैतिकता, प्रकृति या कहिये कि मानवतावाद से विमुख न हो जाये और हम भौतिकवाद की दौड़ में भावना–शून्य, कोरे यान्त्रिक जीव ही बन कर रह जायें। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी संस्कृति के शाश्वत् तत्त्वों से सतत् जुड़े रहें क्योंकि किसी भी समाज का वास्तविक विकास इस बात से आंका जा सकता है कि वह अपनी संस्कृति को कितना अधिक सुरक्षित रखे हुए है। हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी का मूल उद्देश्य ही अपनी संस्कृति का संरक्षण करना है। अकादमी द्वारा संचालित विभिन्न योजनाओं के माध्यम से प्रदेश की लोक संस्कृति एवं कलाओं को सुरक्षित रखने के लिए सार्थक प्रयास किये जा रहे हैं। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि अकादमी ने प्रदेश के विभिन्न भागों में निनादित लोकसंगीत लहरी के विभिन्न स्वरों को भाषिक और सांगीतिक रूप देने का प्रयास किया है ताकि यह श्रुत साहित्य आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रह सके तथा अन्य प्रदेशों का जनमानस इन लोकगीतों व गाथाओं की धुनों से परिचित होकर गेय रूप में इनका आनन्द उठा सके। अकादमी के इस प्रयास के लिए मेरा साधुवाद।

प्राक्कथन

ईश्वरदास धीमान
शिक्षा मन्त्री हिमाचल प्रदेश
उपाध्यक्ष हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी

हिमाच्छादित हिमालय की दुर्गम पर्वतमालाओं और शिवालिक तथा त्रिगर्तीय घाटियों में हिमाचली लोक संगीत लहरी अपने विविध चित्ताकर्षक रूप में सदा गूंजती रहती है। प्रकृति के इस अद्‌भुत विकास में यहां का कण-कण, जन-जन थिरकता रहता है। हिमाचली लोकसंगीत अनादि काल से सभी के लिए आकर्षण का स्रोत रहा है। संगीतज्ञों ने इस संगीत की स्वरलहरियों से लोक संगीत को स्वरबद्ध करने का प्रयत्न किया है। लोकसंगीत की अपनी विशेष लय, गति, ताल और रवानी होती है। जनमानस की यह स्वर लहरी किसी खास छन्द योजना या किसी शास्त्रीय बन्धन में नहीं आती तभी तो यह 'लोक' है, प्रकृत है, शास्त्रीय संगीत से संस्कारित नहीं।

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी अपनी विभिन्न योजनाओं के माध्यम से लोक संस्कृति के विभिन्न रूपों को प्रलेखन, वीडियोकरण, ओडियो कैसेट तथा दृश्य-श्रव्य माध्यमों द्वारा इन्हें भविष्य के लिए सुरक्षित रखने का सराहनीय कार्य कर रही है। पिछले दिनों प्रदेश के लोकगीतों, लोकनृत्यों, लोकगाथाओं, लोककथाओं पर पुस्तकें प्रकाशित की गयीं जिनका न केवल प्रदेश में अपितु इससे बाहर भी स्वागत हुआ है। विशेष रूप से लोकसंस्कृति के अध्येताओं तथा शोधकर्त्ताओं के लिए ये पुस्तकें बहुत उपयोगी सिद्ध हुई हैं। वर्तमान पुस्तक हिमाचल प्रदेश के लोक संगीत के विभिन्न पहलुओं को न केवल उजागर करती है अपितु इसमें सांगीतिक तत्त्वों और समाजशास्त्रीय तत्त्वों का विवेचन भी इसके द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इसके माध्यम से जहां लोकगीतों की मौलिक धुनों को सुरक्षित रखा जा सकेगा वहीं लोकगीतों की स्वरलिपियां भी तैयार कर इनके गेय रूप को मूर्त रूप दिया गया है ताकि संगीतकार इनका लाभ उठा सकें तथा यह श्रुत साहित्य पुस्तकाकार में भी सुरक्षित रहे। लोक संस्कृति की अभिव्यक्ति का हमारे यहां अभी तक इस प्रकार का अधिक कार्य नहीं हुआ है। मैं समझता हूं कि अकादमी का यह कार्य सचमुच बहुत सराहनीय है। इसके माध्यम से लोकमानस की संगीत लहरी को स्वर मिलेगा। अतः यह पुस्तक इस क्षेत्र में कार्य करने वालों के लिए भी आधार का कार्य करेगी।

आमुख

सुभाष नेगी
आयुक्त एवं सचिव (भाषा-संस्कृति)
हिमाचल प्रदेश सरकार, शिमला-2

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि मैदानी क्षेत्रों की ऊहापोह से त्रस्त विश्व की अनेक जातियों ने पुराने समय से हिमाचल प्रदेश में आकर शरण पाई है और समय की धारा के साथ स्वयं को यहां की प्राचीन संस्कृति में आत्मसात् करती गई। दुर्गम भौगोलिक स्थिति के कारण हिमाचल प्रदेश में प्राचीन मानव संस्कृति के विशिष्ट तत्त्व अभी तक सुरक्षित हैं। यहां लोकगीतों और गाथाओं का अपना प्राचीन इतिहास सुरक्षित है जो कि अधिकांशतः लोक साहित्य के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होता रहता है। लोकगीतों का अनाम सर्जक जब किसी अनाम कथा या घटना को वाणी देता है तो एक अनाम संगीत इस लोकवाणी को लिपिबद्ध कर धुन रच देता है। इस प्रकार लोक गीत और संगीत का आपसी तारतम्य लोकमानस की सुरलहरी को जन्म देता है। अभी तक यह संगीत मौखिक गेय रूप में ही जीवित रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि इस सांस्कृतिक विरासत का लेखन-प्रलेखन कर इसे संरक्षित रखा जाए।

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी प्रदेश की सांस्कृतिक थाती के संरक्षण के लिए सतत् प्रयत्नशील है। लोक संस्कृति की विभिन्न विधाओं पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं। हिमाचली लोकगीतों के अतिरिक्त ऑडियो-वीडियो के माध्यम से सम्पूर्ण लोक संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का डॉक्यूमेंटेशन किया जा रहा है। जनजातीय क्षेत्रों में हमारी सांस्कृतिक विरासत की अमूल्य निधि अपने मूल रूप में अभी भी सुरक्षित है जिसे समय रहते प्रलेखित किया जाना आवश्यक है। अतः इस क्षेत्र के सांस्कृतिक प्रलेखन के लिए अकादमी द्वारा एक विस्तृत योजना तैयार की गई है जिसके अधीन इन जनपदों के लोकगीतों, लोकनृत्यों, लोकनाट्यों, लोक उत्सवों, गोम्पाओं और मन्दिरों व अन्य सांस्कृतिक स्थलों व स्मारकों का लेखन-प्रलेखन व वीडियोकरण किया जाएगा।

प्रस्तुत पुस्तक 'हिमाचल प्रदेश का लोक संगीत' लोकविधाओं के प्रलेखन के क्षेत्र में विशेष महत्त्व रखती है। इसमें जहां लोक संगीत के विभिन्न पहलुओं पर अनेक शोधपत्र, लोकसंगीत का शास्त्रीय संगीत के साथ तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है वहीं काफी मात्रा में लोक गीतों की स्वरलिपियां तैयार की गई हैं जिससे प्रदेश के लोकगीतों व तालों तथा संगीत का मौलिक रूप जन-जन तक पहुंच सकेगा। अकादमी का यह प्रयत्न देश के गीतकारों, संगीतकारों, वादकों तथा शोधार्थियों के लिए बहुत लाभप्रद होगा। इस क्षेत्र में आकदमी द्वारा की गई इस पहल के लिए इस कार्य से जुड़े लोग बधाई के पात्र हैं।

लोक सांगीतिक परम्परा और हिमाचल

जगदीश शर्मा
सचिव
हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी

सर्वसाधारण 'जनमानस' अथवा अपने प्राकृत, स्वाभाविक या सीधे-सादे 'रस्टिक' रूप में 'लोगों' को ही 'लोक' का पर्याय माना जाता है। इसे हम ऐसे भी कह सकते हैं कि अपने प्राकृत या तथाकथित असभ्य या असंस्कृत मूल रूप में जनमानस को 'लोक' के स्थूल अर्थ में ग्रहण किया जाता है। प्रत्येक लोक का अपना एक विशेष लोकाचार या रहन-सहन होता है, विशेष लोकानुरंजन और लोक संस्कृति होती है और लोक साहित्य इसी का दर्पण होता है। हिमाचली संस्कृति को देव-संस्कृति कहलाने का विशेष गौरव प्राप्त है। इस प्रकार यह सहज ही कहा जा सकता है कि हिमाचली देव-संस्कृति हिमाचली लोक साहित्य के माध्यम से सतत् प्रवाहमान ही नहीं अपितु यह लोक साहित्य अपने भीतर अनादि काल से इस लोक संस्कृति के बीच तत्त्वों को समाहित किए इन्हें पोषित करते हुए परम्परागत रूप से इसे अक्षुण्ण बनाये है तथा इन्हें संरक्षित रखते हुए पल्लवित व पुष्पित किए है।

लोक साहित्य के अनेक रूपों में लोकगीत या गाथागीत अथवा लोकगाथाओं का विशेष महत्त्व है। यह गाथायें गेय होती हैं अतः इन में कथा तत्त्व व संगीत तत्त्वों का सम्मिश्रण होता है इसलिए यह अधिक ग्राह्य होती हैं और श्रुत साहित्य के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी जीवित रहती हैं। हिमाचल जैसे प्राचीन एवं विशिष्ट सांस्कृतिक धरोहर वाले प्रदेश में लोकगाथाओं का अपना एक विशेष आकर्षण और महत्त्व रहा है। विविधापूर्ण भौगोलिक और वैशिष्ट्यपूर्ण ऐतिहासिक स्थिति के कारण हिमाचल प्रदेश में लोकगाथाओं का एक प्राचीन इतिहास रहा है। यहां किन्नर, किरात, गन्धर्व, नाग, कोल, खश आदि जनजातियों के चिह्न अभी भी विद्यमान हैं। दुर्गम क्षेत्र होने के कारण विश्व प्रसिद्ध भारतीय संस्कृति के अवशेष अब भी यहां सुरक्षित हैं। यही कारण है कि श्रुति-स्मृति के आधार पर विविध प्रकार के लोकगीत और गाथागीत यहां सुरक्षित हैं जिनके मूल पौराणिक स्थल और परम्परायें स्पष्ट रूप में चिह्नित की जा सकती हैं। इनमें चाहे पौराणिक प्रसंग हो, महाभारतकालीन वृत्तान्त हो या वैदिक नदियों का वर्णन अथवा प्राचीन राज्यों व जातियों का उल्लेख। यह सब इन गाथाओं में से किसी न किसी रूप में , कहीं न कहीं, कभी न कभी अवश्य मिल जाता है। कभी किसी गीत में मनु मिलते

हैं तो किसी में जमदग्नि, कहीं परशुराम मिलते हैं तो कहीं मां रेणुका, कहीं रामायण में मां सीता लोक रूप में आती हैं तो कहीं मर्यादापुरुषोत्तम लोकनायक के रूप में। कहीं 'ऐंचली' और 'बरलाज' में पृथ्वी तथा सृष्टि उत्पत्ति और राजा 'बलि' की पौराणिक कथा का अद्‌भुत आख्यान मिलता है तो राजा 'भर्तृहरि' की गाथा पृथक्-पृथक् स्थानों में कुछ-कुछ भिन्नता लिए अपने स्थानीय लोक की पूरी छाप लिए दिखाई देती है। इसी प्रकार 'पहाड़ी लोक रामायण' अपने विभिन्न रूपों में और पहाड़ी महाभारत 'पण्डवायण' के विविध रूपों में गाथागीतों में मुखरित हुई है तो 'गूगा-गाथा' अपने पृथक्-पृथक् रूपों में सुनने को मिलती है, कहीं लोक देवता अथवा शक्तिशाली राजा-राणा या किसी वीरपुरुष की गाथा झेड़ा, हार, बार के रूप में श्रुति-स्मृति के रूप में सुरक्षित है तो कहीं अनेक सतियों का वर्णन मनोहारी और मार्मिक रूप में अनेक अवसरों, उत्सवों, पर्वों या अनुष्ठानों में सुनने को मिलता है और कहीं अनेक युद्धों का जीवन्त चित्रण गाथाओं में सुनने को मिलता है।

कहना नहीं होगा कि इन दुर्गम पर्वत मालाओं में लोक स्वर लहरी अपने विविध चित्ताकर्षक, मनोहारी और मादक रूप में गूंजती रहती है। प्रकृति के कण-कण के साथ यहां का जनमानस थिरक उठता है, स्वर लहरियां तैरने लगती हैं जहां इनके सुन्दर और भव्य रूप के साथ यह झूम उठता है वहीं इसके रौद्र और कठोर रूप का भी संघर्ष तथा करुणामय रूप प्रतिबिम्बित करने लगता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जन्म से मृत्यु तक सभी प्रकार की घटनाओं, प्रेम, करुणा, हास-परिहास, रूदन, युद्ध, देवता, मनौती, बलिदान और त्याग की गाथाएं यहां लोकसर्जक के हृदय-उद्‌गारों से स्वतः फूट पड़ते हैं जिससे घाटियां निनादित हो जाती हैं, जीव-जंगल झूम उठता है तथा जल प्रपात और नदियां कल-कल करती इसे संगीत प्रदान करती हैं। ज़ाहिर है कि लोकसंगीत का यह वातावरण शास्त्रीय गीत की परिधि में नहीं आता, इसकी अपनी लय, गति और ताल तथा रवानी होती है, इसके अपने अलंकार, मुहावरे, वस्तुमिश्रण और शब्द प्रयोग होता है तभी तो यह लोक है, प्रकृत है, मूल है, जनमानस की स्वर लहरी है, किसी विशिष्ट भाषा योजना, छन्द योजना अथवा काव्य सौष्ठव से संस्कारित नहीं और यही कारण है कि यह परम्परागत रूप से श्रुति-स्मृति में जीवन्त है।

यह कहना भी संगत है कि शास्त्रीय संगीत का मूल आधार भी लोक संगीत ही होता है जो पारम्परिक और मूल रूप में लोक संगीत में ही सुरक्षित है। लोक संगीत ताल और लय प्रधान होता है। ऐसे न जाने कितने लोकवादक होते हें जो न साक्षर हैं न ही ताल के बोलों का विधिवत् ज्ञान उन्हें है परन्तु विभिन्न प्रकार की लयात्मकता में वह पूरी कुशलता से बजा लेते हैं और यह भी सत्य है कि अधिकांश लोकधुनें अनेक शास्त्रीय रागों पर आधारित हैं। प्रदेश में पृथक् संगीत शैलियां प्रचलित हैं और प्रायः यह गायक आवश्यकतानुसार शब्द, अक्षर, मात्रा, अन्तरा आदि घटा-बढ़ाकर गा लेते हैं। इसी प्रकार हिमाचली लोक संगीत में ऐसे लोकवाद्यों का परम्परागत रूप से प्रयोग होता आया है। जिनका निर्माण स्थानीय कलाकारों द्वारा स्थानीय उपकरणों से स्वयमेव कर लिया जाता है।

आज के भौतिकवादी युग में यान्त्रिकता मनुष्य की स्वाभाविक सांस्कृतिकता पर हावी होती जा रही है जबकि सोच का आकार भौतिकवादी होता जा रहा है और इसी कारण मनुष्य लोक संस्कृति तथा नैतिकता से दूर होता जा रहा है। जिससे एक आशंका बनी हुई है कि लोक संस्कृति कहीं लुप्त न हो जाए। लोक संस्कृति यदि हमारे पास जीवित रहेगी तो श्रुत साहित्य के रूप में ही, जो गेय होती है और गेयता में कलात्मकता के आधार पर यह श्रुत साहित्य के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी पारम्परिकला से वहन होती रहेगी। इसीलिए आवश्यकता है इस बात की कि इस लोक संगीत को अपने पूरे परिवेश के साथ लोक-ताल, वाद्य तथा नृत्य के साथ जीवित और सुरक्षित रखा जाए तथा अपने प्रदेश से इतर लोक संगीत प्रेमी को भी इसके गेय रूप का आनन्द उठाने का अवसर प्रदान किया जाए। गीतों का तब तक कोई अर्थ नहीं रह जाता जब तक कि इनकी ध्वनियों को स्वरलिपियों में न बांधा जाए अथवा इनकी धुनें तैयार न की जाएं। तभी तो इस सांगीतिक परम्परा का प्रचार-प्रसार सम्भव है और इसी के आधार पर सम्भव है इसका वैज्ञानिक विवेचन एवं विश्लेषण।

लोक कला में एक अद्‌भुत आकर्षण होता है इसीलिए किसी भी स्थान की लोककला किसी भी व्यक्ति को चाहे वह किसी भी स्थान का हो, अपनी ओर आकर्षित कर सकती है। इसीलिए कहा जाता है कि लोककला एकदेशीय होते हुए भी सार्वदेशिक होती है। हिमाचल प्रदेश लोक कलाओं का आधार है यहां नदी-नाले और कल-कल निनादित झरनों से संगीत फूटता है। इनकी अद्‌भुत लय और गति सांगीतिक लय और गीत की परिचायक है। यहां चीड़ और देवदार झूलते हुए नृत्य करते हैं और पत्तों की ध्वनि ताल देती है। ऐसे में मानव पशु-पक्षी भी संगीत की लय पर झूम उठते हैं। इस लोक संगीत में जहां गायन-वादन-नर्तन का अद्‌भुत सामंजस्य होता है वहीं परिलक्षित होती है इसमें हिमाचली संस्कृति। हिमाचल प्रदेश क्योंकि प्रागैतिहासिकता का एक आधार है, एक संग्रहालय है प्राचीन मानव संस्कृति का, इसीलिए यहां के लोक संगीत में वैदिक संगीत के सभी तत्त्व स्वयमेव मिश्रित हुए परिलक्षित होते हैं।

अतः एक लम्बे समय से इस बात की बहुत बड़ी आवश्यकता अनुभव की जा रही थी कि हिमाचल के लोकसंगीत के सामाजिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, सांगीतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक पक्ष का स्पष्ट निरूपण किया जाए। इसके व्यावहारिक और प्रचलित रूप की शास्त्रीय रूप के साथ जांच-परख की जाए।

अकादमी की एक संगीत कार्यशाला में देश तथा प्रदेश के प्रख्यात संगीतकारों, लोकवाद्यवादकों व संगीत रचनाकारों ने हिमाचली लोक संगीत के विभिन्न पहलुओं, इसकी उत्पत्ति, इसकी शास्त्रीय आधारभूमि, रागछाया, रस योजना, लोकवाद्य, ताल तथा इसका शास्त्रीय सांगीतिक तत्वों के साथ तुलनात्मक अध्ययन, विश्लेषण और विवेचन करते हुए अपने शोध पत्र प्रस्तुत किए। इन सभी पत्रों का निरूपण व्यावहारिक रूप से डैमोस्ट्रेट किया तथा सामान्य चर्चा व शोध के उपरान्त इनका सर्वमान्य रूप सामने आया। उसी का परिणाम है यह संकलन-'हिमाचल प्रदेश का लोक संगीत'।

प्रस्तुत संकलन में शोधपत्रों के अतिरिक्त सन्दर्भ के रूप में दिए गए लगभग 70 लोकगीतों की स्वरलिपियां भी तैयार की गई हैं। इन स्वरलिपियों या धुनों के माध्यम से लोकगीतों तथा लोककथाओं का मौखिक रूप जन-जन तक पहुंच सकेगा तथा लुप्तप्रायः इन रूपों को जीवित रखा जा सकेगा। अन्य स्थानों के संगीतकार प्रदेश के लोकगीतों, लोकतालों का गायन-वादन सफलतापूर्वक कर सकेंगे। लोक गीतों की स्वरलिपियां तैयार करने का प्रयास संगीतकारों संगीत अध्ययेताओं, गायकों, वादकों तथा अन्य जिज्ञासुओं के लिए भी लाभकारी होगा, ऐसा विश्वास है।

सचिव अकादमी का कार्यभार ग्रहण करने पर मैंने पाया कि कुछ उपयोगी पांडुलिपियां संकलन-सम्पादन के उपरांत प्रकाशन हेतु प्रस्तुत थीं जिनमें कतिपय संशोधन-परिवर्तन अपेक्षित थे इनमें प्रस्तुत पुस्तक भी शामिल थी जिसका प्रकाशन धनाभाव के कारण रुका पड़ा था।

हिमाचल प्रदेश के माननीय मुख्यमंत्री प्रो॰ प्रेमकुमार धूमल जी की कृपा से तथा माननीय शिक्षा मंत्री श्री ईश्वर दास धीमान जी के सद्प्रयासों से अकादमी को जो आधिक्य प्राप्त हुआ उसी के अन्तर्गत इसका प्रकाशन संभव हो सका है। अकादमी इसके लिए इनकी आभारी है।

इस पुस्तक के संकलन व सम्पादन के श्रमसाध्य कार्य का निष्पादन श्री मोहन राठौर ने किया है और शोध पत्रों के परिमार्जन तथा निरूपण में श्री एस॰ शशि तथा श्री रामदयाल नीरज का विशेष योगदान रहा है। इस पुस्तक में प्रकाशित सभी रचनाकारों के भी हम आभारी हैं तथा आशा करते हैं कि आपके सुझाव हमें इसके आगामी संशोधन में सहायक होंगे।

सम्पादकीय

लोक जन-मानस की सामूहिकता से झलकता है, नैसर्गिक होता है जो स्वतः स्फूर्त तथा क्षेत्र विशेष की सामूहिक कलात्मक अभिव्यक्ति करे अर्थात् लोक वह अनचिह्नित, अविवर्णनीय, अनिर्वचनीय स्रोत है जो दुनिया भर की तमाम संस्कारित तथा मौलिक कलाओं की उद्गमस्थली है। पश्चिमी देशों के अनेक विद्वान नगर वासियों को भी लोक कहने से नहीं चूकते परन्तु नगरीय सभ्यता में न तो पारस्परिकता है, न सांझापन और न ही सामूहिकता झलकती है।

अक्सर नगरीय सभ्यता की संस्कृति में जनश्रुतियों का अभाव रहता है जो लोक कलाओं की पहली पहचान है। नगरीय सभ्यता केवल व्यक्तिपरक होती है जो लोक संस्कृति को नकारती है। लोक की अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति है। जब कि नगरीय सभ्यता मौलिक सामूहिक चेतना से विहीन और उपभोगतावाद पर आधारित। जनसाधारण समूह में पनपे संस्कारों के मूर्त्तरूप में सुरक्षित रहने को 'लोक' कहा जाता है। हर साधारण जनसमूह का अपना लोकाचार होता है जो शास्त्र से भिन्न भी हो सकता है।

अशिक्षित अथवा असंस्कृत व्यक्ति को प्राकृत कहा जाता है अतः जिस कला को सीखने के लिए किसी विशिष्ट शिक्षा, अभ्यास अथवा साधना की आवश्यकता नहीं होती उसे प्राकृत कला ही कहा जायेगा। जो व्यक्ति अन्य शास्त्रों में शिक्षित है परन्तु संगीत कला में अशिक्षित है वह संगीत की दृष्टि से प्राकृत कहलाएगा अतः उसके द्वारा गाए जाने वाले गीत प्राकृत अर्थात् लोकगीत ही होंगे। जिस प्रकार हिमाचल प्रदेश में- रोहतांग, सांचपास, जलोड़ीपास, कुंजुम पास तथा अन्य पर्वत शृंखलायें जो अक्सर वर्ष में आठ मास तक बर्फ से ढकी रहती हैं और जब इन पर्वत शिखरों से बर्फ पिघल जाती है तो नाना प्रकार के फूल पर्वतों पर खिलते हैं। इन फूलों के बागों का माली कोई नहीं। उसी प्रकार लोक-संस्कार-लोकगीत भी बनते-बिगड़ते रहते हैं जिनका रचयिता वाग्गेयकार कोई एक व्यक्ति नहीं हो सकता। गीत की एक पंक्ति कोई लोक गायक जोड़ता है तो दूसरी पंक्ति कोई दूसरा लोक गायक। बस इसी प्रकार गीत जब विभिन्न जनपदों में गाया जाने लगता है तो गीत

की धुन तथा शब्दों में फेरबदल लोक भाषाओं के लहज़ों के अनुरूप होता चला जाता है। हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्रों में फुल्लैच उत्सवों का आयोजन प्रतिवर्ष ग्रीष्म ऋतु में होता है। गांव से लोक गीत गाते लोग वाद्यों को बजाते तथा नृत्य करते ऊंची पर्वत-चोटियों पर जाते हैं तथा फूलों को तोड़ कर लाते हैं मालाओं, गुलदस्तों को बनाकर देव मंदिरों में रखते हैं। वास्तव में लोकगीत तथा शास्त्रीय संगीत में भेद केवल इतना ही है कि 'लोकसंगीत' रोहतांग जोत पर खिले अनेकों फूल हैं तथा "शास्त्रीय संगीत" विभिन्न फूलों को चुन कर, करीने से सजाया हुआ गुलदस्ता है, जो शास्त्रीय-संगीत का स्वरूप बन जाता है।

संक्षेप में लोकसंगीत भावना प्रधान स्वच्छन्दरूप से गेय, शास्त्र तथा नियमों के बंधनों से मुक्त गायन-वादन, नृत्य विद्या है जबकि शास्त्रीय संगीत, नियमों तथा शास्त्र, गणित के बन्धनों में बद्ध ब्रह्म विद्या है।

संगीत के प्राचीनकाल में अनेकों रागों का नामकरण देश की प्रान्तीय लोक भाषाओं तथा लोकधुनों के आधारपर किया गया जैसे—कलिंग देश से राग कलिङ्ड़ा, मारवाड़ से राग मांड़, खम्भात जनपद से राग खम्बावती, गुज़रात प्रदेश की गुर्जरी तोड़ी, गौड़ प्रदेश से गौड़ सारंग व गौड़ मल्हार जौनपुर जनपद से राग जौनपुरी। कम्बोज़ देश से राग कामोद, बृन्दावन जनपद से बृन्दावनी सारंग, देवगिरि प्रान्त का देवगिरि बिलावल, पहाड़ी प्रान्तों से राग पहाड़ी, पूरब देश से राग पूर्वी, भोपाल राज्य से राग भूपाली तथा भूपाल तोड़ी, मालवा प्रदेश से राग मालवी, मुलतान प्रान्त से राग मुलतानी, यवन जनपद से राग यमन कल्याण, यामिनी बिलावल, सिंध प्रदेश से राग सिंधूरा, सिन्ध भैरवी, सौराष्ट्र देश से राग सौरठ, मारवाड़ प्रदेश से राग मारवा, प्लासी जनपद से राग प्लासी तथा भीमप्लासी।

उक्त उदाहरणों से यह बात साबित होती है कि अनेकों राज्यों की लोकधुनों ने रागों का स्वरूप तभी प्राप्त किया होगा जब यह धुनें भारतवर्ष के समस्त प्रान्तों में लोकप्रिय हुई होंगी। वैदिक काल से लोक धुने दो स्वरों तीन स्वरों तथा चार स्वरों में गाई बजाई जाती थी तथा वेदों की अनेक ऋचायें भी इन्हीं धुनों में गाई जाती थीं। परन्तु सातवीं शताब्दी में जब तुम्बरूक ऋषि ने सात स्वरों का आविष्कार किया, इन्हीं लोक धुनों में अनेक स्वरों का प्रयोग विवादी स्वरों के रूप में किये जाने से अनेकों रागों का जन्म इन्हीं प्रान्तीय धुनों से ही हुआ तथा बाद में रागों के नाम देवी-देवताओं, ऋतुओं तथा तीर्थों के नाम पर रखे जाने लगे।

कालांतर में संगीत को राज-आश्रय प्राप्त हुआ तथा संगीत अनेक घरानों में पनपने लगा। राजदरबारों में अनेकों गायक-वादक, नर्तक आश्रय प्राप्त करके साधना करने लगे तो अनेकों राजघरानों में घरानों की महत्ता को बनाये रखने के आधार पर अनेकों रागों का जन्म हुआ तथा रागों के नामकरण पर भी राजसत्ता का प्रभाव

पड़ने लगा। रागों की बन्दिशों में राजाओं की मान बड़ाई के गीत गाये जाने लगे जिससे दरबारी गायन की परम्परा पनपी परन्तु लोक संगीत अपनी मौलिक परम्परा, इतिहास, संस्कृति को समेटे हुये निरन्तर विकसित होता रहा।

लोकसंगीत की परम्परा में हिमाचल प्रदेश अपनी मौलिकता तथा सांगीतिक विशेषताओं के आधार पर अपना महत्व कायम किये हुए है। यहां लोकसंगीत की समस्त विधाओं में लोक गायकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

'हिमाचली लोकसंगीत' के माध्यम से लोकगीतों की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालना लोकगीतों के मूलस्वरूप तथा लोकगीतों की पहचान के लिये एक सामयिक व उपयोगी प्रयास सिद्ध होगा। लोकसंगीत की विशेषताओं को निम्न शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है–

1. लोक-संस्कृति लोकगीतों के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी जनश्रुति के आधार पर सुरक्षित रहती है तथा नई पीढ़ी को विरासत में पिछली पीढ़ी से प्राप्त होती रहती है।
2. लोकगीत स्वयं उद्‌गार बनकर कंठ से फूटते हैं जिनका प्रवाह लोकानुरंजन बनता है।
3. लोकगीतों का गीतकार तथा (कम्पोज़र) संगीतकार अज्ञात होता है।
4. लोकगीतों में सामूहिकता, पुनरावृत्ति, मौखिक परम्परा तथा स्वच्छन्दता का समावेश अधिकांश रहता है।
5. लोकगीत बनते तथा बिगड़ते रहते हैं तथा जाति-पाति, देश काल की सीमा के बंधन से मुक्त होते हैं।
6. सामयिक विषयों के समावेश की प्रक्रिया अपनाते हुए भी छन्द की मौलिकता बनाये रखना हिमाचली लोक गीतों की विशेषता है।
7. लोक गीत भौगोलिक, ऐतिहासिक मान्यताओं तथा धार्मिक आस्थाओं और लोक संस्कृति के संरक्षण, संवर्धन एवं विकास की प्रक्रिया का पारम्परिक व उपयोगी माध्यम हैं।

इन्हीं मौलिक विशेषताओं के आधार पर अनेकों आक्रमणों के बावजूद भी लोक गीतों के माध्यम से हमारी सांस्कृतिक विरासत सुरक्षित रही है जिसका श्रेय उन अज्ञात गीतकारों और गायकों को जाता है जिन्होंने पीढ़ी दर पीढ़ी इस परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखा।

वर्तमान इलैक्ट्रोनिक संचार माध्यमों के प्रचलन एवं अंधाधुन्ध अनुकरण से जहां वैज्ञानिक विधि से लोक गीतों के संरक्षण का सुअवसर प्राप्त हुआ है वहां लोक संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में लोक गीतों की मौलिक गेयता तथा शब्द रचना एवं

परम्परा के नष्ट-भ्रष्ट होने का भी भय पैदा हो गया है। लोक संस्कृति की विरासत के संरक्षण और उभरते लोक गायकों, संगीतज्ञों के प्रशिक्षण तथा पारम्परिक लोक गीतों के प्रलेखन के लिये अकादमी द्वारा समय-समय पर कार्यशालाओं, सेमिनारों, कला शिविरों का आयोजन किया जाता है।

जिससे प्रशिक्षण और जागरूकता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धियां अर्जित की जा सकी हैं।

पारम्परिक लोक कलाओं के प्रशिक्षण के लिये हिमाचल अकादमी द्वारा गुरु-शिष्य परम्परा के अंतर्गत विभिन्न कला केन्द्रों की स्थापना की जा रही है। जिनमें सिद्धहस्त गुरुओं के मार्गदर्शन में नयी पीढ़ी के कलाकार अपनी कला को निखारने का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं।

प्रदेश के ख्यातिप्राप्त साहित्य कला समीक्षक श्री रामदयाल नीरज तथा संगीतकार श्री एस. शशि का परामर्श व सहयोग कार्यशाला के आयोजन तथा लोक संगीत के विभिन्न पहलूओं पर विचार-विमर्श के लिये प्राप्त होता रहा, जिसके लिये अकादमी इनकी आभारी है। इसके साथ अकादमी उन सभी कलाकारों, विद्वान लेखकों के प्रति भी कृतज्ञता व्यक्त करती है जिन्होंने इस परियोजना में सक्रिय सहयोग प्रदान किया।

प्रदेश के लोक संगीत के संरक्षण, पारम्परिक प्रशिक्षण तथा सांगीतिक अध्ययन की दिशा में यह हमारा प्रथम प्रयास है जिसमें लुप्त हो रहे लोक तालों तथा लोक गीतों की स्वरलिपियां तैयार करके प्रलेखन की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण कार्य पुस्तक रूप में आपके सामने है जिसके लिये अकादमी के सचिव तथा समस्त पदाधिकारी बधाई के पात्र हैं। आशा है सुधी विद्वान, संगीतज्ञ तथा कलाप्रेमी जन इस प्रयास का स्वागत करते हुये आगामी परियोजनाओं में भी अकादमी के प्रति सहयोग की भावना बनाये रखेंगे।

– मोहन राठौर

क्रम

लोकसंगीत की व्युत्पत्ति तथा हिमाचल प्रदेश के लोकगीतों पर वैदिक संस्कृति का प्रभाव

प्रो॰ भीमसेन शर्मा

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने लोकगीत को ग्रामीण जगत की फुलवारी कहा है, वे अन्नेत्र सभ्यता के वेद हैं। "लोक" शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि संसार में जीवन के सरल व सुगम प्रवाह का नाम ही "लोक" है। संगीत की परिभाषा में साधरणतया गायन, वादन व नर्तन के समावेश को लिया गया है। अर्थात् स्वर, लय और भाव। या यूं कहें कि स्वर शब्द (साहित्य) वादन, (तन्त्री, सुषिर और अवनद्ध) नृत्य, (लययुक्त भंगिमायें)। विशेषतया "संगीत" शब्द का अर्थ, संगीत की प्रत्येक क्रिया की शिक्षा, सांगीतिक वैज्ञानिकता का क्रियात्मक एवं साधना द्वारा व्यावहारिक प्रयोगात्मक ज्ञान—अर्थात् निरन्तर अभ्यास संगीतजीवी व्यक्ति के लिये परमावश्यक है। प्रत्येक स्वर सन्निवेश को भलीभांन्ति समझ-बूझकर प्रयोग में लाना तथा क्रिया को परिमार्जित रूप देना, उसके शास्त्रीय विधि-विधान के अनुसार सहदय श्रोताओं का मनोरंजन करना, संगीत का परम ध्येय माना जाता है।

लोकगान या लोकगीत को "संगीत" की संज्ञा देना यथार्थ नहीं है। यह केवल गान है, संगीत नहीं। लोकाचार में लोकगीतों को या गान को ही लोगों ने संगीत कहना आरंभ कर दिया, संगीत तो एक पूर्ण अनुशासित कला है। जबकि लोकगीत, मानव मन की सहज सुख-दुःख के भावों की अभिव्यक्ति। इस भ्रान्ति से निःसंदेह "लोक" की गरिमा और वैशिष्ट्य को आघात पहुँचा है।

लोकसंस्कृति (गीत) शास्त्रीय संगीत की पौधशाला है। शास्त्रीयता के पृष्ठ अथवा मूल में लोक अथवा ग्रामगीत ही सक्रिय रहे हैं। लोक गीतों द्वारा ही शास्त्रीय संगीत पोषित एवं अनुप्राणित हुआ है और यह ग्राम्यगीत ही शास्त्रीय संगीत के अमर बीज हैं। इस धरोहर का संरक्षण अति अनिवार्य है वरन् आज के भौतिक

युग में जिस तीव्रता से मशीनीकरण हो रहा है, "लोक" शब्द का अर्थ व संज्ञा लुप्त होने की पूर्ण संभावना है।

इतिहास के मध्ययुग में ईरानी व अन्य विदेशी शासकों के आगमन और हमारी संस्कृ॰ पर उनके आधिपत्य के प्रभाव से लोकगीतों व शास्त्रीय राग पद्धति पर गहरा कुठाराघात हुआ जिसके फलस्वरूप लोक व संगीत के समुचित रूप में संकीर्णता आई। वैदिक व पूर्व वैदिक काल में गाई जाने वाली लोकधुनों में एक से चार स्वरों तक का क्रमशः गान होता था। हमारे षड्ज ग्राम तथा मध्यम ग्रामिक स्वर सप्तक में सात शुद्ध स्वर तथा दो विकृत, अन्तर और काकली केवल नौ स्वरों तथा बाईस श्रुतिओं द्वारा भरतकालीन "जाति गान" होता था। क्योंकि ईरानी पद्धति के "अष्टक" में बारह स्वर होते हैं। अर्थात् मूल स्वर व्यवस्था में अन्तर होने से भारतीय संगीत पद्धति तथा जनमानस पर इनके क्षुद्र व संकीर्ण स्वरान्तरालों ने घर कर लिया, फलस्वरूप भारतीय संगीत के मूल स्वरूप में परिवर्तन होने लगा, निःसंदेह लोकगीतों पर इस परिवर्तन के रंग का प्रभाव पड़ा। भारतीय मूल की लोकधुनों का रूप बदला और भारतीय शास्त्रीय संगीत को समृद्ध तथा विस्तृत बनाने वाले लोक स्वर के बीजों में संक्रमण उत्पन्न हो गया।

ईरानी बारह स्वरों की संगीत पद्धति ने हमारी वैदिक संगीत पद्धति और पूर्व वैदिक लोकगान पद्धति को गहराई तक प्रभावित किया। आज भारतीय मूल की लोकधुनें जो एक या दो स्वरों में गाई जाती थीं बहुत ही कम प्राप्त हैं अथवा लगभग समाप्त ह्री हैं। यही धुनें वैदिक काल में आर्चिक, गाथिक और सामिक स्वरान्तर के नाम से जानी जाती थीं।

निःस्संदेह लोकधुनों में विकार मध्ययुग या विदेशियों के आगमन से ही आरंभ हो गया था। इसी प्रभाव के अन्तर्गत गीतों में "अन्तरा" अर्थात् गीत का दूसरा भाग जुड़ गया। (उत्तराङ्ग) लोकधुनों में स्वर के दो-दो रूप (कोमल-तीव्र स्वर) भी प्रयुक्त होने लगे, स्वरों की संख्या लोकधुनों में सात से भी अधिक हो गई। यह सब मध्ययुगीन खिचड़ी संस्कृति का प्रभाव ही समझना चाहिए। भारतीय संगीत की "मार्ग और वेदाश्रित" और अपरिवर्तनीय पद्धति सम्भवतः अमीर खुसरो की इन्द्रप्रस्थ पद्धति के प्रभावस्वरूप-लोक की चिन्तन शैली में परिवर्तन का कारण बनीं।

वैदिककालीन संस्कृति में, सप्तक अथवा गान आवरोहात्मक था। ऋषि-मुनि यज्ञ के अवसरों पर विभिन्न ऋचाओं का गान करते थे। यह गान किसी नवीन ऋचा का भी हो सकता था तथा किसी प्राचीन ऋचा को भी गेय रूप देकर किया जा सकता था। केवल सम्प्रदाय विशेष के ऋषि ही "साम गान" करने के अधिकारी थे। भारद्वाज ऋषि के द्वारा (बृहत्) सामवेद का आह्वान वशिष्ठ के द्वारा रथान्तर का धारण और सुत सोम नामक यज्ञ में साम के द्वारा स्तुति, यह तीनों ही ऋग्वेद

में चर्चित हुए हैं। भारद्वाज और वशिष्ठ ऋषियों को साम विशेष क़ा गायक सिद्ध करते हैं।

वेदकाल में आर्चिक, गाथिक और सामिक तथा स्वरान्तर इस प्रकार एक, दो, तीन और चार स्वरों में विभिन्न ऋचाओं का गान और पांच छः सात स्वर आदि तक गान में प्रयुक्त होने लगे थे। एक स्वर के प्रयोग को आर्चिकगान, दो स्वरों के प्रयोग को गाथिकगान, तीन स्वरों के प्रयोग को सामिकगान तथा चार स्वरों के प्रयोग को स्वरान्तर आदि के नामों से जाना जाता था। पांच स्वरों के प्रयोग को औड्व, छः स्वरों के प्रयोग को षाड्व तथा सात स्वरों के प्रयोग को सम्पूर्ण कहा जाता था। इन उपर्युक्त औड्व, षाड्व, सम्पूर्ण तीनों स्वर संख्यक प्रयोगों से षड्ज, ग्रामिक तथा मध्यम ग्रामिक स्वर जातिगान में प्रयुक्त होते थे। आधुनिक शास्त्रीय संगीत में भी "राग" गायन-वादन के प्रयोग में भी इन औड्व, षाड्व सर्म्पूण जातियों का वैसा ही स्थान है जैसा भरत के जाति गान में था और भरतकालीन जातियाँ आधुनिक शास्त्रीय रागों की जननी मानी गई हैं। शास्त्रीय गायन विधान में आधुनिक रागों में लगने वाले स्वरों की संख्या कम से कम पांच और अधिक से अधिक नौ तथा बारह तक भी हो सकती हैं, किन्तु लोग गीतों में अधिक से अधिक चार स्वर ही होने चाहिएं ऐसा अनेक विद्वानों ने अनुभव के आधार पर माना है।

हिमाचल प्रदेश में दो, तीन चार, स्वरों में गाए जाने वाले अनेक लोकगीत इस बात को प्रमाणित करते हैं कि वे अतिप्राचीन लोकपरंपरा से चले आ रहे हैं। ऐसे हिमाचली लोकगीतों की भी संख्या कम नहीं है जिनमें नौ स्वरों तक के प्रयोग होते हैं। लोक तत्त्व की अपेक्षा उन लोकगीतों में शास्त्रीय तत्त्व अधिक हैं और ऐसे गीतों को कुछ संगीतजीवी व्यक्तियों ने रागों के अपने ज्ञानानुसार लोक में प्रचलित लोकगीतों के बोलों को रागाश्रित धुनों में रचने का प्रयास किया, लोक की विशेषता यही है कि वह अपने अनघड़ रूप में सदियों-2 तक बीज रूप में विद्यमान रहता है। उन लोकगीतों के आधार पर अन्य प्रकार की संरचनाएं होती रहती हैं। लेकिन मूलतः लोकगीत के मूल तत्त्वों में कोई परिर्वतन लोकगायकों के द्वारा नहीं होता, वे उसे सुरक्षित रखते हैं, तथा उसमें होने वाले परिवर्तन को अच्छा नहीं मानते क्योंकि यह ऐसा नैसर्गिक बीज है जिसके नष्ट हो जाने से पुनः उसे पूर्ववत् रूप में प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस अखंड सत्य को महर्षि भरत जैसे भविष्यद्रष्टा ने समझा था तथा उसी के परिणामस्वरूप अपने काल में प्रचलित सभी लोकधुनों का विश्लेषण किया और उनके आधार पर अपने "नाट्यशास्त्र" में संगीत तत्त्वों का विवेचन वैज्ञानिकता के साथ किया। भारतीय संगीत वाड्.मय में उनका यह ग्रन्थ "नाट्य शास्त्र" के नाम से संगीत का आधार माना जाता है तथा इस ग्रन्थ में स्वर, ग्राम, मूर्छना, जाति गान तथा उसके लक्षण और उनके ध्यान इत्यादि तथा

संगीत सम्बधी विषयों का शास्त्रीय विवेचन भी किया है। अपने समय के सभी गान प्रकारों का विवेचन उन्होंने "ध्रुवा गान" के अन्तर्गत किया है जिसको गम्भीरतापूर्वक मनन करने से ज्ञात होता है कि "ध्रुव, गान" के छः भेद, जो उन्होंने अपने नाट्य शास्त्र में वर्णित किए हैं वे आज भी हिमाचली लोकगीतों में न्यूनाधिक अंशों में विद्यमान हैं तथा उन जातियों से ही आधुनिक प्रचलित रागों का प्रचलित शास्त्रीय रूप संगीत जगत को प्राप्त हुआ है।

भरतोक्त जातियों में अधिकतर जातियाँ औड्वित् अर्थात् पांच स्वरों, कुछ छः, कुछ सात स्वरों की हैं तथा कुछ मिश्र अथवा संकीर्ण भी थीं। ये सब जानने से सिद्ध होता है कि वेद में सामगान तथा भरत काल में जातिगान को लोक में प्रचलित लोकगीतों की धुनों का विश्लेषण करके उन्हें शास्त्रीय रूप दिया गया तथा नाट्य में इन "ध्रुवाओं" का गान आवश्यकतानुसार निर्धारित किया गया।

वेद तथा नाट्य शास्त्र में प्राप्त (उदात्त, अनुदात्त और स्वरित) ये तीनों स्वर भारतीय स्वर सप्तक अर्थात् सम्वाद, स्वर, ग्राम, जाति, राग आदि का प्राकृतिक मूल तत्त्व है।

भरत काल में गेय 'ध्रुवा' के छः भेद

1. शीर्षिका : प्रयोग में शीर्ष स्थानीय होने के कारण इसकी संज्ञा 'शीर्षिका' है। यह शृंगार रस प्रधान ध्रुवागान है इसमें आधुनिक सभी प्रकार के शृंगार गीतों को भलीभांति समझा जा सकता है।

2. उद्गाता : (उद्धता) उधद्र होने के कारण इसकी संज्ञा उद्रगाता है। प्रधान वीर एवं रौद्र रस में इस ध्रुवा का प्रयोग होता है। इसके अन्तर्गत गाथा गान भली भांति चरितार्थ होता है।

3. अनुबन्धा : इसमें गति, लय, वाद्य गीत, पद, वर्ण, अक्षर, विभाव, अनुभाव व संचारीभाव को गीत एवं रस में नियत रूप से अनुबद्ध करने के कारण इस ध्रुवा की संज्ञा "अनुबन्धा" है। आधुनिक समय में इस ध्रुवा का लक्षण आवश्यकतानुसार हुई संरचना में भली भांति लक्षित होता है।

4. विलंबिता : पात्रों के मनोगत भावों का भली भांति परिचय देने वाली ध्रुवा 'विलंबिता' कहलाती है। इसकी गति द्रुत नहीं होती। इसकी गति विलम्बित होती है। विलाप औत्सौक्य क्षोभ, दैन्य, चिन्ता और प्रत्यक्ष दुःख में विलम्बित लय वाली विलम्बित ध्रुवा का प्रयोग आधुनिक "लम्बी भाषा" के अनिबद्ध लोकगीतों में सुन सकते हैं। इसमें खुली गंगी (अनिबद्ध) बिलासपुर का मोहणा, चम्बा का सुकरात, पंजाब का हीर, कांगड़ा की खुली भेंटें आदि विलंबिता के सजीव उदाहरण हैं।

5. अड्डितः शृंगार रस सम्भूत और शृंगार उत्पन्न गुणों से युक्त सापेक्ष भाव

और मनोहर ध्रुवा "अइडिता" कहलाती है। दिव्यांगना तथा राज-स्त्रियों में ये ध्रुवा शोभा पाती है। आधुनिक सभी शृंगारिक नारियाँ इस ध्रुवा में देखी जा सकती हैं।

6. **अवकृष्टा :** अवकृष्ट अक्षरों से युक्त होने के कारण इसकी संज्ञा 'अवकृष्टा' है। बद्ध, निरुद्ध, पतित और व्यथित अवस्था के प्रदर्शन के लिए करुण रस में इस अवकृष्टा ध्रुवा का विनियोग है । आधुनिक काल में करुण रस प्रधान वियोग शृंगार के सभी लोकगीतों को अवकृष्टा ध्रुवा में देखा जा सकता है।

टिप्पणी : किसी काल में वैदिक ऋचाओं की भाषा लोक भाषा थी। कालान्तर में लोक भाषा संस्कृत से भिन्न हो गई। एक युग में शैव सम्प्रदाय ने लौकिक वाक्यों का गान "रिक् गाथा" और साम की शैली में किया और वैदिक शैली में गीयमान लौकिक वाक्यों की संज्ञा भी लौकिक रिक्, लौकिक गाथा और लौकिक साम रखी थी। शैव सम्प्रदाय में कहा गया कि ऐसे गीतों का निर्माण ब्रह्मा ने शिव स्तुति के लिए किया था और इनसे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

नाट्य में संगीत : प्रकरण गीतों के प्रयोग को पूर्वरंग में स्थान देकर 14 प्रकरण गीतों के वृत्तों की संज्ञा ध्रुवा थी। नाट्य में गृहीत संगीत में रागों की "जननी" जातियों को ग्रहण भी किया गया था और उनसे उत्पन्न रागों और उनमें प्रयुक्त तालों का विकास भी एक सीमा तक भरत काल में हो चुका था। प्रकरण गीतों का समस्त संगीत नाटक के पूर्व रंग में मंगलार्थ ले लिया गया था परन्तु प्रकरण गीतों का उद्देश्य जहाँ शिवस्तुति था वहाँ नाट्य में प्रयुज्यमान संगीत का प्रयोजन जन-मनोरंजन था।

नाट्य वेद में सभी वर्णों को सम्मिलित होने का अधिकार दिया गया है। लोक जीवन इसका आधार बना क्योंकि सुख-दुःख लोक अवस्था का अभिनय ही नाट्य का ध्येय है। मनुष्य का गुण-गान करने जिन कलाकारों को वैदिक युग में हेय दृष्टि से देखा जाता था, नाट्य में उनकी प्रतिष्ठा थी।

निष्कर्ष

हिमाचली लोकगीतों पर निःसंदेह पूर्व वैदिक एंव वैदिक काल के ऋचा गान (मन्त्रगान) का अभूतपूर्व प्रभाव है क्योंकि आज भी प्रदेश के सुदूर एवं वर्तमान परिवर्तन से अछूते ऐसे लोकगीत सुनने में आये हैं जो वैदिक छाप का सजीव प्रमाण हैं। आवश्यकता है कि इनका संरक्षण, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से संगीतात्मक विश्लेशण भी क्रमबद्ध रूप से किया जाये तभी यह अमूल्य धरोहर अपने शुद्ध एवं वास्तविक रूप में भावी पीढ़ी को संस्कार व लोकधुनें देने में सहायक होगी।

■

हिमाचल प्रदेश के लोक तालों, देव तालों तथा संस्कार तालों का सोदाहरण निरूपण

विद्यानन्द सरैक

बर्फ की चिट्टी चादर ओढ़े भारत के प्रहरी हिमालय पर्वत के आंचल में बसा हिमाचल प्रदेश विकट भौगौलिक स्थिति के होते हुए भी बहुरंगी अतिप्राचीन सांस्कृतिक जीवन से लदी विभिन्न वादियों की अलौकिकला सुसज्जित है। हर वादी में बहती समीर, नदी नालों के स्वर इस की मूक अभिव्यक्ति है। हर वादी की बोली में अलग-अलग लहजा, गीतों की अनूठी लय, रीती-रिवाज, खान-पान में मनमोहक दृश्य का समावेश है।

इन नदी-नालों के दृश्य की भांति लोक संस्कृति की गहराईयां तथा गगनचुम्बी पर्वतों के समान ऊँची उड़ान अनूठे रंगों को मुखरित करते हैं। यह मौखिक साहित्य का विशाल संग्रह है।

इस कलात्मक धरा पर बसने वाला प्रत्येक प्राणी कलाकार, साहित्यकार, मूर्तिकार है जो मौखिक परम्पराओं से अनायास इन वादियों प्राकृतिक छटा में स्वतः सीखता आया है। इन रचनाओं के खजाने को सभी ने युगों-यगों से परिवर्तनों के हर पहलुओं को जोड़कर विरासत के हक को अदा किया है। यही नहीं नवचेतना के स्वरों को अतीत से जोड़ते हुए मूल विधाओं को भी जीवित रखा है। इस लोक संस्कृति की मौखिक पुस्तिका में सभी के योगदान की अतीत से आने वाले कल तक खूब गुंजाइश उदारता से सुरक्षित रखी है। फलस्वरूप इस बहुरंगी संस्कृति की मौखिक रचनाओं में सभी ने अपना-अपना योगदान दिया है। जिसके फलस्वरूप आज यहां अतीत की समृद्ध मूल संस्कृति की झलक निखरती है।

मन्दिरों में लकड़ी पर चित्रकला, मूर्तिकला में ऐतिहासिक चित्रण की अनूठी परिक्रम का समावेश है। झूरी, लामण, छोरु, भौरू, के साहित्यिक रंगों ने 'भर्तृहरि' के शृंगार शतक को मात दी है। प्वाड़े, हारों, वारों, साका के अलंकारिक रसयुक्त पदों ने रामायण की भांति उड़ानें भरी हैं। इन रचनाकारों का नाम पता नहीं लेकिन

इन रचनाओं में मौलिकता के साथ जीवित आत्माओं की चेतना, वेदना, प्रसन्नता, मोह, शिक्षाएं विम्बित हैं। बिलासपुर का मोहणा, चम्बा में रानी सूही के बलिदान गाथाओं का गेय वर्णन अनूठी अभिव्यक्ति है। इन अज्ञात कवियों की सुन्दर कल्पनाओं के संग जब लोक तालों की सहभागिता का समावेश होता है तथा नृत्य के लिए हर ग्रामवासी का जब कदम थिरकने लगता तो मन सहज में ही अतीत से नाता जोड़े आत्मविभोर हो उठता है। ये लोक ताल जन्म से मृत्यु तक खुशी, ग़मी, युद्ध, विजय, तीज-त्योहारों, बदलते मौसमों के रंगों को सांस्कृतिक जीवन परिक्रमा को आकर्षक बनाते हैं। अतीत की परम्पराओं को वर्तमान से जोड़ने वाली सुबह के लिए आशा के दीप संजोते हैं। ये ताल यहीं के जीवन का इतिहास है, संविधान है तथा जीवनयापन के लिए मार्गदर्शक है, या यह कहना उचित है कि काल-समय की पहचान भी ताल ही कराते रहे हैं। जीवन परिक्रमा ताल चक्र से जुड़ी है ।

लोक संगीत और लोक जीवन अधूरा होता यदि ताल न होते। फिर इन तालों को सुरक्षित रखने का दायित्व एक कलाकार बिरादरी ने निभाया है। नादिर चंगेजखाँ की सभ्यताओं व आतंक की परवाह न कर पूरे लोक जीवन के इतिहास को तालों के आगोश में छुपाकर आज तक हमें विरासत में समर्पित किया है। ये कलाकार बिरादरी तूरी, ढाकी, हेसी, वाजगी के नाम से हिमाचल में विद्यमान हैं। चैत्र मास में अनाज के दाने वखशीश में प्राप्त कर भरपूर मनोरंजन के साथ नव वर्ष का पैगाम देना जनमानस को वर्षभर की समस्याओं से जूझने के लिए तैयार करना सब कुछ 'वेउल' ताल की हृदयस्पर्शी झंकार है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रचार-प्रसार जन सम्पर्क सब कुछ इन ताल वादकों और तालों के क्रम से अतीत से अब तक चलता आया है।

लोक संस्कृति का क्षेत्र व सीमांकन

हिमाचल प्रदेश मन्दिरों की धरा है। हर वादी परगनों में विभक्त थी। हर परगने का अपना मन्दिर आज भी है। ये मन्दिर शिव शक्ति या रघुनाथ के हैं इन मन्दिरों को, डीम, देउल, पजेरली, पड़ोट, मौड़ आदि नामों से पुकारते हैं। खान-पान, रीति-रिवाज, उपचार, न्याय सारा काम मन्दिर के अन्तर्गत रहा है। मन्दिर का क्षेत्र परगना अपने आप में एक देश था देवता के गुरु 'देवां' अर्थात् जिसे देवता आता है आज भी कहते हैं कि **ऐरो हाँव हेरदा ऊ जेरो देश बोलो ला** आर्थात् वह करुंगा जैसा देश कहेगा।

देशे कोंई पूछा ऊ?
देशवासियो! क्यों पूछा है मुझे?

यह शब्दावली अति प्राचीन है, जिसकी आज भी पुनारावृत्ति होती है। मन्दिर क्षेत्र की सीमाओं का वर्णन तथा आबादी की गणना को समय-समय पर कहना देव वाणी का स्वरूप माना जाता रहा है। देवा गुरु कहता है—

छवीशिआ वरविशिया, पन्दर सौईया 120 घरों को 'छवीशी' 220 घरों की 'आबादी' वाले क्षेत्र को बरवीशी, 1500 की आबादी वाले क्षेत्र को 'पन्दरशोइया' कहकर देवा आज भी पुकारता है।

मन्दिर की एक परम्परागत कमेटी है जो पैतृक क्रम से चलती है। बज़ीर, देंवा, भंड़ारी, सजाली, करावक से जनता के प्रतिनिधि मन्दिर की व्यवस्था का संचालन करते हैं। ढोल, नगारा, करताल, शहनाई सभी वाद्य यन्त्र देवता के भण्डार की निधि मानी जाती है। सभी के लिए पारिश्रमिक यही कमेटी तय करती है तथा न्याय, उपचार, कायदे कानून मन्दिर के दिशानिर्देश से चलते हैं। सिरमौर, शिमला, सोलन, किन्नौर व मण्डी के करसोग कुल्लू क्षेत्रों में समानता का स्वरूप दृष्टिगत है।

लेकिन जब यहाँ कुछ परगनों से मिलकर छोटी-बड़ी रियासतें बनीं तो मन्दिर के क्षेत्र से बढ़कर सीमाएं रियासतों के साथ लोक संस्कृति को भी विस्तार दे गईं।

छोटे-बड़े खुशी के मौके पर या देव कार्यो के समय **नौवत, चौघड़ी** तालों के अन्त में कलाकार ये मन्त्र शुभ कामनाओं के रूप में बोलते हैं।

सवो सलतान सवो सलतान
सबके जगमें पड़त पढ़े पड़वान
सब रागी राग गावे साधू पुरे शख
तीन विभूत चढ़ावे
गउआ के गलवन्दन खुले
जिओ मच्छ कच्छ को राज
राजा जगदेव जग का शूरा
राजे जगदेवे क्या नी कीया
अपणा शीर कतर के
काली वाहमणी को दिया
पन्द्रह जार क्योंथल में
सोलह जार वघाट में
सिरी चन्द गोपाल की सीस जागे
महा सिरमौर।

इस मन्त्र "आर्शीश" "सीस" से ऐसा प्रतीत होता है कि कलाकारों पर सामन्त शाही का प्रभाव पड़ने लगा, मन्दिर की सीमाएं धार्मिक आधार बन कर रह गईं जबकि लोक संस्कृति रियासती सीमाओं के साथ पनपने लगी। जिन रियासतों में

आपसी लेन-देन था वहाँ एक दूसरी रियासत की लोक संस्कृति का प्रभाव पड़ने लगा एक और बड़ा कारण रिश्ते-नाते भी था। लोक साहित्य, संगीत हर वादी की अलग पहचान से क्षेत्र के बड़े भाग तक बिखर गया। जब 15 अप्रैल 1948 को 33 रियासतों का विलय हिमाचल प्रदेश में हुआ तथा राज्य के पुनर्गठन के बाद कांगड़ा भी इसमें मिला तो हिमाचल का क्षेत्रफल 55673 तक फैल गया। हर वादी की लोककलाओं की अलग पहचान है लेकिन बोली, नृत्य, अभिनय की मूल विधाओं पर बाहरी प्रभाव तथा पड़ोसी राज्यों की छाया अवश्य विम्बित है।

यह सत्य है कि लोकतालों की मौलिकता लगभग ज्यूं की त्यूं सुरक्षित हैं। गहन चिन्तन और खोजने से इन तालों के पीछे रीति-रिवाज रहन-सहन के नियम असंख्य परम्पराएं छुपी हुई हैं। जब तक इन तालों की मौलिकताओं के साथ-साथ लोक जीवन के महत्त्वपूर्ण पहलुओं और इतिहास के क्रम का अध्ययन न होगा तब तक विस्तार से प्रत्येक ताल के काल समय की पहचान करना कठिन है।

ताल लोक जीवन की हर धड़कन से जुड़ा है। सुबह से शाम और जन्म से मृत्यु तक का क्रम तालों की अभिव्यक्ति है। जैसे रात को दूसरे पहर के अन्तिम चरण में बेल मन्दिर में बजने पर सब सो जाते थे और बेल बजने के उपरान्त कोई भी रात्रि भोजन नहीं ग्रहण करता। आज भी पुजारी, देवा रात्री का भोजन नहीं खाते यदि बेल बज जाए। इसी प्रकार सुबह प्रथम पहर में चौघड़ी, चारघड़ी रात जब रहे, बजाई जाती थी। इस ताल के बजने पर सब ग्रामवासी देवाज्ञा मानते थे और बिस्तर छोड़कर अपने-अपने कार्य में जुट जाते थे। एक तरफ देव पूजा तो दूसरी ओर दैनिक जीवन प्रारम्भ करने का देवादेश, तालों का महत्त्व है।

ये कुछ ताल ऐसे हैं जो सुख-दुःख में दैनिक चर्या को सुचारु रूप से चलाने के मार्गदर्शक हैं। सभी वादियों की अपनी विधा और नामों से लोक संस्कृति में इनका चित्रण है। निःसन्देह कहीं-कहीं यह मूलस्वरूप लुप्त हो चुका है। प्रदेश को तीन भागों में बांट कर साधारण सांस्कृतिक समता के क्षेत्र का अध्ययन किया जा सकता है।

1. **महासवी क्षेत्र :** शिमला सोलन, सिरमौर, मण्डी का करसोग तथा कुल्लू जिला की लोक संस्कृति यहां तालों की विधाओं में समानता नजर आती है।

2. **कांगड़ी क्षेत्र :** बिलासपुर, मण्डी, हमीरपुर, ऊना, कांगड़ा, चम्बा समता के क्षेत्र हैं। केवल चम्बा में ढोल, नगाड़ा, पहरावा कुछ महसुवी क्षेत्र से मिलता है।

3. **किन्नरी क्षेत्र :** इसके अन्तर्गत लाहुल स्पिति और किन्नौर आते हैं।

तालों का वर्गीकरण

लोक वाद्यों से अभिप्राय है ऐसे वाद्य यन्त्र जो परम्परा से प्रयोग में चले आ रहे हैं। जिनका निर्माण स्थानीय वस्तुओं से तथा प्रयोग भी स्थानीय कलाकारों द्वारा होता रहा है। प्रदेश के लोक वाद्यों को अन्य वाद्यों की भांति चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। ये वाद्य अपने लौकिक तत्त्व तथा मौलिक रूप लिये हुए हैं जो आंचलिक परिवेश में उपलब्ध अनेक उपकरणों के माध्यम से निर्मित किए गए हैं।

इन वाद्यों में अवनद्धवाद्य, घनवाद्य, तन्त्रवाद्य एवं सुषिरवाद्य का विशेष स्थान है। क्योंकि वाद्ययन्त्र देवालय की सम्पत्ति है। अतः वाद्य यन्त्रों के निर्माण करने वाला कलाकार एक समय भोजन तथा शुद्धता से जीवन का पालन करता है। ताकि पूर्ण पवित्रता से यंत्र का निर्माण हो सके। अब यह परम्परा लुप्त हो रही है। जब नागाड़ा बनाया जाता है तो ऐसा देखने में आज भी स्पष्ट रूप में आता है। इस बात से संकेत मिलता है कि अन्य वाद्य यन्त्रों के निर्माण की भी यही परम्परा रही होगी।

अवनद्धवाद्य

ढोल, नगाड़ा, दमामा, टमक, नागरट्ट, गुज्जू, डोरु, हुड़क, धौंसा आदि अनेक छोटे-बड़े ढोलों का स्थानीय नाम से प्रयोग होता है तथा खंजरी भी इस वर्ग का वाद्य है। टमक, ड़फाला, डफ ढोलों के स्थानीय नाम हैं। इनका प्रयोग विभिन्न अवसरों पर किया जाता है। ढोल, नगाड़ा, दमामा पीतल, तांबे के तथा गुज्जू डोरू हुडेक लकड़ी के बने होते हैं कहीं-कहीं देवालय में चांदी के नगाड़े, ढोल भी हैं। नगाड़ा, ढोल हर पर्व में देवताल संस्कार और लोकतालों में प्रयोग किये जाते हैं। इन्हें बजाने की खुशी या गमी पर अलग अलग ताल-विधाएं हैं। ढोल लकड़ी के भी बनते हैं जिसे छटी डांगे से संस्कार तालों में बजाने का अनूठा तथा मनमोहक तरीका है। जब 'जंगताल' शादी के समय कलाकार बजाता है तो अपनी 'परनों' तिहाइयों के कलात्मक वादन से सम पर आने की अदाओं से जनसमूह को मन्त्र-मुग्ध कर देता है इस यह वादन के साथ नृत्य की अनूठी शैली है। यूं समझिए परनों, तालों, तोड़ों का भयंकर जंग हो। धौंसा बड़ा वाद्य यन्त्र है जिसे डण्डों से जोर-जोर से बजाया जाता है।

घनवाद्य

घनवाद्यों में झांझ, मंजीरा, खड़ताल, चिमटा, घड़ियाल, थाली, कोकटा, भाणां का जगराता, करियाला, कीर्तन, भजन में वाद्यों प्रयोग होता है। थाली का नाटी, गीह में अनोखे अन्दाज से ताल के लिए प्रयोग करते हैं।

सुषिरवाद्य

रणसिंगा (हरनसिंगा) करनाल, तुरही, बांसुरी, अलगोजू, शहनाई, पीपणी काहल यहां के लोकप्रिय वाद्य हैं। गद्दी जनजातीय लोगों का तो बांसुरी, अलगोजू की धुनें पक्षियों के कलरव और नदी-नालों के सुरीले बहाव में अनूठा रंग बिखेरते हैं। करनाल, रणसिंगा तांबे, पीतल और चांदी के बने होते हैं जबकी शहनाई, बांसुरी, अलगोजू लकड़ी से निर्मित किए जाते हैं। ये सुषिर वाद्य सारे प्रदेश में लोकप्रिय हैं।

तन्त्रवाद्य

तन्त्र वाद्यों का प्रयोग हिमाचल प्रदेश में बहुत कम है। इकतारा, दुतारा कांगड़ा क्षेत्र में प्रयोग होता है। यह केवल स्वर आधार के लिए ही प्रयोग किया जाता है। 'सारदी, किन्दरी' धुतारी का नाम सुना जाता है। जिसका वर्णन सीता हरण में इस प्रकार है—

रामो री राणिये बाहरे आएरे
सूनुए मोहित किंदरे बजाए रे

किन्नरी वीणा एक अतिप्राचीन तन्त्रवाद्य है।

लोक वाद्यों का प्रयोग करने से पूर्व इनकी पूजा की जाती है। शिमला, सिरमौर जनपद में किसी भी शुभ पर्व पर पूजा की अलग विधि है। वादक, कलाकार और नगाड़े को मौली बांधकर मन्त्रोच्चारण पुरोहित करता है। फिर गांव का मुखिया या गृहपति नगाड़े में घी डालता है। इस प्रकार पूजा भी होती है। घी नगाड़े की गमक को भी बढ़ाता है।

नगारा देवस्थान से देव यात्रा के लिए जा रहा हो या शादी-खुशी का अवसर हो घी अवश्य डाला जाता है। शिमला, सोलन, सिरमौर, चम्बा में यह प्रथा आज भी मौजूद है। बिलासपुर जनपद के लोक संगीत में तन्त्र वाद्य के चारों प्रकारों का प्रचलन है। टमक, नगाड़ा, ढोलक, डोंहरु, डमरु, घण्टी, घड़ियाल, चिमटा, खंजरी तथा इकतारा, सारंगी, शहनाई, रणसिंगा, बांसुरी आदि वाद्यों का प्रचलन है।

मण्डी क्षेत्र में अवनद्ध वाद्य के अन्तर्गत ढोल, नगाड़ा, टमक, ढोलक, दमापड़, ताशा, डाउस, डफूल, डफ, डफली का प्रचलन है। इनमें पीतल, तांबे के ढोल, नगाड़े देव सम्बंधी हैं। घन वाद्यों खड़ताल, चिमटा, झांझ, मंजीरा, थाली का प्रयोग होता है।

सुषिर वाद्य में शहनाई, काहल, नरसिंगा, बांसुरी, अलगोजू तीज-त्यौहारों, खुशी के अवसरों पर प्रयोग किए जाते हैं। इकतारा, दुतारा, धनोटू का भी प्रयोग किया जाता है।

चम्बा, कुल्लू में इन्हीं अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग होता है। शहनाई, तुरही को विशेष रूप से इस्तेमाल किया जाता है। तन्त्र वाद्यों में इकतारा, दोतारा, जमङ, या

खंजरी, रुबाब का प्रयोग चम्बा के पांगी तथा भरमौर के जनजातीय क्षेत्रों में अल्प रूप से होता है।

इस प्रकार ये वाद्य यन्त्र आस्था और आदर के प्रतीक हैं। मुख्य अतिथि के समारोह में आगमन पर साजों पर धुन बजाई जाती है। लोग आदर और श्रद्धा से इस धुन को देवाज्ञा मानते हैं और शुभ समझते हैं।

इन वाद्य यन्त्रों के अतिरिक्त 'घड़ा' और थाली को भी प्रयोग किया जाता है। पहाड़ी गांवों में बेस के वृक्षों की छाल का 'पोगा' बनता है। यह करनाल की-सी आवाज देता है। इसे ग्वाले बजाते हैं तथा मनोरंजन का साधन हैं।

लोकताल

कुछ तालें गीत और शहनाई की धुनों तथा रस्मों को जीवित रखे हुए हैं। ये ताल सूचना सम्पर्क के साधन भी थे। गांव के लोग देव स्थान में लोकताल बजते ही एकत्रित हो जाते हैं। यदि देव कार्य यज्ञ (जागरा, अखण खीण) इत्यादि हैं मन्दिर के सामने 'टाम्वा', ताल बजा कि लोग सब काम-काज छोड़कर मन्दिर के पास एकत्रित हो जाया करते हैं। 'टाम्वा' के बजते ही किसान समझ लेते हैं कि देवता की सवारी कहीं किसी गांव को यज्ञ हेतु जा रही है। यह देव निमंत्रण माना जाता है। चाहे किसी वैरी के घर क्यों न देवता जाए प्रत्येक व्यक्ति ने तो देवता के साथ जाना होता है। इस प्रकार देवता के माध्यम से सामाजिक एकता सूत्र बंधता है।

इसी तरह यह पद 'झाखो अजवा प्याडे' के भी तालों की सूचना का साधन होना स्पष्ट करते हैं। जैसे—

के जाए रे धारो जाणी सोतीरे दीता तुरिए डोला।
शुणे अजवा भौड़ा पिरणो से तेता पावणा होला ॥

'ढोला' ताल सुनते ही अजवा युवक पीरण गांव से घर भाग गया क्योंकि उसे सूचना मिल गई थी कि उसके गांव के लोग युद्ध में जा रहें हैं।

'ढोला', युद्ध का ताल है। जब किसी गांव के लोग दूसरे गांव पर आक्रमण करने जाते थे तो (यह ताल) गांव वालों के चलने का संकेत होता था। फिर यदि वह गांव का व्यक्ति गांव से बाहर ही क्यों न हो, इसे सुनकर सीधा समूह में पहुंच जाया करता था। ढोला बजना लड़ाई की तैयारी का पैगाम माना जाता था। कोई भी व्यक्ति इसे सुनते ही घर या किसी आवश्यक कार्य में कार्यरत हो तो सब कुछ छोड़ कर आ जाता था। इस प्रकार **'फाट'**, सोमर ताल बजने से समीप के गांव में हुई मौत का संकेत मिल जाता है।

ये ताल सूचना और सम्पर्क का अनूठा क्रम लोकजीवन से जोड़े हुए हैं। शिमला, सोलन, सिरमौर व करसोग क्षेत्रों सहित कुल्लू से भी देवतालों की बजाने की विधाओं

में समानता है। तालों के नामों में विभिन्नता जरूर है लेकिन ताल वाद्य चम्बा तक समान हैं। जैसे—ढोल, नगाड़ा करनाल, रणसिंगा ये सब साज देवता के मन्दिर की सम्पत्ति है तथा पीतल, तांबे, चांदी के बने होते हैं।

देवतालों के प्रकार

1. **बेउल** : इस ताल में 14 मात्राएं हैं तथा दीपचन्दी ताल का दुगुन के समान बजाते सुना जा सकता है। बच्चे के जन्म तथा प्रतिदिन प्रातः चौघड़ी के समय मन्दिर में शुभ दिन की कामनाओं का ताल है यह देवताल भी है और संस्कार ताल भी माना जाता है। जब किसी के घर बच्चा पैदा होता है और खासतौर से लड़का जन्म लेता है तो कलाकार 'बेउल' बजाते हैं तथा बन्दूक के धमाके किए जाते हैं। गांव के लोग नवजात शिशु के पिता, दादा को 'द्रुवा' लगाते हैं। यह रस्म 28 दिन तक होती है इसे 'शन्दों' के नाम से मनाते हैं। प्रथम शुभ ताल है।

बेउल ताल के बोल :

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
धिं	नर	गड़	धिं	ऽ	ना	ऽ	धिं	नर	गड़	धिं	ऽ	ना	ऽ

नगाड़ा, ढोल, शहनाई, करनाल, रणसिंगा वाद्य यन्त्र होते हैं।

चैत्र मास में ढोल और शहनाई पर कलाकार इस ताल को गांव की चौपाल में बजाते हैं तथा साथ यह मन्त्र पढ़ते हैं —

पाज पाण्डो रा नाओं कुन्ते कधारी रा नाओं
सिलो फुलो पहरदे वाली वरमाओदे चेत्र
महीने रा नाओं गेरी वणवाज महाराज

2. **टाम्बा** : यदि देवता ने यात्रा पर जाना है तो चलने से पूर्व तैयारी के समय यह ताल बजता है। ढोल, नगाड़ा, शहनाई, करनाल, रणसिंगा, मुख्य साज हैं।

ताल के बोल :

1	2	3	4	5	6	7	8
झेजे	गेदे	गेदे	गेदे	धगड़	गेदे	गेदे	धिनाग

इस ताल के बजने पर ग्रामीण एकत्रित होने लगते हैं। यह देव यात्रा का सन्देश सूचक है। उधर पुजारी देवता की प्रतिमाएं पालकी में रखते हैं तथा पालकी ('पालगी') (पोलगे) को सजाया जाता है।

3. **सूरजन्हाण या जड़ी भरत :** यह ताल देव यात्रा के समय एक अनोखे ठाठ से बजता है। 6-7 ढोल पीतल या चांदी-तांबे के तथा नगाड़ा, शहनाई, करनाल, रणसिंगा लोक वाद्यों पर बजाया जाने वाला ताल है। ढोल के बायीं ओर वायण के रूप से खाली भरे की पूर्ति कर ताल को स्वरूप दिया जाता है। जोड़ी भरत मूल रूप से अब बजाना कठिन है लेकिन सूरजन्हाण जिसे छत्तर भी कहते हैं यहां धमार की भांति इसी विधि से बजता है।

ताल के बोल :

1	2	3	4	5	6	7
धिगड़	गेदे	गेदे	धिगड़	गेदे	गेदे	गेदे

सभी ढोलों पर नगाड़े की परनों के साथ अनूठे क्रम से बायें पर वायण से खाली भरे के डांगो से समा बांधा जाता है। इस ताल में 14 मात्राएं हैं।

4. **पुजावज : देवकारिया बाजा**—यह ताल भी देव यात्रा के समय बजता है। इस ताल में 8 मात्राएं हैं। सूरजन्हाण सीधे स्थान पर नृत्य की मुद्राओं सहित बजाया जाता है। सीधे स्थान की भी आवश्यकता है। लेकिन जब ऊबड़-खाबड़ रास्ते से देव यात्रा चल रही हो तब यह ताल बजाने का चलन है।

बोल :

1	2	3	4	5	6	7	8
झण	झण	गिना	झण	झानर	गड़झा	झणाका	गिना

इस ताल की ध्वनि से लोग देव यात्रा में शामिल हो जाते हैं चाहे निमंत्रण हो या नहीं यही ताल देव निमंत्रण माना जाता है।

5. **पाचे़ :** यह ताल प्रातः की पूजा का ताल है जिसे 'पाचे़' कहते हैं।

पाची़ विशेष लय स्थापित किए है। इस ताल में भी 28 मात्राएं हैं। यह ताल भी ढोल, नगारा, शहनाई, करनाल़, रणसिंगा के साथ बजता है।

पाची ताल पूजा के प्रारम्भ में बजने लगता है। पुजारी लय के साथ मन्त्रोचारण करते हैं। तत्पश्चात् घण्टी की ध्वनि होती है, इसके साथ-साथ ताल परिर्वतन होता है।

बोल :

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
झेणे	गेदे	गेदे	झेणे	गेदे	गेदे	झेण्ग	झग	ड़ग	झेऽ	झेणग	झग	डग	झेऽ

इसे पजावज चलत भी लोकक्रम में कहते हैं तथा इसकी 14 मात्राएं हैं। नगाड़ा, ढोल वादक ताल सम बरद के सुन्दर क्रम में लगाते हैं।

6. रावी पूजा ताल : इन देव तालों का शिमला, सिरमौर, सोलन क्षेत्रों में विशेष पर्वों पर बनने वाला क्रम है। यदि देवता का यज्ञ, जागरा, शांद, चेरशी हो तो रावी पूजा होती है। शिमला के बल़ग, सेहमाल़ टेला, जगास, सिरमौर के देवठी-मझगांव, लेऊ पालू में एकादशी मेले होते हैं। इन दिनों रात्रि के दूसरे पहर के अन्त में 'ध्वेले रावि पूजा', जागरण होता है। उस समय चलत या पजावज बजती है तथा बीच-बीच में 'धरेवणी ताल' भी बजाया जाता है।

रात को घयाना आग मन्दिर के सामने जलाई जाती है और कलाकार यहां से ताल बजाते हैं। मन्दिर में पूजा होती है बाहर पांच या सात बार यह ताल बजता है।

7. धरेवणी ताल : इस ताल के बजने पर देवता को खेल आती है, इस ताल में 4 मात्राएं हैं। गांव के लोग 'सेवतडू' सेवादारी के लिए रात्रि जागरण करते हैं। ढोल, शहनाई, करनाल, रणसिंगा की द्रुतलय में यह ताल बजती है।

बोल :

1	2	3	4
धिणणजा	धिना	धिणणजा	धिना

8. चौघड़ी : रात्रि के चौथे पहर के अन्त में भोर के समय यह ताल बजता है। चौघड़ी और चार घड़ी स्पष्ट भावार्थ है। यह ताल प्रतिदिन सुप्रभात में जन-जन को जागने की देवाज्ञा-देवसन्देश है। गांव का प्रत्येक मानव चौघड़ी बजने पर अपने-अपने कार्य में लग जाता था। देव मन्दिर का सन्देश दैनिक जीवन को सुचारु रूप से प्रारम्भ करने का देवता का मंगलमय आशीर्वाद है। ढोल, नगाड़ा, शहनाई,

रणसिंगा साजों पर कई धुनें बजाई जाती हैं। जिनका वर्णन नीचे दिया गया है। देव कार्यों में इसकी अपनी अलग भूमिका तथा महत्त्व है। इस क्रम में सर्वप्रथम 'धेउल ताल' बजता है। वेउल का वर्णन पहले ही किया जा चुका है।

9. **संधिवा** : यह ताल चौघड़ी का दूसरा ताल है। इस लोकताल में 8 मात्राएं होती हैं।

बोल :

1	2	3	4	5	6	7	8
धिगड़	गिना	धिगड़	धिन	ताधिना	धिन	ताधिना	धिन

10. **चघोड़** : इस क्रम का यह तीसरा ताल है। इस ताल में 12 मात्राएं हैं।

बोल :

1	2	3	4	5	6	7	8	9
धाऽ	गिड	गिड	धाऽ	गिड	गिड	धाऽ	गिड	गिड

10	11	12
धाऽ	गिना	धाऽ

11. **चालंत** : चौघड़ी का यह ताल 8 मात्राओं की बन्दिश में निबद्ध है।

बोल :

1	2	3	4	5	6	7	8
गिड़	गिड़	गिड़	गिड़	गिड़	गिड़	धीऽ	नाऽ

12. **भरत** : यह लोकताल 16 मात्राओं के अनूठे बोलों वाला स्वरूप है। भोर के धीरे से उभरते उजाले में एक मनमोहक रंग इस ताल की लय, ओज व स्वरूप में है।

बोल :

1	2	3	4	5	6	7	8
धिना	गेदे	गेदे	गेदे	गेदे	गेदे	गेदे	गेदे
9	10	11	12	13	14	15	16
धिऽ	गड	धाऽ	धिऽ	गड	धाऽ	धिऽ	गड़

निम्न ताल में 12 मात्राएं सुनी जा सकती हैं–

बोल :

1	2	3	4	5	6	7	8	9
धिन	गिड	गिड	धिन	गिड़	गिड़	धिऽ	गिड	गिड
10	11	12						
धिऽ	नऽ	धिनाग						

इस ताल के उपरान्त 'सूरज न्हाण' भी बजाते हैं जिसके बोल पहले बताए जा चुके हैं। अब वादक कलाकार केवल नगाड़े व ढोल पर ताल लगाकर यह लोकमन्त्र जिसे 'सीस' या 'वरमाओं' कहते हैं, बोलता है। **सबो सलतान**...यह लोक मन्त्र पहले लिख दिया गया है इस सीस बरमाओं के बाद 'धरेवणी' बजाई जाती है। इन सुन्दर तालों के अनूठे अनुक्रम से भोर हो जाती है और ग्रामवासी अपने-अपने काम में जुट जाते हैं। शुभ प्रभात का यह शुभ लोकताल दैनिक जीवन का एक क्रम था। अब यह तीज-त्योहार, पर्वो तक ही सीमित होकर रह गया है।

13. नौपद : यह लोकताल देवताल भी है और संस्कार ताल भी है। क्योंकि शादी-ब्याह के समय इस ताल का अपना अलग महत्त्व है। यह भी मंगल ताल है। खुशी के समय घर आंगन में लोक कलाकारों द्वारा नौपदें-नौताला के समूह की यह प्रस्तुति अनूठा क्रम है। इस ताल समूह में 9 तालें बजती हैं। सभी नौपद की तालें कही गई हैं—बधाई, ठेका, त्रिताल (तीन ताल) केरुआ (कहरुआ), लंगड़ी गत, झप ताल (दादरा) जंग ताल और नाटी (गी)। यहां बधाई जंग ताल का ही वर्णन करना है। क्योंकि बाकी तालों का स्वरूप शास्त्रीय तालों जैसा ही है। केवल बजाने में **धिगड़ धिना गिना** इत्यादि स्वरूप ही सुने जा सकते हैं। जो (नाटी) 8 मात्राओं का5 ताली वाला स्वरूप है यह नाटी या गी हृदय की धड़कन से ताल मिलाए मनमोहक ताल है।

14 जंग : यह ताल साजों पर कला की जंग अर्थात् युद्ध है। ढोलवादक खड़े होकर नृत्य के साथ तोड़े और परनों से दर्शकों में कौतूहल पैदा करता है। श्रोतागण परनों, तोड़ों की प्रतीक्षा में नई अदा के लिए जिज्ञासु बनकर मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं।

बोल :

1	2	3	4
धिं ऽ ग्ऽधाऽ	धिं ना ना	धिऽगड़ऽधा	धिं ना ना

15. बधाई : यह ताल ढोल, नगाड़ों, शहनाई और करनाल, रणसिंगे सहित बजाया जाता है। इस ताल में 28 मात्राएं हैं। देवमन्दिर में रोज शाम बैल़ या नौबत के प्रारम्भ में बजता है।

देवतालों में "द्रौड़ी" में हुडक के साथ बजने वाले लोकतालों में स्वांगटि गीह और नाटी ताल भी एक क्रम है।

16. संस्कार ताल : कुछ देव तालों का चलन शादी, ब्याह, जन्म के समय भी है। जिनमें वेउल, नौपद, जंग इत्यादि लोकताल दोनों समय में बजाए जाते हैं।

बेआ

विवाह में बजने वाला ताल 'शवारी' भी कहते हैं। ढोल, नगाड़ा, शहनाई, करनाल व रणसिंगा के स्वर लय में यह ताल भी अपना अलग महत्त्व रखता है। क्योंकि दूर पहाड़ी पर बेआ नजदीक के गांवों में सूचना पहुंचाता है कि अमुक गांव में शादी है। इस ताल में 8 मात्राएं हैं।

बोल :

1	2	3	4	5	6	7	8
झें	झें	झें	झें	झें	झें	झें	झें

17. गिद्धा-पडूंआ : प्रायः कहरवा के समान ही बोल बांट रहती है। शादी के मौके पर महिलाएं पडुंआ नाचती हैं। यह ताल भी अपनी अलग रंग और प्रथाएं समेटे हैं। सर्दियों के मौसम शुरू होते ही गांव की औरतें बड़ियां बनाती हैं। रात भर पडुंआ भी नाचा-गाया जाता है साथ बड़ियां भी बनाते हैं। प्रत्येक घर में बारी-बारी से यह आयोजन किया जाता है।

18. मृत्यु ताल मड़ेच : मृत्यु ताल 'मड़ेच' बजाने की अलग विधा है। चार-पांच ढोल वादक बायें ढोल पर ड़गे से खाली भरे तालों के द्वारा लोक ताल का स्वरूप बनाते हैं। यह ताल लगभग समाप्त होता जा रहा है अब मूल विधा को प्रस्तुत करने वाले कलाकार लगभग समाप्त हो चुके हैं फिर भी बिगड़ा-बिखरा स्वरूप है जिसे खोजा जा सकता है।

19. सोअर : इस ताल में 16 मात्राएं सुनी जा सकती हैं। ताल सूचना का भी साधन था। समीप के गांव में ज्यों ही सोअर बजता तो सहज में मालूम हो जाता था कि अमुक गांव में मृत्यु हो गई है।

सोअर के साथ बहुत ही महत्त्वपूर्ण परम्पराएं जुड़ी हैं। जिस घर में मृत्यु हुई उस परिवार के सम्बंधी घी की लुटिया, चावल, आटा लेकर तुरन्त वहां पहुंच जाते थे। इसे "साटा" कहते हैं। विपदा में यह सगे-सम्बंधियों का सहयोग भी है और एक ऐसा रिवाज भी जिसे लोग किसी भी स्थिति में तोड़ते नहीं।

इस ताल में 16 मात्राएं सुनी जा सकती हैं।

बोल :

1	2	3	4	5	6	7	8
धि	ना	कड़	धाऽ	तिर	किट	धि	ना
9	10	11	12	13	14	15	16
कड़	धाऽ	तिर	किट	धि	न	कड	धाऽ

20. फाट : यह 14 मात्राओं का ताल है। ताल बजाते समय कलाकार कुछ दोहे और सांत्वना के शब्द भी बोलता है। बोलने में अनूठा लहजा और मार्मिकता भरी होती है।

कौण बाजा बाजो महाराज
मांगते रा बेटा शुणे कान लाए
आज तेसी मोरदे चिड़ू पखेरु वी रोन्दे लागीओ।
चन्द सूरज दू गेडू होन्दे
दोनों धतरी दी चोट खड़ा रो
मेरा हुनरगुण मांगता लगा ले
छतर भग की चोट

21. छत्तर : 'छत्तर' मृत्यु ताल है। ढलदा छत्तर, चोड़दा छत्तर, रामकड़ी जलैरू ये कुछ ताल सुने जाते थे।

22. **रामकड़ी** : कलाकार 'रामकड़ी' ताल में ढोल उछालने की अनूठी कला दिखाते हैं। ये ताल बज रहा है एक ढोल वादक ढोल उछालता और दूसरा उसे पकड़ता था। इस प्रकार इन तालों का महत्त्वपूर्ण स्थान लोक जीवन में रहा है।

23. **लोकताल** : लोकताल परम्पराओं से जुड़े सभी ताल लोकताल हैं लेकिन अलग रूप से अध्ययन करने के लिए संस्कार व देवतालों से लोकताल का अलग वर्णन महत्त्वपूर्ण हैं। यूं समझिए कि हमारा जीवन ही लोकताल है। करियाला हो या मुजरा धुन बजते ही नृत्य के लिए मन मचल जाता है।

24. **रथैवला-ठडईअर (ठठईर) ठडैहर** : इस ताल में 12 मात्राएं हैं। चलन विलम्बित लय में तथा क्रमिक रूप से द्रुत लय की ओर अग्रसर होता है। यह वीर रस का अनूठा चलन है। रौद्रताल भी कहना उचित है। चैत्र व वैशाख में यह ताल विशु मेले में बजता था। लोग फसल लगाने की तैयारी और वर्ष भर की विपत्तियों को खुशियों में बदलने के लिए 'चुनौती नृत्य' की अनूठी भाव-भंगिमाओं के प्रदर्शन करते हैं।

इस ताल क्रम में ढोडा नृत्य किया जाता है। लेकिन पांडव काल के बाद तीर-कमान के खेल के खेलने व विशु में नृत्य हेतु यह ताल बजाया जाता है।

इस ताल की लय ने दो गुटों का वैमनस्य नृत्य और मनोरंजन में परिवर्तित कर शत्रुता की समाप्ति की है। महाभारत काल के बाद पांडव समर्थक पांशड़ और कौरव समर्थक शाठड़ युद्ध समाप्ति के बाद भी पहाड़ों में लड़ते रहे हैं। तब यहां चिन्तकों ने विशु में दोनों बिरादरियों को आमंत्रित कर इस खेल का स्वरूप दिया। अब यह नृत्य नाटिका है। दोनों गुट ललकारने शवाला, हाऊश देते नाचते मैदान में आते हैं तथा थोड़ा तीर-कमान खेलते हैं। साथ-साथ मौके के अनुसार निशाना लगने पर कहकहे भी लगाते हैं। निशाना लगाने की अलग परम्परा है। मोटे पजामे तथा विशेष प्रकार के बूट पहन कर पहला ठोडा खिलाड़ी टांगों का नृत्य करता है और दूसरा घुटनों से नीचे निशाना लगाता है। निशाना लगाने के उपरान्त रथैवला ताल में नृत्य किया जाता है।

इस ताल के बजते ही समीप गांव वाले विशु की जुबड़ी को रवाना हो जाते हैं। विशु के प्रथम दिन "जुबड़ी ज्याड़ना" खेल के मैदान में देवता की छड़ी लाई जाती है और रथैवला ताल बजता है। इस प्रकार आज का यह आयोजन सूचना का क्रम होता है।

इस रौद्र ताल क्रम में 'डोला ताल' भी है जो युद्ध आरम्भ होने से पूर्व बजाया जाता था।

बोल : रथैवला ताल

धिं गड़ धाऽ | धिं ऽऽ नाऽ | धिं गड़ धाऽ | धिं ऽऽ नाऽ

25. नाटी-माला-रिहाली : आषाड़ और श्रावण मास की संक्रान्ति को 'रैहली रो साजो' अर्थात् हरियाली की संक्रान्ति कहते हैं। रैहली-हरियाली का अपभ्रंश-सा शब्द है। इस दिन से चौमासा प्रारम्भ हुआ माना जाता है। लोग रैहली, माला, रासा, नृत्य, नाटी ताल में करते हैं। सभी नर-नारी लाईन में कदम से कदम मिलाकर एक समान मुद्राओं का प्रदर्शन करते हैं। जिस प्रकार चौमासे में हर पेड़-पत्ते में हरियाली आती है उसी प्रकार फसल का कार्य समाप्त करने के उपरान्त लोग सामूहिक नृत्य नाटी ताल पर करते हैं। मेले भी होते हैं। इस मौसम के मेले रैहली, शनोल, जातरो मशहूर हैं। इस विलम्बित नाटी ताल में 16 मात्राएं हैं। नर्तक और वादक दोनों के कला-कौशल का अनूठा रंग इस ताल में है।

बोल :

1	2	3	4	5	6	7	8
झां	झा	ऽ	गिना	झां	गिना	झां	गिना

9	10	11	12	13	14	15	16
तां	तां	ऽ	गिना	झां	गिना	झां	गिना

26. "गी" या गायनटी "गीह" ताल : यह ताल आम खुशी के समय घर में बजाया जाता है। गी को बजाने का चलन मुजरे में है। इस ताल का सम्बंध दिल की धड़कन से है। ध ध क ध ध क जिस गति से दिल धड़कता है गी भी उस क्रम से बजती है। चाहे कोई जाने या न जाने गी ताल में नृत्य के लिए मन सहज में ही झूम उठता है। शादी हो या ब्याह या किसी के घर में गुड़ाई-निदाई का 'हेला' गी हर पर्व का मनोरंजन है। ढोलक, खंजरी, घड़ा, थाली प्रमुख साज हैं।

इस ताल में भी 16 मात्राएं हैं तथा चलन विशेष प्रकार का है। इसमें 1 4 7 11 13 मात्राओं पर ताली बजाई जाती है। इसमें 5 तालियां लगाना अनोखी तथा कलात्मक विधा है। माला में भी इस ताल पर नृत्य करते हैं। सिरमौर, शिमला, सोलन, मण्डी, कुल्लू में यही चलन है। नर्तक खड़े होकर नृत्य करते हैं तथा लोग घेरे में बैठकर गीत गाते हैं।

बोल :

1	2	3	4	5	6	7	8
धा	दिं	ऽ	ता	धिं	ऽन	त	क
X			X			X	

9	10	11	12	13	14	15	16
धिं	ऽ	त	क	धा	गे	तिर	किट
		X		X			

27. **स्वांगटी गीह :** इस ताल में 12 मात्राओं का चलन है। हुड़क, दमामट्, नगाड़े, पर यह ताल बजता है। हुड़क वादक नृत्य भी करते हैं और अनोखी नृत्य शैली से गीतों का भाव व्यक्त करते हैं। यह शरद ऋतु का नृत्य है। रात भर लोग भरपूर मनोरंजन से आत्मविभोर हो उठते हैं। गीतों में वार, प्वाडे, भारत, हारें गाई जाती हैं।

बोल :

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
तिर	गड़	दाऽ	तिऽ	गीऽ	नाऽ	तिऽ	गीऽ	नाऽ	तिर	गड़	दाऽ

हुड़क पर ये बोल सुने जा सकते हैं।

झैं ज क | झिं जा ई | झि झा ई | झौ ज क

28. **करियाला :** शरद ऋतु में दिवाली के पर्व पर करियाला लोक मनोरंजन का आकर्षक लोक नाट्य है। करियाला "करैला" में रात्रिभर स्वांग, लघुनाटिकाएं, नृत्य, प्रहसन प्रस्तुत किए जाते हैं। देवता का रात्रि जागरण भी होता है। इस ताल की 28 मात्राएं हैं। करियाला रात्रि के प्रारम्भ में बजने वाला ताल है। इस ताल से पूर्व कलाकार 'जंग' बजाता है। करियालची (लोक नाट्य) दल एक गांव से दूसरे गांव को आदान-प्रदान की प्रथा से बुलाए जाते हैं। मानो देवठी में आज करियाला है तो वलग से करियालची बुलाए जाएंगे अगले पर्व पर बदले में देवठी के कलाकारों को वलग वाले बुलाएंगे। करयालची 'रथैवला' ताल में नृत्य करते संध्या तक गांव

में जहां करियाला होना निश्चित है, पहुंचते हैं। तव उस दल को गांव में रहने वाले लोग अपने-अपने घरों को 'ठिल्ला' खिलाने ले जाते हैं। ठिल्ला बांडें में आए मेहमान की सेवादारी है। इस प्रकार सब गांवों वालों पर अतिथियों का समान बोझ उस दिन के आयोजन में पड़ता है। खाना खाने के उपरान्त 'घयाना' बाहर आग जलाई जाती है। कलाकार जंग ताल से करियाला को प्रारम्भ करते हैं।

करियाला ताल पर चन्द्रावली नृत्य करती है। यह मूक नृत्य अनन्त परम्पराएं समेटे हुए है।

बोल :

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
ता	नाना	किट	तां	नाना	धा	धा	किट	धा	किट	धाऽ	किट	तां	नाना

15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28
किट	तांऽ	नाना	ताऽ	नाना	धाऽ	ऽऽ	धा	किट	धाऽ	किट	धाऽ	किट	तांऽ

29. गुड़ाई : मक्की धान की निंदाई या खुदाई के समय कलाकार ढोल, नगाड़ा, शहनाई, करनाल के साथ स्वरों में गुड़ाई बजाते हैं।

4 मात्राऐं इस ताल का वेश हैं। लोग गुड़ाई/खुदाई भी करते हैं साथ में संगीत का आनन्द भी लेते हैं। यही नहीं ताल क्रम मे नृत्य "हाउश, श्वाला देते अनूठे रंग में मिलकर कार्य करते हैं।

यहां इसी क्रम को 'हेला' गुड़ाई, खणाई कहते हैं। इस गुड़ाई को बुलाने का भी अनूठा चलन है।

गांव के मन्दिर पर खिलना कुदाली ढोल पर गड़ाई ताल का सांकेतिक प्रदर्शन करके रख देते हैं। गांव का बुजुर्ग सभी को आवाज "धा" देकर एकत्रित होने का आदेश दे देता है।

फिर उसी स्थान पर गुड़ाई बजती है और लोग झूम-झूमकर खिलने, कुदाली लेकर नृत्य करते हैं।

जिस व्यक्ति की मदद को जाना है वह भी वहां पहुंच जाता है और उसके खेत की ओर भीड़ लग जाती है। नृत्य भी मनोरंजन और कार्य भी पूर्ण हो जाता है।

बोल :

1	2	3	4
झण्जणा	धिंना	झण्नणा	धिना

यह क्षेत्र विशेष का संकेत मात्र है विस्तार से इस ताल क्रम को खोजने के लिए समय तथा पूर्ण चिन्तन की आवश्यकता है। इन तालों ने बहुत बड़ा इतिहास अपने लय व बोलों में समेट रखा है।

☐

हिमाचली लोकतालों और शास्त्रीय तालों का तुलनात्मक विश्लेषण

प्रो॰ नन्दलाल गर्ग

हिमाचल प्रदेश की यह पावन भूमि ईश्वर आराधना एवं देवी-देवताओं की पूजा की स्थली मानी जाती है तथा यह सर्वविदित ही है कि यह क्षेत्र ऋषि-मुनियों के तप व ईश्वर-अराधना का मूल स्थान रहा है। इन्हीं ऋषि-मुनियों को आगे चलकर देवता मान कर पूजा जाता है। हिमाचल के विभिन्न रमणीक स्थानों पर इनके मन्दिर पाए जाते हैं, जहाँ पर देवगाथाएं बहुत ही आकर्षक एवं मनोरम रूप में गाई जाती हैं। शास्त्रों में वर्णन किया गया है कि भगवान शंकर तथा पार्वती के द्वारा संगीत कला का जन्म हुआ। गायन, वादन, नृत्य इन तीनों कलाओं के समावेश को संगीत कहा गया है। शिव-पार्वती के ताण्डव एवं लास्य नृत्य से ही ताल की उत्पत्ति मानी गई है। जैसे कि संगीत-शास्त्र में वर्णित निम्न श्लोक से स्पष्ट होता है—

तकारः शंकरः प्रोक्तो लकारः पार्वती स्मृता।
शिव शक्ति समायोगात् ताल इत्यभिधीयते ॥

अर्थात् शिव के ताण्डव से 'त' लेकर, गौरा के लास्य नृत्य से 'ल' लेकर ताल की उत्पत्ति हुई है। इसी कारण शंकर-पार्वती को ताल का जन्मदाता माना जाता है। शंकर भगवान की पूजा व आराधना यहाँ के मन्दिरों एवं घरों में विशेषकर होती है। शंकर भगवान को कैलाशपति, कैलासों के राजा आदि नामों से पुकारा जाता है। हिमाचल में अनेकों शिव मन्दिर व शिव पूजा के स्थल, गुफाएँ आदि पाई जाती हैं जो अनेकों नामों से सुप्रसिद्ध हैं। जैसे मणि महेश, बिजली महादेव, लुटरू महादेव, डवारस महादेव, भूतनाथ महादेव व ममलेश्वर महादेव इत्यादि। इस प्रकार अनेकों त्योहारों व सांस्कृतिक उत्सवों पर शिव-पार्वती क़ी पूजा की जाती है। शिवस्तुति लोक भजनों में विभिन्न तालों के साथ गाई जाती है। यही कारण है कि

हिमाचलप्रदेश लोकतालों के लिए अपना एक विशेष स्थान रखता है। लोकनृत्य व लोकगीतों के साथ-साथ यहां पर लोकतालों की एक अमूल्य निधि विद्यमान है।

भारतवर्ष में प्राचीन काल में संगीत की एक पद्धति प्रचार में थी। आगे चल कर यह पद्धति दो भागों में बंट गई, जिससे अलग-अलग दो पद्धतियां बनीं जो कि उत्तरी एवं दक्षिणी पद्धति के नाम से जानी गईं। उत्तरी पद्धति को 'हिन्दुस्तानी' पद्धति कहकर भी पुकारा जाता है।

जिस प्रकार प्राचीन समय से लेकर दक्षिण भारत में तालों को प्रमुखता दी गई है इसी प्रकार हिमाचल में भी तालों को प्रमुख माना गया है। यही कारण है कि हिमाचल प्रदेश में अनेकों ताल वाद्य हैं जिन पर बजाए जाने वाले लोक तालों का प्रदर्शन किया जाता है। दक्षिण भारत की पद्धति में तालों की संख्या निश्चित है जबकि उत्तर भारत की पद्धति में यह संख्या निश्चित नहीं है। यहां पर लोकतालों के अंतर्गत असंख्य ताल पाए जाते हैं जिनकी अपनी एक अलग विशेषता है। जिस प्रकार दक्षिणी पद्धति में 'खाली' को नहीं माना जाता उसी प्रकार हिमाचली लोक तालों में 'खाली' का संकेत तो होता है परन्तु ताली के साथ अलग से नहीं दर्शाया जाता। ताली तथा समान लय चाल को प्रकट करने को एक नगारे पर ही दर्शाया जाता है जिसे **'डांगा'** कहते हैं। जिस प्रकार दक्षिण भारत में अनेकों वाद्यों पर तालों का प्रर्दशन किया जाता है इसी प्रकार हिमाचली लोक वाद्यों पर भी भिन्न तालों का सामूहिक रूप से प्रर्दशन किया जाता है। "नौपद" के नाम से भी कई ताल इन वाद्यों पर बजाए जाते हैं। उत्तरी पद्धति में तालों के साथ-साथ खाली को भी दर्शाया जाता है।

नौपद

1.	बधाई	=	28	मात्रा
2.	कराल	=	16	मात्रा
3.	झपताल	=	10	मात्रा
4.	खटताल	=	9	मात्रा
5.	जयताल	=	13	मात्रा
6.	दादरा	=	6	मात्रा
7.	रूपक	=	7	मात्रा
8.	झिन्झोटी	=	3	मात्रा
9.	नाटियों के प्रकार	=	16	मात्रा

ढोल नगारे के बोल

1. तड़ान
2. धंड़ान
3. क्ड़ान
4. तां
5. झां
6. गि-गिन् तां
7. तड़ान-धू

इसका वर्णन अनेकों ग्रन्थों में और कवियों द्वारा भी किया गया है। हिमाचल में 'नौपद' के अंतर्गत सभी लोकताल शास्त्रीय तालों की तरह विभिन्न बोल, बाट, मात्रा व ताली के साथ निबद्ध हैं परन्तु इनकी लय, चाल, बोल अपने एक अलग ढंग की हैं जिनकी रचना लोक वाद्यों के अनुसार की गई है। यह प्राचीन समय से चले आ रहे तालों के बोल, बांट, शास्त्रीय तालों से अलग हैं परन्तु फिर भी ये शास्त्रीय तालों से मेल खाते हैं। जैसे विभिन्न मात्राओं में शास्त्रीय ताल निबद्ध हैं उसी प्रकार हिमाचल के लोकताल भी विभिन्न मात्राओं में निबद्ध हैं। इन तालों का क्रियात्मक रूप अत्यन्त आकर्षक और अलग प्रकार का है परन्तु अनेक ताल मात्राओं और तालियों में शास्त्रीय तालों के साथ समानता रखते हैं।

सर्वप्रथम मनुष्य ने गायन, वादन तथा नृत्य का ज्ञान ऋषि, मुनियों के परामर्श से सिद्धि प्राप्त करने के लिये किया। आगे चलकर इस संगीत का प्रयोग मनोरंजन के लिए विभिन्न स्थानों में विभिन्न लोक भाषाओं में प्रदर्शित होता गया। यह लोक संगीत नियम नहीं था परन्तु बाद में यह दो भागों में विभाजित हुआ। जो नियम-बद्ध हो गया वह शास्त्रीय संगीत कहलाया एवं जो शास्त्रीय नियमों के बन्धनों से मुक्त रहा वह लोक संगीत कहलाया। आज भी इसमें वही प्राचीन रूप देखने को मिलता है। सदियों पुराने यह लोकगीत, ताल आज भी विभिन्न लोक कलाकारों द्वारा प्रदर्शित किए जाते हैं।

वेदों के अनुसार गन्धर्व, किन्नर, तुमरू आदि ऋषि-मुनियों द्वारा संगीत कला का प्रचार किया गया। हिमाचल में इन ऋषियों के नाम के स्थान पाए जाते हैं जैसे—किन्नर प्रदेश जो कि आज किन्नौर जिला के नाम से जाना जाता है। वस्तुतः किन्नरों का निवास स्थान ही है।

संगीत कला के व्यावसायिक कलाकार हिमाचल में हैं जो अपनी परम्परा तुमरू ऋषि से मानते हैं। तुमरू शब्द ही बिगड़ कर 'तुरी' शब्द बना। आगे चलकर ये

कलाकार तुरी जाति के नाम से जाने जाते हैं। तुमरू ऋषि परम्परा के ये व्यावसायिक कलाकार लगभग सभी प्रकार की संगीत कला को ही जीवन निर्वाह का साधन मानते आ रहे हैं।

देवी-देवता का मन्दिर हो या राज दरबार हो या कोई सांस्कृतिक उत्सव इन्हीं लोगों द्वारा, विशेषकर इन प्राचीन ताल वाद्यों पर ही संगीत का प्रदर्शन किया जाता रहा है। यूं तो संगीत कला का प्रदर्शन सभी वर्गों एवं धर्मों के लोग करते आ रहे है परन्तु तुरी परम्परा के लोग विशेषकर आज तक इस कला का प्रचार करते आ रहे हैं। शास्त्रों के अनुसार भी इस कला का अधिक प्रचार गन्धर्व, किन्नर, तुमरू, पण्डितों द्वारा किया गया है।

आधुनिक काल के प्रारम्भ में इस कला की लोकप्रियता घटती गई, जिस कारण कलाकारों के मान-सम्मान को भी आघात पहुंचा। जनरंजन और ईश्वर आराधना की यह संगीत कला जिसका प्रयोग सभी वर्गों के लोग करते आ रहे थे कुछ वर्गों द्वारा इसे एक निम्न कला मान लिया गया था परन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् सरकार एवं कलाकारों के प्रयत्नों से यह कला अपने पुराने मान-सम्मान के साथ फिर से लोकप्रिय हो रही है।

किन्नर प्रदेश में आज भी यदि खोज की जाए तो यहां पर वेदों में वर्णित उदात्त, अनुदात्त व स्वरित तीन स्वरों पर आधारित लोकगीत पाए जाते हैं। भरत के नाट्यशास्त्र में षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम, गान्धार ग्राम का वर्णन मिलता है और कहा जाता है कि गान्धार ग्राम जो निषाद स्वर से गन्धर्वों द्वारा प्रयोग होता था वह प्रायः प्राचीन काल से पूर्व ही लुप्त हो गया था परन्तु **हिमाचल में ऐसे लोक गीत भी हैं जोकि गान्धार ग्राम अर्थात् निषाद स्वर से प्रारम्भ होते हैं।** इस प्रकार शास्त्रों में वर्णित स्वरों में निबद्ध गीत एवं ताल यहां पाए जाते हैं। अध्ययन करने से हमें ज्ञात होता है कि यहां के लोकताल भी बहुत-से ऐसे हैं जोकि शास्त्रीय तालों से समानता रखते हैं किन्तु इन प्राचीनतम तालों की अपनी एक अलग विशेषता है। हिमाचल प्रदेश में विभिन्न अवसरों पर विभिन्न प्रकार के लोकतालों का प्रयोग होता है। हिमाचल के सभी क्षेत्रों अर्थात् जिलों में विशेष प्रकार के ताल प्रचलित हैं जोकि प्रत्येक सांस्कृतिक उत्सव एवं देव त्योहारों के अवसर पर लोक वाद्यों पर बजाए जाते हैं।

जिस प्रकार यहां के विभिन्न उत्सव हैं—जैसे विवाह, मुंडन संस्कार, जन्मोत्सव आदि, सांस्कृतिक उत्सव और देव त्योहार जैसे कि शिवरात्रि, बाड़ी का मेला, माहू नाग का मेला, मुढोल देवता का मेला, सूई रानी का उत्सव, देव जातर तथा देवताओं के आगमन के त्योहार इत्यादि सभी अवसरों पर लोकतालों का लोक वाद्यों पर स्वतन्त्र रूप से वादन किया जाता है और सामूहिक रूप में भी। यहां के लोकताल

लोक भजनों एवं लोकगीतों के साथ भी लोक वाद्यों पर ताल संगत के लिए बजाए जाते हैं।

यहां विभिन्न प्रकार के ऐसे उत्सव हैं जिनके नामों से भी तालों के नाम जुड़े हैं और लोकनृत्यों के नामों पर भी लोकतालों का नामकरण हुआ है। उदाहरणार्थ—नाटी लोकनृत्य के साथ बजने वाला **'नाटी ताल'** जिसमें तीन प्रकार की लय का प्रयोग होता है जैसे—ढीली नाटी, सवांगटी नाटी और ताऊली नाटी। इसी प्रकार महिला नृत्य गिद्धे के साथ गिद्धा ताल और विवाह उत्सव में भी कई प्रकार के ताल जो विभिन्न मात्राओं में निबद्ध होते हैं बजाए जाते हैं जैसे—**जणेत** ताल, **लांवां** ताल, **मुकलावा** ताल, **बेदी** ताल, **बटेड़ी** ताल, **तेल-मेल** ताल तथा **पूजा** ताल इत्यादि। इसके अतिरिक्त नगाड़ा-ढोल पर शहनाई व करनाल की संगत के साथ "नौपद" से उत्सव का श्रीगणेश किया जाता है। 'नौपद' के अन्तर्गत नौ ताल बजाने का प्रचलन रहा है। जिनमें—आरती ताल, बधाई ताल, त्रीताल, नौबत एक ताल, झपताल, ढ़ईया, नवेद ताल, नट ताल, जंग ताल।

इन तालों का अधिकतर प्रचलन शिमला, सोलन, सिरमौर और बिलासमुर आदि क्षेत्रों में ही है। इन क्षेत्रों में यहां के इन लोकप्रिय लोक वाद्यों का वादन प्रत्येक सांस्कृतिक उत्सवों पर अनिवार्य माना जाता है। जैसे नगाड़ा जिसे वेदों में दुंदुभि नाम से जाना जाता था, इस वाद्य की व वादक कलाकार की चावल, नैवेद्य, धूप मौली कुंगू के साथ पूजा की जाती है। फिर सर्वप्रथम नगाड़ा से नौपद का प्रारम्भ होता है। इसके उपरान्त अन्य कलाकार भी नगाड़े के साथ दूसरे लोक वाद्यों जैसे ढोल, शहनाई, करनाल इत्यादि का सामूहिक रूप से वादन करते हैं। इसके अतिरिक्त हिमाचल के विभिन्न क्षेत्रों में ऐसे ताल भी प्रचलित हैं जो कि कृषि कार्य के समय प्रयोग होते है।

कृषि कार्य के समय जब श्रावण मास में मक्की की गुड़ाई की जाती है तो भी लोक वाद्यों पर वीर रस के ताल बजाए जाते हैं। इसके साथ बजने वाले प्रमुख ताल को **गुड़ाई ताल** कहते हैं। यह ताल केवल दो ढोलों पर बजाया जाता है। इसके साथ शहनाई पर लोक कलाकार शास्त्रीय धुन या लोक धुन बजाता है। बायां नगाड़ा ताली के लिए प्रयोग होता है। यह ताली एक छड़ी के साथ समान रूप से दर्शाई जाती है जिसे डाँगा कहते हैं।

इसमें बराबर लय की चाल रहती है। इस ताल के साथ झूमते हुए मस्ती के साथ फसल की गुड़ाई की जाती है। बिना थकान अनुभव किए आनन्दपूर्वक अधिक से अधिक खेतों में गुड़ाई का कार्य गांव के किसान लोग एक ही दिन में एक किसान की भूमि में पूरा कर देते हैं। गुड़ाई सम्पन्न होने के पश्चात् सायंकाल में घर लौटते समय लोकगीत **फुलणु** गाते हुए तथा लोकतालों पर नृत्य करते हुए उस

कृषक के घर लौटते हैं जिसने गुड़ाई का आयोजन किया है। इस प्रकार हिमाचल प्रदेश के लोकताल इतने विशिष्ट हैं कि जन्म से लेकर शवयात्रा तक के विभिन्न ताल यहां प्रचलित हैं। जैसे–चैत्र ताल, ढोलरू ताल, **धुमसरू** ताल, लोक **रामायण** ताल, **छोड़का** ताल, देवताल, **सक्रांति** ताल, **खेल** ताल, करयाला ताल, **लुड्डी** ताल, **छींज** ताल, **भड्डूआं** ताल, जागरा ताल, **बेल** ताल, **गूग्गा** ताल आदि। हिमाचल के विभिन्न क्षेत्रों के बहुत-से ताल शास्त्रीय तालों से मेल खाते हैं। जैसे कि चम्बा का **चम्बयाली ताल शास्त्रीय तालों में दीपचन्दी से समानता रखता है।** दोनों तालों में 14 मात्राएं हैं।

चैत्र मास में गाए जाने वाले मौसमी गीतों के साथ ढईया ताल का प्रयोग होता है जो कि शास्त्रीय ताल **रूपक** से मेल खाता है। दोनों ही तालों की 7 मात्राएं हैं। इसी प्रकार महिला नृत्य गिद्धे के साथ प्रयोग होने वाला भड्डूआ अथवा गिद्धा ताल शास्त्रीय ताल कहरवा से मेल खाता है। दोनों ही प्रकार के तालों की 8 अथवा 4 मात्रा मानी जाती है। इसके अतिरिक्त "नौपद" के अंतर्गत बजाए जाने वाले नौ ताल शास्त्रीय तालों से समानता रखते हैं परन्तु उनके बोल, बांट व लय में अपनी एक अलग विशेषता है।

इसके अलावा हिमाचल में नृत्य ताल नाटी अत्यन्त लोकप्रिय है। यह नाटी ताल शास्त्रीय ताल दादरा से समानता रखता है। इस ताल की मात्राएं 4, 8 और 6, 12 में विभाजित की जाती हैं। इस ताल का इतिहास इसके नाम से ही जाना जाता है। यही ताल कुछ बोलों के अन्तर के साथ भरत नाट्यम् में भी प्रयोग होता है। दोनों ही ताल नृत्य के हैं जिनमें लय की समानता है। केवल बोलों में कुछ अन्तर पाया जाता है। मेरे विचार से यही एक आदि ताल है जिसका सम्बन्ध सीधा शंकर भगवान के नृत्य से है। दक्षिण भारत में आदि-ताल नामक ताल अत्यन्त प्रचलित है। इसकी मात्राएं भी आठ हैं। नाटी का आठ मात्रा का रूप भी इस ताल से मेल खाता हैं।

शंकर भगवान नटराज के नृत्य से नाटी ताल का जन्म हुआ, ऐसा मेरा विचार हैं, क्योंकि इसका प्रमाण हमें प्राचीन नृत्य की मुद्राओं से भी मिलता है जिसे शंकर पार्वती की विभिन्न प्राचीन मूर्तियों में विभिन्न भावों में दर्शाया गया है। नाटी नृत्य की बहुत-सी प्राचीन भाव-भंगिमाएं भरत नाट्यम् से भी मिलती हैं। यही नाटी ताल आज भी सभी के मन को नृत्य करने के लिए लालायित कर देता है। हिमाचल में बहुत-से ऐसे ताल हैं जो कि शास्त्रीय तालों में नहीं पाए जाते जैसे कि $11\frac{1}{2}$ मात्रा का ताल जिनमें पूरी मात्रा के स्थान पर आधी मात्रा का ही प्रयोग किया जाता है। ऐसे कई रोचक ताल **'बाड़ा देओ'** की यात्रा के साथ सदियों से बजाए जाते हैं। बाड़ा देओ को पांच पाण्डव देवता भी कहते हैं।

कहा जाता है कि जब पांच पाण्डव पहाड़ों की ओर विश्राम के लिए आए तो उन्होंने एक ऊंची चोटी अर्थात् धार पर विश्राम किया। इस चोटी अथवा धार को आज भी "बाड़ी धार" के नाम से जाना जाता है। सरयांज गांव की यह धार अथवा पहाड़ी अर्की तहसील में है। इस धार के सिरे पर बान और चील के घने जंगल के बीच पांच पाण्डव देवता का मन्दिर बना हुआ है। इस मन्दिर को 'बाड़ा देओ' के नाम से जाना जाता है। प्रत्येक वर्ष आषाढ़ मास की सक्रांति को यहां पर एक भव्य मेला लगता है जिसमें तीन गावों से देवता की तीन पालकियां सजधज कर आती हैं। जिसके आगे मंगलामुखी पण्डित लोग विभिन्न वाद्यों पर विभिन्न तालों का प्रदर्शन करते हुए विभिन्न बोल, बांट, परन, टुकड़ों सहित तालों को बजाते हैं। इसी यात्रा के साथ वादक कलाकारों द्वारा 11$\frac{1}{2}$ मात्रा के ताल का परन तथा टुकड़ों सहित बखूबी प्रदर्शन किया जाता है।

हिमाचल के लोक वाद्यों ढोल व नगाड़ा की वादन शैली अपना एक विशेष स्थान रखती है। जो वादन हाथ की दस उंगलियों से सम्भव नहीं वह वादन ये वादक कलाकार केवल दो छड़ियों के साथ ढोल-नगाड़ों पर विभिन्न बोल, बांट, लय, परन व टुकड़ों सहित आकर्षक रूप से प्रदर्शित करते हैं। पहाड़ों की ये लोकताल कला जो कि विभिन्न सुप्रसिद्ध लोक वादक कलाकारों द्वारा प्रदर्शित की जाती रही है। अधिकतर पहाड़ी रियासतों के राज दरबारों, सांस्कृतिक उत्सवों, त्योहारों तक ही सीमित रही। प्रदेश के बाहर इसका प्रचार व प्रसार न हो पाया। इसके मुख्य दो कारण रहे—एक तो यहां पर यातायात के साधन उपलब्ध नहीं थे जिससे कि कला का प्रचार प्रदेश के बाहर हो सकता।

दूसरा कारण यह रहा कि यहां के कलाकार अधिकतर शिक्षित नहीं थे जो कि वे इन तालों को प्रकाशित कर प्रचार में ला सकते और उस समय प्रकाशन सुविधा का भी यहां पर अभाव रहा। इसके अतिरिक्त ये सीधे-साधे कलाकार पहाड़ों में अपने-अपने क्षेत्रों में ही रहना पसन्द करते थे।

राज दरबारों में उस समय प्रतियोगिता का प्रचलन भी था इसलिए ये कलाकार अपनी कला अन्यों को सिखाना भी नहीं चाहते थे। जिस कारण यहां की कला केवल पहाड़ों तक ही सीमित रह गई।

स्वतंत्रता के पश्चात् हिमाचल सरकार तथा हिमाचल अकादमी कला के उत्थान हेतु विभिन्न आयोजन कर रही है—जिसके कारण अब यह लोककला प्रचार व प्रकाश में आ रही है। आज जबकि दूरदर्शन व आकाशवाणी जैसे कला-प्रसार के साधन हैं, यदि सुप्रसिद्ध कलाकारों को अवसर दिया जाए तो ये कला देश में ही नहीं अपितु विदेशों में भी लोकप्रिय हो सकती है। लोककला-तालों की कोई भाषा नहीं होती। वाद्य संगीत की लय, चाल, माधुर्य मनुष्य को ही नहीं पशु-पक्षी को भी

मोहित कर देती है। कोई भी कला प्रेमी किसी भी भाषायी क्षेत्र का रहने वाला हो परन्तु वे वाद्य संगीत से आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता।

तालों का सोदाहरण विश्लेषण

1. त्रिताल या अद्धा तीताला

यह ताल प्रायः नगाड़ा ढोल पर सम्मिलित रूप से शहनाई की धुन के साथ नौबत के अन्तर्गत बजाया जाता है। इस ताल की मात्रा 3 ताली 4 मानी गई है। यह ताल शास्त्रीय ताल के **जत ताल** से समानता रखता है। इस ताल के बोल, भाग इस प्रकार हैं–

धाक्ड़	धा	धाधा	तीं	ताक्ड़	धीं	धाधा	कड़कड़
×		2		3		4	

दूसरा प्रकार

धा	धीं	धाधा	तीं	ता	धीं	धाधा	धीं
×		2		3		4	

2. जत ताल

यह शास्त्रीय ताल है। इसकी 16 मात्राएं मानी गई हैं। परन्तु बोल चाल समान है। यदि लोक ताल-अद्धा तीताला अवग्रह के साथ 8 मात्रा की चाल अथवा लय के साथ 16 मात्रा कर दी जाए तो यह लोकताल शास्त्रीय जत के समान हो जाएगा। जत ताल को अवग्रह के साथ 16 मात्रा में निबद्ध करते हैं जबकि यह लोकताल तीताला 8 मात्रा में विभाजित किया गया है। उदाहरण के लिए–

जत ताल के बोल–

धा	ऽ	धीं	ऽ	धा	धा	तीं	ऽ	ता	ऽ	तीं	ऽ	धा	धा	धीं	ऽ
×				2				0				3			

3. नौपद एक ताला

यह ताल भी नगाड़ा ढोल पर बजाया जाता है। शहनाई की लोकधुन अथवा शास्त्रीय रागों की धुन के साथ इस ताल को बजाते समय कलाकार विभिन्न लयकारी बोल, बाँट, परन तथा टुकड़ों का प्रयोग बड़ी कुशलता से करते हैं। यह ताल शास्त्रीय एक ताल के समान है। दोनों ही तालों की 12 मात्राएं हैं और लय में भी समानता पाई जाती है। बोलों की चाल में भी समानता है। लोकताल के बोल लोक वाद्यों के अनुसार हैं। जबकि शास्त्रीय ताल एक ताल के बोल तबले के-बोलों के अनुसार हैं–

नौपद एक ताल की ताल लिपि भाग-4, ताली-4

धा	कड़कड़	धा	धा	तां	तां	ता	कड़कड़	धा	तां	धां	तां
×			2			3			4		

4. शास्त्रीय एकताल

मात्रा-12, भाग-6, ताली-4, खाली-2

धीं	धीं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धागे	तिरकिट	धी	ना
×		0		2		0		3		4	

इस प्रकार दोनों ही तालों में समानता भी पाई जाती है दोनों तालों के बोलों की अपनी-अपनी विशेषता है परन्तु लोक कलाकार जिस प्रकार विभिन्न लयकारियों का प्रदर्शन बोल, टुकड़ों के साथ इस लोक ताल में करते हैं वह एक बहुत ही रोचक एवं कलात्मक विशिष्टता रखता है जो क्रियात्मक रूप से जाना जा सकता है।

5. चम्बयाली लोकताल

यह ताल शास्त्रीय ताल **दीपचंदी** व **चाचर** ताल से समानता रखता है। दोनों ही प्रकार के तालों की मात्राएं 14 हैं और बोल भी समानता रखते हैं। केवल अन्तर यह है कि चम्बयाली ताल ढोलक पर बजाया जाता है।

इस कारण इसके बोल खुले ढोलक पर बजाने के अनुसार ही बनाए गए जबकि दीपचंदी-चाचर ताल के बोल तबले के अनुसार बनाए गए हैं परन्तु चाल, लय समान दिखाई देती है।

लोक ताल–चम्बयाली मात्राएं–14, ताली–4, भाग–4

धा ऽधा ऽन	धा धा कड़ कड़	ता ऽता ऽन	धा धा कड़ कड़
×	2	3	4

6. शास्त्रीय ताल दीपचंदी

इस ताल की भी 14 मात्राएं हैं और 4 भाग, 3 ताली, 1 खाली मानी गई है। यह ताल तबले पर बजाई जाती है।

ताल लिपि

धा धीं ऽ	धा धा तीं ऽ	ता तीं ऽ	धा धा धीं ऽ
×	2	0	3

इस प्रकार चम्बयाली लोकगीतों के साथ यह ताल बजाए जाते हैं। जिनका रूप समान दिखाई पड़ता है।

7. आरती ताल

यह ताल देव पूजा का ताल है। नौपद का प्रारम्भ प्रायः इसी ताल से किया जाता है। इस ताल की एक अद्‌भुत चाल लय है। इस ताल का सम तक भी मालूम करना कठिन है। आरती ताल की मात्राएं 12, ताली-4 और भाग-4 हैं।

ताल लिपि

धा ता धीन	धा ता कड़कड़	तां तड़ां धीऽन	धा ता कड़कड़
×	2	3	4

यह ताल शास्त्रीय ताल के चार ताल के समान है। शास्त्रीय ताल चार ताल की भी 12 मात्राएं ही हैं। यह ताल भी खुले बोलों का है और **पखावज** वाद्य पर बजाया जाता है। इसके 2 खाली होने के कारण 6 भाग हैं और ताली-4 परन्तु लोकताल आरती की लय बोल एक अलग विशेषता रखती है।

यह छड़ी के साथ बजाने वाली ताल है। उसी प्रकार के इसके बोल हैं। यह ताल गुरु द्वारा ही भली प्रकार से वाद्य पर बजाए व सीखे जा सकते हैं। इन्हें लिपिबद्ध करके निम्न प्रकार से दर्शाया जा रहा है–

8. चारताल

मात्रा-12, ताली-4, खाली-2, भाग-6

धा धा	दीं ता	किट धा	दीं ता	किट तक	गदि गन
×	0	2	0	3	4

9. नाटी ताल

इस ताल की लय की अपनी एक अलग विशेषता है। इस ताल को दो प्रकार से बजाया व विभाजित किया जा सकता है। 4 तथा 8 मात्रा, 6 तथा 12 मात्रा में इसकी सीधी चाल **कहरवा दादरा** के समान है। इसकी लय के साथ प्रत्येक कला प्रेमी नृत्य करने को लालायित होकर झूम उठता है।

इस नृत्य की ताल प्राचीनतम नृत्य भरत नाट्यम् के साथ बजने वाली ताल से भी समानता रखती है और इस ताल की ताली व चाल दर्शाने के लिए बायां नगाड़ा डाँगा, एवं हुड़क का प्रयोग भी होता है। हुड़क भी शिव के डमरू के समान ही वाद्य है, जिसका प्रदर्शन बड़े आकर्षक ढंग से हाथ के साथ लय दर्शाने के लिए तथा ताल को आकर्षक ढंग से बजाने के लिए किया जाता है।

नाटी ताल

ताल लिपि

धा तीं ना	धीं ना की	धीं ना की	धीं कड़ कड़
×	2	3	4

लिपि 4 मात्रा में

धातीना	धातीना	धीनाकी	धींकड़कड़
1	2	3	4

भरत नाट्यम् नृत्य के साथ जो ताल बजती है उसकी समानता भी इस नाटी ताल में पाई जाती है। उसके बोल तबला व पखावज के अनुसार हैं। जबकि नाटी के बोल ढोल-नगारा पर बजाए जाने वाले बोलों के अनुसार हैं।

10. भरत नाट्यम् नृत्य ताल के बोल

लिपि

त ता ता	थेऽ थेऽ ऽम	त त ता	थे ई ऽ
×	2	3	4

बोल हुलक

ढं ऊँ डा	ढंऊँ ढं ऊँ	ढंऊँ ढां ऊं	ढं ऊँ डा
×	2	3	4

□

लाहौल जनपद के लोक वाद्य तथा लोक संगीत में राग छाया

डा॰ सूरत ठाकुर

लाहौल : संक्षिप्त परिचय

क्षेत्रफल की दृष्टि से लाहौल-स्पिति हिमाचल प्रदेश के सभी जिलों से बड़ा है। यह 13688 वर्ग किलोमीटर भू-भाग में फैला तथा उत्तरी अक्षांश में 31°44,57 तथा 33°42,54 और पूर्व में 76°56,29 तथा 78°41,34 में स्थित है। इसके पूर्व में तिब्बत उत्तर में जम्मू-कश्मीर का लद्दाख क्षेत्र तथा पश्चिम और दक्षिण में चम्बा और कुल्लू जिला स्थित हैं। यह दो क्षेत्रों में विभाज्य है। जिसमें एक लाहौल जनपद तथा दूसरा स्पिति घाटी।

लाहौल घाटी विश्व प्रसिद्ध रोहतांग दर्रे के उस पार स्थित है जिसमें एक चन्द्रा घाटी दूसरी गाहर वैली तथा तीसरी पट्टन घाटी शामिल है। यहां मुख्यतः हिन्दुओं में स्वाँगला, गद्दी तथा बौद्ध लोग रहते हैं।

लाहौल जनपद को 'ल्याहुल' अर्थात् देवताओं का देश भी कहा गया है। यहां के हिन्दुओं में राजा 'घेपङ्' की पूजा होती है जो कुल्लू के जमलू देवता का भाई है जिसे लाहौल में 'जगरुंग' के नाम से जाना जाता है। यहां बौद्ध धर्म को मानने वाले भी कम नहीं हैं। जगह-जगह बौद्ध विहार स्थापित हैं, जिनमें केलंग के सामने करदंग गोंपा, केलंग में शैशुर गोम्पा, मनचट का कंगानी गोंपा, लपचंग गोंपा आदि प्रमुख हैं। इस जनपद में मुख्य रूप से जौ, गेहूं, मटर, गोभी, बीज के आलू तथा होप्स की खेती होती है।

सांगीतिक स्थिति

लाहौल जनपद 15 नबम्बर से 15 जून तक हर वर्ष शेष भाग से कटा रहता है। इस काल में लोगों का समय मेलों, त्योहारों और सांगीतिक उत्सवों में ही व्यतीत

होता है। इसीलिए लाहौल के लोक संगीत का प्रेरणात्मक बीज वहां के सामाजिक विश्वासों, परम्पराओं, रूढ़ियों, रीतिरिवाजों, उत्सवों, त्योहारों के मार्मिक मूल्यों में अंकुरित होता है। लाहौल जनपद में लोकवाद्यों, लोक-नृत्यों और लोकगीतों का समृद्ध भण्डार है।

लोकवाद्य

विश्व का कोई भी समाज ऐसा नहीं है जहां लोकवाद्यों का प्रचलन न हो। जिस प्रकार लोकगीत पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक परम्परा से निरन्तर चलते रहते हैं, उसी प्रकार लोकवाद्य भी पीढ़ी दर पीढ़ी सुनने तथा यादगार के माध्यम से निरन्तर विद्यमान रहे हैं। दूसरे शब्दों में लोकवाद्यों का प्रचलन उतना ही प्राचीन है जितनी मानव जाति। मानव जब विकास के प्रथम चरण में था तब ही उसने अपने इर्द-गिर्द व्याप्त प्राकृतिक स्वरलहरी के आधार पर ही लोकवाद्यों का निर्माण किया होगा। अर्वाचीन काल से ही मनुष्य किसी न किसी रूप में वाद्यों का प्रयोग करता आया है। जैसे-जैसे सभ्यता में प्रगति आती गई, वैसे-वैसे वाद्यों के आकार-प्रकार एवं प्रयोग में भी नये-नये आयाम जुड़ते गये।

वास्तव में संगीत का आधार **नाद** है जिसे मानव ने अपने कण्ठ से या संगीत वाद्यों द्वारा उत्पन्न किया है। वाद्ययन्त्र अपने आधार से ही संगीत की आत्मा को प्रकट करते हैं। वाद्यों का इतिहास वास्तव में मानव की सभ्यता और संस्कृति का इतिहास है जो मनुष्य की सृष्टि से ही प्रकृति के अंगसंग रहा है। जिससे लगता है कि प्रत्येक समाज में वाद्यों के निर्माण में विभिन्न प्राकृतिक ध्वनियां ही सबसे अधिक प्रेरक सिद्ध हुई होंगी।

लोकवाद्य प्रत्येक क्षेत्र में जीवन से मृत्यु और मृत्यु से जीवनपर्यन्त अपनी उपस्थिति से रस और लय का संचार करते रहे हैं। लाहौल जनपद में भी जन्म से मृत्यु पर्यन्त लोकवाद्यों की उपस्थिति प्रत्येक अवसर पर देखी जा सकती है। यहां के लोकवाद्य जहां विवाह जैसे मंगल कार्यों पर खुशी को प्रकट करते हैं, वहीं शवयात्रा जैसे मातमी माहौल में ढोल का बजाना और शहनाई पर शोकधुनें शोक का संदेश देती हैं। विभिन्न त्योहारों एवं पर्वों जैसे—जनवरी के अन्त एवं फरवरी के प्रारम्भ में मनाये जाने वाले "खोहल" या "खोगल" उत्सव में लगभग आधी रात के समय नगाड़ा वादक किसी घर की छत पर बैठकर बांसुरी की धुन के साथ नगाड़ा बजाना शुरु करते हैं जो इस बात का सूचक होता है कि "खोगल" मनाने का उपयुक्त समय आ गया है। इसमें नगाड़े की आवाज सुनकर सभी जनपदवासी लकड़ी की मशालों को लेकर घर से बाहर निकलते हैं। इसी तरह "पूना" त्योहार में भी जलूस का नेतृत्व नगाड़ा वादक ही करते हैं।

पट्टन घाटी में मनाये जाने वाले "दशें" में भी देवता की जमीन के किनारे बांसुरीवादक और नगाड़ावादक बैठ जाते हैं तथा उनकी धुन पर लोग नृत्य करते हैं। इसी प्रकार "पोरी" उत्सव में भगवान त्रिलोकीनाथ की मूर्ति को दूध और दहीं से नहलाने के बाद ढोल, नगाड़े, रणसिंगा और पौहन आदि लोकवाद्यों को बजाते हुए मंदिर की परिक्रमा की जाती है।

बौद्ध गोम्पाओं में भी वाद्ययन्त्रों का तांत्रिक विधान के अनुसार प्रयोग होता है। बौद्धों की शवयात्रा में भी लामा लोग जब प्रार्थना करते हैं उस समय भी ढोल बजाये जाने की परम्परा है।

लाहुल जनपद में प्रचलित लोकवाद्य

बांसुरी

बांसुरी एक अत्यन्त प्राचीन वाद्य है। वैदिक काल से लेकर अब तक सबसे अधिक बार इस लोकवाद्य का उल्लेख हुआ है। नारदीय शिक्षा में बंशी की महत्ता में लिखा है "यः सामगानाम् प्रथमः स्वरः स वेणोर्मध्यम" अर्थात् सामगान गाने वालों का जो प्रथम स्वर है, वह वेणु का मध्यम है।

लाहौल जनपद में तो बांसुरी सबसे लोकप्रिय वाद्य है। यहां बांसुरी बांस, पीतल तथा चांदी की बनाई जाती है। इसकी लम्बाई दस अंगुल से पन्द्रह अंगुल तक होती है। इसमें आठ रन्ध्र होते हैं। जिसमें पहला रन्ध्र वायु के निर्गमन के लिए होता है। बाकी सात रन्ध्र स्वरों के लिए निर्धारित होते हैं। बंसी को अधर पर आड़ी रखकर तथा फूंक मारकर एक हाथ की कनिष्ठ अंगुली को छोड़कर बाकी सात अंगुलियों से बाकी छिद्रों को दाब लिया जाता है। लाहौली लोक-नृत्य में बांसुरी बड़ी मधुर लगती है। भेड़ें चराने वाले गडरियों का यह प्रिय वाद्य रहा है। एक पहाड़ी से दूसरी पहाड़ी और एक गांव से दूसरे गांव तक प्रेम संदेश भेजने में यहां बांसुरी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है।

शहनाई

शहनाई भी एक प्राचीन लोकवाद्य है। इसका वादन प्रातः सायं देवपूजा, पुत्र जन्म, विवाह और शवयात्राओं में होता है।

शहनाई धतूरे के फूल के आकार की एक हाथ लम्बी होती है। कहीं-कहीं यह चांदी की भी बनी होती है। इसमें छः रन्ध्र होते हैं। इसके मुख पर चांदी से निर्मित टुकड़ा होता है। जिसे 'पींपी' कहते हैं। पींपी में सरकण्डा लगा होता है जिसे पम्पिका कहते हैं। ध्वनि निकालने के लिए पम्पिका को पानी या थूक से गीला करना पड़ता है।

पम्पिका को शहनाई के ऊपर के भाग में जहां एक छल्ला चांदी या हाथीदांत

का लगा रहता है, से जोड़ा जाता है। पम्पिका को मुंह से लगाकर सांस फूंककर स्वर निकाला जाता है।

ताङलिंग

यह शहनाई के आकार का मानवीय हड्डी से निर्मित बौद्ध लामाओं द्वारा बजाया जाने वाला लोकवाद्य है। स्त्रि यह जांघ की हड्डी का बना होता है। इसके निचले छोर पर वायु निर्गमन के लिए दो छोटे-छोटे छिद्र होते हैं।

इसका मुखरन्ध्र रजतजड़ित होता है, तथा यह वाद्य मनका एवं चांदी की पट्टी से शृंगारित रहता है। बौद्धों में प्रचलित इस वाद्य की लम्बाई 18 इंच तक होती है। मान्यता है कि प्राचीन समय में किसी स्त्री की मृत्यु होने पर उसकी टांग की हड्डियों को इकट्ठा करके इस वाद्य का निर्माण किया जाता था। जनश्रुति के अनुसार सुन्दर युवती की हड्डी से बना यह लोकवाद्य अधिक मधुर होता था। इसका सम्बन्ध तन्त्रविद्या से माना जाता है। विश्वास किया जाता है कि इसके बजाने पर मृत आत्माएं इकट्ठी हो जाती हैं।

ग्यालिंग

जनजातीय क्षेत्र लाहौल-स्पिति में स्थित बौद्धविहारों में लामाओं द्वारा प्रयुक्त यह वाद्य शहनाई सदृश लकड़ी का बनाया हुआ आनुष्ठानिक लोकवाद्य है। इसका वादन लामाओं द्वारा नृत्य के समय होता है।

नरकाल

छः फुट लम्बी तांबे या चांदी की बनी हुई आकृति को शेष हिमाचल में करनाल कहते हैं परन्तु लाहौल जनपद में इसे 'नरकाल' कहते हैं। यह ओंठ से सटाये जाने वाले सिरे से लगातार आगे की ओर फैलता जाता है इसका अग्रमुख लगभग एक मीटर परिधि का होता है।

रणसिंगा

रणसिंगा लोकवाद्य का वादन भी लाहौल में होता है। यह अंग्रेजी के (S) अक्षर के आकार का होता है। इसके दो भाग होते हैं। यह देववाद्य के रूप में हिमाचल के अन्य क्षेत्रों में भी प्रचलित है।

ढोल

लाहौल जनपद में ढोल एक महत्त्वपूर्ण वाद्य है। यह एक पीतल का खोल जो लगभग 20 इंच लम्बा, जिसके मुख का व्यास 10 इंच होता है। दोनों ओर बकरी

के चमड़े से मढ़ा जाता है। इसमें आठ घर होते हैं। इसके बायें पूड़े का नाद ऊंचा तथा दायें पूड़े का नाद नीचा एवं गम्भीर होता है।

नगाड़ा

वैदिक काल से ही अवनद्ध वाद्यों में दुंदुभि जैसे चर्म वाद्यों का अधिक प्रचलन था। लाहौल-स्पिति में भी यह लोकवाद्य हर खुशी के मौके पर बजाया जाता है। यह कांसे या पीतल का एक त्रिशंकु के आकार का खोल होता है। जिसके मुख पर याक का चमड़ा मढ़ा जाता है।

पौण

जनश्रुति के अनुसार इस वाद्य का निर्माण देवाधिदेव शिवजी ने किया था। इसकी लम्बाई एक हस्त की होती है। यह डमरू के आकार का होता है जिसके दोनों मुखों का व्यास लगभग छः इंच होता है। दोनों मुखों में याक, भेड़ या बकरी की खाल से पूड़े लगते हैं इसे गले से लटकाकर दोनों हाथों के अंगूठे से रगड़ कर नाद उत्पन्न किया जाता है।

कांसे की थाली

घन वाद्यों में कांसे की थाली का प्रचलन भी लाहौल जनपद के लोक-नृत्य में होता है। बजाते समय थाली के नीचे छोटी कटोरी रखी जाती है। जिससे लकड़ी से बजाने पर झणण की ध्वनि निःसृत होती है।

लोक-नृत्य

लाहौल घाटी में शादी-विवाह एवं मेलों-त्योहारों में लोक-नृत्यों की अनोखी परम्परा है। घाटी में छम या प्रेत नृत्य के साथ-साथ अनेक प्रकार के और भी लोक-नृत्य प्रचलित हैं जो लोकगीतों की लय तथा पारम्परिक वाद्ययंत्रों की ताल पर नाचे जाते हैं। सामूहिक रूप से नाचा जाने वाला "जीमे" लोक-नृत्य जिसमें महिलाएं और पुरुष समान रूप से एक घेरे में नाचते हैं। हाथ में हाथ लेकर गोलाई में नाचा जाने वाला यह नाच बहुत ही सुन्दर होता है। "शै" लाहुल घाटी का प्रमुख नाच है। इस लोक-नृत्य शैली में धार्मिक भावना प्रकट होती है। इस धार्मिक लोक-नृत्य में गोम्पाओं में "लामा" नाच से भगवान बुद्ध को प्रसन्न करने की प्रार्थना करते हैं। इसमें लय देने के लिए नगाड़े का प्रयोग होता है और लोकगीतों की जगह केवल बांसुरी ही बजाई जाती है। इसी लोक-नृत्य को जब लोग खुले आंगन में नाचते हैं तब इसी नृत्य को "शिब्बू" कहते हैं। "मकर" नृत्य भी लाहुल घाटी में काफी प्रचलित है। इस नृत्य के प्रारम्भ होने के सम्बन्ध में एक जनश्रुति है—"कहा

जाता है कि घाटी में एक लिंगधर्मा राजा था वह बहुत ही क्रूर एवं निर्दयी था। वह प्रायः बौद्ध लामाओं और पंडितों को बिना कारण मारता रहता था। कई बार उनके धार्मिक ग्रन्थों को भी जला डालता था। इस प्रकार का अत्याचार करके वह अक्सर खुश होता और खुशी में नाच-गाने का आयोजन करवाता। ऐसे ही एक बार जब वह नाच-गाने का कार्यक्रम करवा रहा था और नाच देखने में लीन था तब एक नर्तक ने मौका पाकर अपने चोले के अन्दर छुपाये हुए खंजर से लिंगधर्मा के सिर पर वार किया और उसे मार गिराया।" तब से अत्याचार को समाप्त करने की खुशी में लोगों ने यह नृत्य शुरु किया था। इस लोक-नृत्य में पुरुष ही नाचते हैं जो लम्बे-लम्बे चोले पहनते हैं तथा मुंह पर मुखौटे भी लगाते हैं।

इस प्रकार इन लोक-नृत्यों की तरह गरे नृत्य, शौन नृत्य, मूकर नृत्य, गवन आदि नृत्य भी प्रचलित हैं।

लाहौल जनपद में लोकगीत

लोक संगीत की तीनों विधाओं में चाहे वह लोकवाद्य है चाहे लोक-नृत्य और चाहे लोकगीत है इनमें व्याकरण तो होता है परन्तु कलाकार उस व्याकरण से अनभिज्ञ होता है। लोकगीतों की शाश्वत परम्परा और धुनें श्रुति सिद्धान्त पर ही कायम रहती हैं। लाहौल घाटी के लोकगीत भी श्रुति सिद्धान्त पर ही निरन्तर गतिशील रहे हैं। वास्तव में यहां के लोकगीतों में यहां के वासियों की वह सहज, स्वाभाविक एवं प्राकृतिक अभिव्यक्ति रही है जिसमें घाटी का समस्त जीवन, सामूहिक सुख-दुःख, जय-पराजय, आशा-निराशा आदि मुखरित है।

लाहौल घाटी पूर्णतया प्रकृति पर आश्रित रही है फिर भी यहां के लोकगीतों में अन्य क्षेत्रों के गीतों की तरह सामाजिक रहन-सहन, दुर्घटना सम्बन्धी, प्रेम-प्यार, धर्म-सम्बन्धी, सांस्कृतिक, पारिवारिक, लोकगाथा सम्बन्धी, एवं सौन्दर्य प्रधान लोकगीतों की झलक देखने को मिलती है। लाहौल जनपद अन्य क्षेत्रों से छः महीने अलग-थलग रहता है और यहां के लोग अपने क्षेत्र को ही अपना देश कहलाने में नहीं हिचकिचाते। अपने देश के प्रति आस्था, विश्वास और प्रगति के गीत भी यहां गाये जाते हैं।

लाहौली लोकगीतों का सांगितिक पक्ष

सांगीतिक दृष्टि से लाहौल जनपद के लोकगीत सरल स्वरों में गाये जाते हैं। अधिकांश लोकगीतों का आधार स्वर ऊंचा होता है। जिस कारण उच्च तारता लोकगीतों की विशेषता बन जाती है। यहां के लोकगीतों मे प्रमुख स्वरों

में अद्‌भुत लोच है जो सीधे श्रोताओं की भावनाओं को स्पन्दित करते हैं। जिस प्रकार साम संगीत में उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित प्रकार के स्वरों का उल्लेख तथा गाधिक, आर्थिक, सामिक गायन की परम्परा का वर्णन मिलता है उसी प्रकार लाहौल जनपद में भी तीन, चार तथा पांच स्वरों के गीत बहुतायत में गाये जाते हैं।

वैसे देखा जाये तो जनपद के लोक गायकों का षड़ज एक जगह स्थित नहीं होता है। कभी वह ऊंची तारता में होता है तो कभी मध्यम तारता में।

लोकगाथाओं में स्वरों का क्रम कभी-कभी अवरोही होता है। लाहौल की लोकगाथाओं का गायन वैदिक ऋचाओं की तरह ऊपर से नीचे के स्वरों की ओर भी होता है।

राग छाया

लाहौल जनपद के लोकगीतों में दुर्गा, भोपाली, जोग, पहाड़ी आदि रागों की छाया दिखाई देती है। **भोपाली राग** के सदृश कुछ लोकगीत इस प्रकार हैं–

गीत

भाई साब जी केलांग सेला
केलांग बिजली झिलमिली
भाई साब जी केलांग सेला
केलांग हिंदू राजधानी
भाई साब जी केलांग सेला
कारदांगा गोम्पा बड़ी सानी हां
भाई साब जी केलांग सेला
ती त तुगवी नलको नलको
भाई साब जी केलांग सेला

भावार्थ : लाहौल जनपद का मुख्यालय केलांग बहुत सुन्दर है। जो बड़ी-बड़ी कोठियां, बिजली-पानी आदि सब सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण है। यहां का कारदंग गोम्पा यहां की शान है।

स्वरलिपि

स्थायी

सा रे गग	रे - -	सरे ग रे	सा - ध़
भा ई साब	जी ऽ ऽ	केऽ लां गा	से ऽ ला

सा रे गग	रे - -	सरे ग रे	सा - ध़
भा ई साब	जी ऽ ऽ	केऽ लां गा	से ऽ ला

अन्तरा

प प ऽध	सां ध प	ध प ग	ग - -
के लां ऽगा	बि ज ली	झि ली मि	ली ऽ ऽ

सा रे ग ग	रे - -	सांरे ग रे	सा - ध़
भा ई साब	जी ऽ ऽ	केऽ लां गा	से ऽ ला

शेष अन्तरे भी इसी प्रकार गाये जाते हैं।

इस गीत में स रे ग प ध स्वर ही प्रयुक्त हुए हैं जैसे कि भोपाली राग में प्रयुक्त होते हैं। इसमें सा स्वर प्रधान स्वर है। साथ ही ग और प स्वरों का प्रयोग भी बार-बार हुआ है।

इसी प्रकार एक अन्य गीत जिसमें यही स्वर प्रयुक्त हुए हैं इस प्रकार है—

गीत

गादी बाणे बाणे सेला चाल गादी हो
गादी धारे नाले सेला चाल गादी हो
गादी होकू किती चेलडू चाल गादी हो
गादी काला डोरा लाया चाल गादी हो
गादी नांगे पैरे सेला चाल गादी हो

भावार्थ : गद्दी जंगल-जंगल भेड़ें चराते हुए चल पड़ा है। गद्दी धार नाले से होते हुए बगल में हुक्के को लेकर और कमर में कला डोरा बांधे हुए वन-वन चल रहा है।

स्वरलिपि

स्थायी

सा धृ -	स रे -	ग प -	ग रे -
गा दी ऽ	बां णे ऽ	बा णे ऽ	से ऽ ऽ
सा ध -	सा - रे	ग रे -	सा - -
ला ऽ ऽ	चा ऽ ल	गा दी ऽ	हो ऽ ऽ

इसके सभी अन्तरे स्थायी की धुन पर ही गाये जाते हैं।

लाहौल जनपद के अधिकतर गीतों में स्थायी और अन्तरा एक जैसे स्वरों पर गाये जाते हैं। जो धुन स्थायी की होती है वही धुन अन्तरा की भी होती है।

यहां के बहुत-से गीतों में राग दुर्गा की छाया परिलक्षित होती है। जिस प्रकार दुर्गा में सा रे म प ध स्वर प्रयुक्त होते हैं उसी तरह यहां के लोकगीतों में भी वे स्वर लगते हैं। जैसे इन गीतों में हैं–

गीत

रामा नामा के सुबा शामा नाम ले।
रामा नामा के इज्जत वाला नाम ले ॥
रामा नामा के हाउसा वाला नाम ले।
रामा नामा के नाटीये वाला नाम ले ॥
रामा नामा के मां-बाप वाला नाम ले।
रामा नामा के सुबा शामा नाम ले ॥

भावार्थ : इस गीत में राम नाम लेने के लिए प्रेरित किया गया है। गीत में कहा गया है कि सुबह-शाम सभी को राम का मनन करना चाहिए। मनुष्य चाहे अच्छे मकान में रहता हो, चाहे वह इज्जत वाला हो, चाहे वह नाचने वाला हो, चाहे वह अमीर और गरीब हो सभी को राम का भजन सुबह-शाम करना चाहिए।

स्वरलिपि

स्थायी

प म -	रे सा -	रे - मप	ध प -	प - म	म - -
रा ऽ मा	ना ऽ मा	के ऽ सुबा	शा ऽ मा	ना ऽ म	ले ऽ ऽ

इसके शेष चरण इसी प्रकार गाये जाते हैं। एक अन्य गीत भी इन्हीं दुर्गा राग के स्वरों पर आधारित है। यथा–

गीत

बैठी वो लेणा ओ बैठी वो लेणा,
पीपलेरी छांव डारा को बैठी वो लेणा।
नाचि वो लेणा ओ नाची वो लेणा,
ढ़ोलकि रे ताला डाला को नाचि वो लेणा।
चली वो जाणा ओ चलि वो जाणा,
दूर परदेस डाला को चलि वो जाणा ॥

भावार्थ : प्रेमी प्रेमिका को कहता है कि हम दोनों ने पीपल की छांव में बैठकर पक्षियों की तरह प्रेम की पींगें डालनी हैं और मेले में ढोलक के ताल पर संग-संग नाचना है तथा दिल करे तो दूर परदेस में भी साथ-साथ जाना है।

स्वरलिपि

स्थायी

रे सा रे	प - -	म रे -	सा - -	रे सा रे	प - -	प - -
बै ठी वो	ले ऽ ऽ	ण ऽ ऽ	ओ ऽ ऽ	बै ठी वो	ले ऽ ऽ	ण ऽ ऽ

ध सां -	ध प -	रे म -	प ध -	म - -	रे सा रे	प - -	म रे -	सा - -
पी प ऽ	ले री ऽ	छां वा ऽ	डा रा ऽ	को ऽ ऽ	बै ठी बो	ले ऽ ऽ	णा ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ

गीत

रेत का पीरी जाणा हो,
मेरा सांगा डोलमा।
तीन न छेशू जाणा हो,
मेरा सांगा डोलमा।
केलंग जलसा जाणा हो,
मेरा सांगा डोलमा।
दीया छोन में करणा हो,
मेरा सांगा डोलमा।

भावार्थ : इस गीत में नायिका डोलमा को सम्बोधित किया है कि डोलमा के साथ त्रिलोकनाथ के मेले में जाना है और उसके साथ सिस्सू के मेले में तथा केलंग में होने वाले जलसे में भी जाना है। त्रिलोकनाथ के मेले में भगवान त्रिलोकी नाथ को दीया भी भेंट करना है।

स्वरलिपि (राग दुर्गा)

स्थायी

म म ध -	सां - ध -	प - ध -	प - - -
रे त का ऽ	पी ऽ री ऽ	जा ऽ णा ऽ	हो ऽ ऽ ऽ

सां म ध -	सा - ध -	प - म -	म - - -
मे ऽ रा ऽ	सां ऽ गा ऽ	डो ऽ ला ऽ	मा ऽ ऽ ऽ

शेष अन्तरे भी इसी तरह गाये जाते हैं।

उपर्युक्त दुर्गा राग के स्वरों जैसे गीतों में षड्ज, मध्यम और पंचम स्वरों की प्रधानता रही है। इनमें कई गीतों में प स्वर पर, कई में म स्वर पर न्यास हुआ है।

एक अन्य गीत जिसमें स्थायी और अन्तरा की धुनें अलग-अलग हैं। इन्हीं दुर्गा राग के स्वरों पर आधारित है। यथा—

गीत

आमों ता चुन्ना हेन्दु स्वर्गा वे रूठे।
आईयों ओई तारे चन्ना कूचा आपी।
चुन्न विचे यवतांई भते पेश्रा।
ओ ओ यवंताई भेतो पेश्रा।
सोइ-2 लन्दिग रंग ती रन्ज्रा
आयों ओई तारे चुन्ना कूचा आपी।
चुन्ना विचे यवतांई भते पेश्रा।
ओ ओ यवंताई भते पेश्रा।

भावार्थ : धरती मां जो हमें अन्न देती है और वह मां जो हमें जन्म देती है। यह दोनों स्वर्ग से भी सुन्दर हैं। घर से दूर जब होते हैं तो घर की बहुत याद आती है। परन्तु जब घर पहुंचते हैं तो सब कुछ भूल जाते हैं। रोहतांग के पार ठण्डी-ठण्डी हवा के झोंकों को भी घर पहुंचने पर भूल जाते हैं।

स्वरलिपि

स्थायी

सा सा रे	म मम म	म प म	रे - रे
आ यो ता	चु गऽ हिंदु	स्व र्गा वे	रू ऽ ठे
साऽ रे -	म - म	मम प म	रे - रे
आयो ओ ऽ	ता ऽ रे	चुंग कू चा	आ ऽ पी

अन्तरा

धध ध ध	पप धध म	रे प -	म - -
चुंग वि च	यव ताइ भ	ते पे ऽ	श्रा ऽ ऽ
ध - ध	पप धध म	रे प -	म - -
ओ ऽ ओ	यव ताई भ	ते पे ऽ	श्रा ऽ ऽ

शेष अन्तरे भी इसी प्रकार गाये जाते हैं।

लाहुल में कुछ गीत ऐसे भी हैं जिनमें कोमल निषाद और दोनों गान्धार लगते हैं। जिस तरह राग जोग में आरोह में शुद्ध ग और अवरोह में कोमल ग और कोमल नी लगता है। गीत इस प्रकार है–

गीत

हे स्वांगलों ता धरती हो। देवतातू देशा शू,
योतिंग ता प्यारे हिन्दू ता देशा। धरती हिन्दू स्वर्गा शू ॥
रंग चोंग लिंग तसपलजी व्यासा ता ऋषि। ऋषि-मुनियों डेरा सू ॥
भड़ेंची डिलवू लेची ता संगम। दर्शना जौगे तू ॥
गोदोक्टिंग कैलाश गोचोंग त्रिलोकीनाथ। धरती ता इवी हो ॥

भावार्थ : ऋषि-मुनियों की यह लाहुल भूमि जो रोहतांग के उस पार हिमालय में स्थित है, स्वर्ग के समान है। यह देवताओं की धरती हमें बहुत प्यारी है।

स्वरलिपि

स्थायी

सां - -	- - -	नि प पम	ग म पम	ग - सा	सा - -
हे ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	सवां गलो ताऽ	ध ऽ रती	हो ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ

सा - गम	प नि पग	म - -	- - -
देव ता तू	दे ऽ शाऽ	शू ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ

अन्तरा

सा गग म	म - म	प सं नि	प म गस	सा साग मम
यो तिंग ता	प्या ऽ रे	हिं दू ता	दे ऽ शाऽ	धर तीऽ हिंदू

पनि ऽ पग	म - -	- - -
सव र गाऽ	शू ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ

शेष अन्तरे भी इसी तरह गाये जाते हैं।

इसी तरह एक अन्य गीत जिसमें कोमल ग और कोमल नि प्रयुक्त हैं—

गीत

ईका दिना मारी जाणा संगला,
सईं सारा छोड़ी जाणा हो।
ईका दिना मारी जाणा,
माएं बापू छोड़ी जाणा हो।
ईका दिना मारी जाणा,
भाई-बन्धु छोड़ी जाणा हो।
ईका दिना मारी जाणा,
गाई सेहणा छोड़ी जाणा हो।
ईका दिना मारी जाणा।
ऐसा हो जिन्दगी छोड़ी जाणा हो।

भावार्थ : यह जिन्दगी आज मेरी है कल नहीं हो सकती। अर्थात् जो हम आज हैं एक दिन हम सबको इस जगत को छोड़ के जाना है। मां, बाप, भाई, बहन, बन्धु, बांधव, बुजुर्ग सबको छोड़कर जाना है।

स्वरलिपि

स्थायी

सा रे म ग॒	सा - - नि़॒	प़ - प़ -
इ का दि ना	मा ऽ ऽ री	जा ऽ णा ऽ

सा रे म ग॒	सा - - सा	रे - सा नि़॒	प़ - नि़॒ -	स - - -
सं ग ला ईं	सा ऽ ऽ रा	छो ऽ ऽ डि	जा ऽ णां ऽ	हो ऽ ऽ ऽ

शेष सभी चरण भी इसी तरह गाये जायेंगे।

लाहौल जनपद के लोकगीतों में कहीं-कहीं मींड का अनायास प्रयोग हुआ है। हालांकि लोकगायकों को मींड, कण, मुर्की आदि विधाओं का ज्ञान नहीं होता। परन्तु ये विधाएं स्वतः ही लोक गायकों के मधुर कण्ठों से निकलती हैं। एक अन्य गीत में मींड का बड़ा सुन्दर प्रयोग इस प्रकार हुआ है।

गीत

ठण्डा पाणी ओ पमो ठण्डा पाणी ओ,
सौपीती देशा ठण्डा पाणी ओ।
साहवे आया ओ पमो साहवे आया ओ,
सौपीति देशा साहवे आया हो।
जूले किया हो पमो जुले किया हो,
सैपीति देशा जुले किया हो।
आरा तुन्या हो पमो आरा तुन्या ओ,
सैपीति देशा आरा तन्या ओ।
जीपा आया आ पमो जीपा आया ओ,
सैपीति देशा जीपा आया ओ।

भावार्थ : पामो नायिका को सम्बोधित करके कहा है कि स्पिति के देश में ठण्डा पानी होता है। जब कोई बड़ा अफसर आता है तो उसे नमस्कार करना है और लुगड़ी पीकर मस्त रहना है। अब तो यहां गाड़ियां भी आने लगी हैं।

स्वरलिपि

सा सा -	सा म -	प - -	नि नि -	प म -	प म -	म - -	सा - -
ठं डा ऽ	पा णी ऽ	ओ ऽ ऽ	प मो ऽ	ठं डा ऽ	पा णी ऽ	हो ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ

म - प	- प -	म - सा	म - -	प म -	प म -	म - -	- - -
से ऽ पी	ऽ नि ऽ	दे ऽ ऽ	शा ऽ ऽ	ठं डा ऽ	पा णी ऽ	हो ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ

शेष चरण भी इसी प्रकार गाये जाते हैं।

प्रस्तुत गीत में कोमल नी स्पष्ट रूप से लगता है। जबकि कोमल ग तथा म स को मींड में ही छुआ गया है प ग की स्वर संगति बार-बार प्रयुक्त हुई है।

लाहौल जनपद की पाटन घाटी में लोकगाथाओं को गाने की परम्परा भी प्रचलित है। ये गाथाएं गादी संस्कृति के काफी नजदीक हैं। गाथाएं तीन या चार स्वरों में ही गाई जाती हैं। एक गाथा इस प्रकार है—

गीत

गाछे हो भीमा गाये सुआणे
पांडु री भीमा नंगे पैरे दौड़ी।
गाछे हो भीमा गाये सुआणे ॥
पांडु री भीमा दखणा खुडे।
दखणा खुडे गाये सुआणे ॥
पांडु री भीमा उतरा खुडे।
उतरा खुण्डा गाये सुआणे ॥
पाण्डु री भीमा पछमा खुडे ॥
पछमा खुण्डे गाये सुआणे।
पांडु री भीमा विंद्रावणै ॥
विंद्रावणै गाये सुआणै ॥

भावार्थ : यह गाथा उस वक्त का वर्णन करती है जब पांडवों के पिता पांडु की मौत हो जाती है और उनका क्रियाकर्म करने के लिए पुरोहित भीम को गाय लाने भेजता है। भीम नंगे पैर उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम चारों दिशाओं में दौड़ता है परन्तु उसे कहीं भी गाय नहीं मिलती अन्त में जब वह बिन्दावणी (पांगी) में जाता है तो वहां उसे गाय मिलती है। जिसे वह अपने पूज्य पिता के क्रियाकर्म के लिए ले आता है।

स्वरलिपि

रे सा रे	सा -	प -	प रे सा	सा -	सा -
गा छे हो	भी ऽ	मा ऽ	गा ये सु	आ ऽ	णे ऽ

शेष पंक्तियां भी इसी प्रकार गाई जाती हैं।

एक अन्य लोकगाथा जिसमें स रे म ध चार स्वर प्रयुक्त हुए हैं—

गाथा

जला थला हे जला कुंभा मोई जीयो।
ईशरो महादेवो क्या दोहरा कीती जीयो ॥
जला अपरूए महादेवो रिशीरी जीयो।

तेता अपरुए कन्याकुमारी जीयो ॥
तेता अपरूए गुगुला तांबे जीयो।
तेता अपरूए वैलाना बाछी जीयो ॥
तेता अपरूए तांबे री धरती जीयो।
तेता अपरूए संगली संसार जीयो ॥
ईशरो महादेवो क्या दोहरा कीती जीयो।
सोना खाई रे री मणसागा डाही जीयो ॥
दूरा जाईय री हाका लागा देणे जीयो।
न कीति हुइयें न की अंगारे जीयो ॥
ईशरो महादेवो गोबू रा ढोई जीयो।
गोबरा ढोइये दूणी जा गाही जीयो।
धूणी जागाई छार बणाई जीयो ॥
धारा खाइये रा मण्सागा डाही जीयो ॥
छारे री माणहू रा काना छाड़ी जीयो।
दूरे जाइये हाका लागी देणै जीयो।
इशारो महादेवो पृथ्वी रचाही जीयो ॥

भावार्थ : इस लोकगाथा में भगवान महादेव द्वारा पृथ्वी की रचना का वर्णन हुआ है कि किस प्रकार यह पृथ्वी जलमग्न थी फिर महादेव ने जड़-चेतन पेड़-पौधे बनाये तत्पश्चात् पशु-पक्षी पैदा किये और अन्त में मानव की रचना की।

स्वरलिपि

रे सा धृ -	सा - सा रे	म म - रे धृ	सा - सा सा
ज ला थ ऽ	लां ऽ हे ज	लाऽ कुं भा मो	ई ऽ जी यो

शेष पंक्तियां भी इसी प्रकार गाई जाती हैं।

कुछ गीत ऐसे भी हैं जिनमें न्यास पंचम स्वर या मध्यम स्वर पर होता है जैसे निम्न गीत में पंचम स्वर पर न्यास हुआ है–

गीत

गोतू विचंग गयू देशा होला ओ।
गयू सैम लेती स्वांगला हो ॥

तिंगी-2 जरीमा स्वांगला होला ओ।
गयू सेम लेती स्वांगला हो ॥
आडू चन्द्रमुखी स्वांगला होला ओ।
गयू सेम लेती स्वांगला हो ॥

भावार्थ : इस गीत में लाहुल की सुन्दरता का वर्णन हुआ है। लोक कवि कहता है कि मेरा दिल लाहुल में लग गया है। लाहुल जो पहाड़ों के मध्य में स्थित है। जहां नीले-नीले ग्लेशियर हैं। जहां चन्द्रमुखी आलू पैदा होता है। मेरा दिल यहां बस गया है।

स्वरलिपि

ध - - ध	ध प म रे	प - - प	प - म रे
गो ऽ ऽ तू	वि चंग ग यू	दे ऽ ऽ शा	हो ऽ ला हो

प प प प	प ग रे सा	सा - रे म	प - - -
ग यु से मा	ले ऽ ती ऽ	स्वां ऽ ग ला	हो ऽ ऽ ऽ

इस प्रकार हम देखते हैं कि लाहुल जनपद के लोकगीतों में सरलता है। सीधे-सीधे स्वरों में गाये जाने वाले लाहुल जनपद के लोकगीतों में तीन-चार और पांच स्वरों का चलन अधिक रहा है।

लय

यह पूर्ण जगत ही एक निश्चित लय में गतिमान है। प्रकृति का हर काम गति में होता है। लाहुल के लोकगीतों की खूबसूरती इनकी लयबद्धता है। अधिकांश लोकगीत दादरा, कहरवा, खेमटा और रूपक ताल में निबद्ध हैं। तालों के कोई नाम और निश्चित बोल नहीं हैं।

वास्तव में किसी भी क्षेत्र का लोक संगीत वहां के जनमानस की प्रेमाभिव्यक्ति को प्रकट करता है। लाहुल जनपद तो संगीत में हमेशा सराबोर रहता है। उठते-बैठते, काम करते, विवाह-शादियों आदि में हर समय संगीत की उपस्थिति रहती है। अन्त में यह कहा जा सकता है कि लाहुल जनपद की पहचान यहां का लोक संगीत है। □

संस्कार लोकगीतों का संगीतात्मक विश्लेषण

प्रो. कृष्णा शर्मा

लोकगीत मानव हृदय में समय-समय पर उत्पन्न होने वाले वे प्राकृतिक तथा स्वाभाविक भाव हैं जो स्थान, समय, परिवेश, परिस्थिति तथा व्यक्तित्व आदि के अनुसार जनमानस में आन्दोलित होकर स्वतः शब्दों तथा स्वरों के मधुर मिश्रण के रूप में मानव कण्ठों से मुखरित होते हैं। जीवन की दुःख-सुखात्मक स्थितियों में यह अलौकिक गान सहज ही द्रवित हो निर्झर बहने लगते हैं। इनकी पावन स्वरधारा जहां-जहां से गुजरती है वहीं-वहीं अपनी छाप छोड़ती जाती है। इसी छाप में अतीत की स्मृतियां संस्कार रूपी बीजों में बिखरकर पल्लवित होती भावी पीढ़ियों को अपनी संचित निधियां, रसयुक्त शब्द के रूप में मुक्त अंजुरियों से बांटती जाती है।

लोक अथवा प्रकृति स्वयं पूर्णरूपेण गीतमयी है। लय और स्वर का संचार मानव जीवन की धमनियों में निरन्तर बहते रक्त की भांति अविरल प्रवाहित होता रहता है। "लोक" स्वयं में अति पवित्र, अर्थपूर्ण भाव को संजोये हुए है। लोक-संगीत की ऐसी स्थिति जो व्याकरण, सांगीतिक वैज्ञानिकता एवं अन्य किसी प्रकार की मानव द्वारा निर्धारित सांगीतिक सीमाओं की परिधि से मुक्त है और जो स्वयं लोक के ही द्वारा सहज रूप से प्रस्फुटित होती है, वही पावन धारा 'लोक' कहलाती है। यह 'प्रस्फुटन' सहज एवं निजी होता है। मन के किसी अछूते कोने अथवा अचेतन में बैठी अतीत की स्मृतियों के उद्वेग समय व स्थिति के उपस्थित होते ही "संस्कार" से बंधे अथवा शासित सहज ही फूट पड़ते हैं। वंश को चलाने वाले पुत्र के जन्म की प्रसन्नता बेटी के जन्म और उसके पराये होने की व्यथा, विवाह का मांगलिक कृत्य, सुहाग (सौभाग्य) घोड़ी पर सजते पुत्र को देख आह्लादित होती मां के रोम-रोम से भावना की सिहरन होते ही स्वर और शब्द से युक्त लोकगीतों की निर्झरणी बह उठती है।

लोक, वह समीर है जिसमें मनुष्य श्वास लेता है। जैसे-जैसे सच्चा एवं शुद्ध नाद प्रवाहित होता है, मानव आत्मा लोकगीत की रसधारा में पूर्णतया भीगती सी

डूबने लगती है। जैसे-जैसे मन गाता है, वैसे-वैसे ही गीत विकसित होने लगता है। प्रत्येक स्थिति एवं रस के गीतों से लोक का आंचल भरा है। इतना अथाह, इतना असीमित है यह जनपद का लोकांचल। लोकगीतों के बीजों से ही भावी सभी रागों का जन्म व विकास हुआ। प्रकृति यूं तो जननी है और वर्तमान में कहीं भी, जो कुछ भी जिस रूप में विकसित हो रहा है, उसके आधार में "लोक" ही है। बालक मां के गर्भ में नौ मास तक रहकर पूर्णरूप से संस्कारित होता रहता है और जैसे ही परिपक्व होता है तो वह संसार में अवतरित होकर मां से नाड़ी विच्छेद करता हुआ अपने स्वतन्त्र अस्तित्व में आ जाता है। स्वयं के अनुभव प्राप्त होने लगते हैं, तेज, रस, रूप, गन्ध, स्पर्श का आभास होने लगता है। उसी प्रकार लोकगीत से संगीत और फिर जैसे-जैसे संगीत परिष्कृत एवं परिमार्जित होता है तो कई प्रकार के नियम में बांधकर उसे शास्त्रीय संगीत का दर्जा प्राप्त होता है।

मनुष्य के सुख-दुःख जिस प्रकार चिरन्तन हैं उनकी अभिव्यक्ति भी उतनी ही चिरन्तन रही है परन्तु यह कहना कठिन है कि उन्हें व्यक्त करने के साधनों में प्रथम कौन था। सम्भव है जिस प्रकार प्रभात की सुनहरी रश्मि छूकर चिड़िया आनन्द में चहचहा उठती है और मेघ को घुमड़ता घिरता देखकर मयूर नाच उठता है उसी प्रकार मनुष्य ने भी पहले-पहले अपने भावों को व्यक्त ध्वनि और गति द्वारा ही किया हो। विशेषकर स्वर-सामञ्जस्य में बंधा हुआ गेय काव्य मानव हृदय के कितना निकट है यह उदात्त-अनुदात्त स्वरों में बंधे वेदगीत तथा अपनी मधुरता के कारण प्राणों में समा जाने वाले प्राकृत पदों के ज्ञाता भली-भांति समझ सके हैं।

सुख-दुःख से भावावेशमयी अवस्था विशेष का गिने-चुने शब्दों में स्वर ताल, लय के द्वारा उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है। मानव मन में अतीत की भोगी हुई स्मृतियों का संचय उसे उसकी परम्परा और परिवेश से सर्वदा बांधे रखता है। जैसे, जीवन की आयु सीमायें लांघते प्रौढ़ और व्यस्क एवं वृद्ध व्यक्ति के मन में उसका शैशव रूप विद्यमान रहता है ठीक उसी प्रकार लोकगीत भी मनुष्य के साथ-साथ प्रत्येक स्थिति, स्थान व आयु में विचरते रहते हैं। इस सन्दर्भ में सबसे महत्त्वपूर्ण संस्कार गीत हैं। यहां "संस्कार" का अर्थ सामाजिक रीति-रिवाजों से है जिनमें जन्म, विवाह व मरण तक के लोकगीत समयानुसार रचे व गाये जाते हैं।

हिमाचल गीतों की धरती है। यूं तो सभी प्रदेशों के विशेष गीत होते हैं परन्तु हिमाचल प्रदेश को प्रकृति ने मुक्त हृदय से सौन्दर्य प्रदान किया है। लोकगीतों में अद्‌भुत रस लालित्य है। यहां के पत्थर भी गाते हैं, झरनों और हवा से सरसराते पेड़ों में एक विशेष स्वर और लय है, इन्हीं से प्रभावित होकर यहां के लोक गायकों ने ऐसी धुनें प्राचीनकाल से ग्रहण कीं जिनमें दुर्गा, सारंग, खमाज, भूपाली, झिंझोटी, देस जैसी सरस चिरावलियां बीज रूप में व्यवहृत होती हैं। इस हिमधरा का पर्याय

नाम "देवधरा" भी है, क्योंकि प्राचीन ऋषि-मुनियों की तपःस्थली होने का गौरव इसे प्राप्त हुआ है और स्वयं शिव-गौरी पार्वती डमरूवादक भगवान शंकर का वास इन्हीं पर्वत शृंखलाओं में होने कारण यहां पर प्रत्येक संस्कार की सशक्त धार्मिक पृष्ठभूमि है। फलस्वरूप संस्कार गीतों में भी राम, कृष्ण, राधा, सीता, ब्रह्मा, विष्णु, गणेश आदि देवताओं के नाम और गुण को बालकों व बालिकाओं के नाम के साथ जोड़कर संस्कार लोकगीत गाये जाते हैं।

संस्कार लोकगीतों का संगीतात्मक विश्लेषण

हिमाचल प्रदेश के चम्बा, कांगड़ा, कुल्लू, मण्डी, बिलासपुर, ऊना जिलों की सीमाएं पंजाब, जम्मू, काश्मीर और उत्तर प्रदेश के साथ लगती हैं और भीतरी सीमाएं एक दूसरे जिले के साथ। इनमें भाषान्तर तो है ही परन्तु स्थान विशेष की निजी "बोली" के रंग का प्रभाव शब्द और स्वररचना के लघु और दीर्घ अन्तरालों पर भी है।

लाहुल-स्पिति व किन्नौर में यद्यपि लोकगीत प्रचुर मात्रा में है परन्तु उस पर तिब्बत, चीन और अन्य सीमावर्ती प्रदेशों का भी प्रभाव है। तीन-चार स्वरों पर ही गीत गाये जाते हैं जो मुख्यतः नृत्य गीत हैं। इन क्षेत्रों की धुनों में आर्योत्तर अथवा वैदिक गान शैली का दर्शन होता है। लाहुल के साथ लगते कुल्लू क्षेत्र के गीतों के स्वरूप और शैली की अपनी विशेषता है। कुल्लू, मण्डी और कांगड़ा के लोकगीतों में पर्याप्त सांझेदारी है।

दूसरी ओर उपरि महासू के अधिकतर गीत दुर्गा, भूपाली के रंग में हैं और मुख्यतः नृत्य गीत हैं परन्तु संस्कार गीतों पर अन्य क्षेत्रीय गीतों का भी प्रभाव है।

बिलासपुर, ऊना, हमीरपुर और साथ लगते क्षेत्रों पर पंजाब व जम्मू के गीतों का प्रभाव है। गायन शैली भी लगभग एक-सी है। स्वरावलियों में भी साम्यता है। यद्यपि क्षेत्रीय लोकगीतों की निजी शैलियों के अपने नाम हैं जैसे घुरई भ्यागड़े, सुहाग, तेल, घोड़ी, मेंहदी तथा अन्य संस्कार सम्बन्धी सभी लोकगीत लगभग एक जैसे ही हैं।

गीत का निबद्ध और अनिबद्ध रूप भी लगभग सभी क्षेत्रों में है। देखने में यह आया है कि जन्म एवं विवाह सम्बन्धी सभी संस्कार गीत बिना किसी ताल वाद्य के ही गायें जाते हैं और सामूहिक कण्ठों से इनकी मधुर स्वरावलियां वातावरण में रस घोल देती हैं। यदि संस्कार गीतों के सभी प्रकारों को देखें तो एक ही गीत को कुछ अन्तर से क्षेत्र विशेष के लोग गाते हैं। इसका कारण लोक गायकों की अभिरुचि है।

संस्कार गीत जो क्रमशः मण्डी, ऊना, बिलासपुर, अर्की, करसोग व चच्योट और कोटखाई क्षेत्र से लिये गये हैं इनमें एक "तेल गीत" "बाबा कटोरा बटणे दा" जो लगभग निचले हिमाचल के सभी क्षेत्रों में गाया जाता है, लिया है, यद्यपि लोकधुन

लगभग एक-सी है परन्तु क्षेत्र विशेष का "रंग" (टिण्ज) होने के कारण "स्वर लगाव" में तनिक अन्तर होने से धुन में परिवर्तन है। परन्तु वह समूची धुन एक दूसरे क्षेत्र से पृथक् नहीं होती। इसी प्रकार 'कोटखाई' क्षेत्र का एक गीत "तेलौ लामा तेलिये" में पुरुष और नारी कण्ठ से अलग-अलग गाने में धुन में अन्तर स्पष्ट सुनाई देता है। इसी कारण सम्मिश्रित हुई इन लोकधुनों में शास्त्रीय संगीत के राग तत्त्वों में भी परिवर्तन हुआ है।

लोकगीतों में स्वर लगाव, कण, मुर्की और अन्य स्वर विशेषण जो बुज़ुर्ग गायकों के कण्ठ से अनायास ही निकल जाते हैं, स्वरों की कोमल तीव्र स्थिति को सहज ही में अपना लेते हैं। फलस्वरूप एक धुन, दूसरी धुन में अन्यत्र क्षेत्रों में पृथक् सुनाई देती है।

इस विवेचन में जो लोकगीत संलग्न हैं उनको निबद्ध और अनिबद्ध दोनों रूपों में ही गाया जाता है। परन्तु ताल की निबद्धता के अन्तर्गत, लोकगीतों में चार, छः और सात मात्राओं के लोकगीत ही मुख्यतः सुनने में आये हैं।

हिमाचली लोकगीत मुख्यतः जिन्हें यहां उद्धृत किया है वे चार, छः और सात मात्राओं में हैं।

हिमाचल प्रदेश के संस्कार गीत, प्रदेश के सभी क्षेत्रों में प्रचुर संख्या में उपलब्ध हैं। उनके विस्तृत अध्ययन के लिए, एक-एक क्षेत्र में पर्याप्त समय होने पर ही सुदूर क्षेत्रों में जाकर, कार्य की सार्थकता सिद्ध हो सकती है।

अर्की (बाघल) बिलासपुर क्षेत्र का संस्कार गीत

गीत

कौआ नी कौआ तेरी लम्मियां डारां (उडारां)
जाई तां आयां मेरे पेवके-मैं वारी जां,
जाई तां आयां मेरे पेवके।
अम्मा मेरिया नूं तूं गल्ल मत दसदा
घरखे बैठी अम्मां रोंवदी-वारी जां।
बापूए मेरे नूं तू गल्ल मत दसदा
कचैरिया जांदा बापू झूरदा-वारी जां।
भाबो मेरिया नूं तू गल्ल मत दसदा
कुडेयां दर भाबो जाई हस्सदी-मैं वारी जां।
भाइये मेरे नूं तू गल्ल मत दसदा,
कीयां तां भैणां तेरी रैंवदी
सुक्की-रूखी रोटी भाई जी डंगरा दा खाना

ऐही तां सस्स मिंजो देंवदी-मैं वारी जां
फटेया-पुराना भाई जी-डोमां दा लाणां
ऐही तां सस्स मिंजो देंवदी ॥

स्वरलिपि

1	2	3	4	1	2	3	4
-	-	-	-	-	ध़	सा	सा
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	कौ	आ	नी
रे म	म ग	रे	रे स	-	स	रे	रे स
क	ण्वा	ते	री	ऽ	ल	म्मि	यां
नी	-	ध़	प	-	ध	सा	सा
डां	ऽ	रां	ऽ	ऽ	जा	ई	तां
रे म	म ग	रे	रे स	-	रे ग	स रे	स
आ	यां	मे	रे	ऽ	पेऽ	व	के
सा	-	-	सनी़	सरे	रे श	नी़ स	ध नी
ऽ	ऽ	ऽ	वा	री	ऽ	जां	ऽ
प	ध	सा	स	रे म	मग	रे	रे स
ऽ	जां	ई	तां	आ	यांऽ	मे	रे
-	रेग	सा	स				
ऽ	पेऽ	व	के				

यह लोकगीत "झिंझोटी" का अविकसित रूप है।

कोटखाई क्षेत्र का तेल गीत

तेलौ लाये तेलिये तेल मामूए सो जाये
तेलौ लाये तेलिये तेल मामीए सो जाये
मामी तेरी सुहागिणो मामी तेलिया सो जाये
जुग जीयो मामी तेरे
तेलौ लाये तेलिये तेल भाई सो जाये
तेलौ लाये तेलिये तेल भाबिये सो जाये
भाबी तेरी सुहागिणो भाबी तेलिया सो जाये

इसी प्रकार सभी सम्बन्धियों के नामों से गीत आगे बढ़ता है।

स्वर लिपि (छः मात्रा)

प्रथम रूप

1	2	3	4	5	6
प़	ध़	गरे	ग	रे	सा
ते	लौ	लाऽ	ये	ऽ	ऽ
सा	धनी़ध़	धनी़ध़	–	प़	–
ते	ऽ	ली	ऽ	ये	ऽ
प	धनी़ध़	प़	प़	ध़	सा
ते	लौ	ऽ	मा	मू	यै
गरे	सध़	सग	रेग	रेसा	सा
सौऽ	ऽ	ऽ ऽ	ला	ऽ	ऽ
सध़	–	–	सा	–	–
ये	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

इस लोकगीत में दुर्गा और भूपाली की छाया मूल रूप से तथा कल्याण एवं झिंझोटी के बीज भी दोनों निषादों के प्रयोग से प्राप्त हैं।

अर्की क्षेत्र का 'तेल गीत'

बा बा कटोरा बटणे दा
बा बा मलैदियां दो जणियां
बा बा कि सक्कियां भैनड़ियां

1	2	3	4	1	2	3	4
						सा	–
						बा	ऽ
सा	–	–	रे	स	ध़	रे	–
बा	ऽ	ऽ	क	टो	ऽ	रा	ऽ
रे	रे	सा	सा	सा	ध़	सा	सा
ब	ट	ने	ऽ	दा	ऽ	बा	ऽ
सा	–	–	रे	सा	सा	सा	रे
बा	ऽ	ऽ	म	लै	ऽ	दि	यां
रे	रे	स	–	स	ध़		
दो	ऽ	ज	णि	यां	ऽ		

यह लोकगीत "भूपाली" का अविकसित रूप है।

यही गीत ऊना क्षेत्र में स्वरों के इन अन्तर से गाया जाता है।

1	2	3	4	1	2	3	4
						ऩी	ऩी
						बा	ऽ
सा	–	–	रे	स	–	रे	–
बा	ऽ	ऽ	क	टो	ऽ	रा	ऽ

(शेष अगले पृष्ठ पर)

1	2	3	4	1	2	3	4
ग रे ब	ग रे ट	सा णे	– ऽ	सा दा	प़ ऽ	ऩी ऽ	ऩी ऽ
सा मा	– ऽ	रे सी	म ऽ	म मा	ग ऽ	रे न	सा ना
सा मा	– ऽ	– ऽ	रे न	नी है	सा ऽ	ग रे धी	– ऽ
रे रा	– ऽ	सा जे	– ऽ	नी दी	प़ ऽ	ऩी बा	ऩी ऽ

यह लोकगीत "देस" का अविकसित रूप है।

बिलासपुर क्षेत्र का वधावा (विवाह गीत)

बोल

दो बणजारू मैं बटणे जो भेजे
स्यो बणजारू नीं आये
थोड़ा-थोड़ा बटणा मेरे भाईयां देयो
होर मलयो अंग मेरे
दो खतरेटे मैं तेला जो भेजे
स्यो खतरेटे नी आये
थोड़ा-थोड़ा तेल मेरे साथियां जो देयो
होर मलयो अंग मेरे
दो गुजरेटे मैं दहिंयां जो भेजे
स्यों गुजरेटे नी आये
थोड़ा-थोड़ा दही मेरे मित्रां जो देयो
होर मलयो अंग मेरे
दो झियूर मैं पाणियें जो भेजे
स्यों झियूर नी आए
थोड़ा-थोड़ा नीर मेरे भाईयां जो देयो
होर डोल्यो अंग मेरे ॥

1	2	3	4	5	6	7	1	2	3	4	5	6	7
नी	सा	नी	सा	—	रे	—	ग	—	—	रे	—	सा	—
दों	ऽ	ऽ	ब	ऽ	ण	ऽ	जा	ऽ	ऽ	रू	ऽ	मैं	ऽ
स	रे	—	रे	—	सा	—	सा	—	—	नी	—	नी	—
ब	ट	ऽ	ण	ऽ	जो	ऽ	भे	ऽ	ऽ	जे	ऽ	ऽ	ऽ
नी	सा	नी	सा	—	रे	—	ग	—	—	रे	—	सा	—
स्यो	ऽ	ऽ	ब	ऽ	ण	ऽ	जा	ऽ	ऽ	रू	ऽ	नी	ऽ
रे	—	—	सा	—	सा	—							
आ	ऽ	ऽ	ये	ऽ	ऽ	ऽ							

इस लोकगीत में "काफी" के स्वरूप की स्थूल-सी रूपरेखा मिलती है। सम्भवतः इस लोकगीत की स्वरावलियों में काफी राग के जनक तत्त्व विद्यमान हैं।

मण्डी का सुहाग गीत

चिट्टे तां चावल मेरी रुकमणी
हरे मूंगा दीये दाल रुकमणी मेरी पाहुणी
अज्ज फरमायां बापू कल फरमायां
परसी जो आवनी बारात रुकमणी मेरी पाहुणी
अज्ज फरमायां ताऊये कल फरमायां
परसी जो आवनी बरात रुकमणी मेरी पाहुणी

इसी प्रकार सभी सम्बन्धियों के नाम जोड़कर गीत बढ़ाते हैं।

1	2	3	4	5	6	7
प	पसा	सानी	सारे	रेसा	रेग	मग
चि	ट्टेऽ	ऽतां	चाऽ	वल	मेऽ	रीऽ
रे-	सारेसा	रे	रे	—	सा	—
रुक	मऽऽ	णी	दे	ऽ	रे	ऽ

पु-	पुसा	सा-	सारे	रेसा	रेग	मग
हऽ	रेऽ	मूंऽ	गाऽ	ऽ ऽ	दीऽ	येऽ
रे	–	रेसा	सारे	रेसा	रेग	मग
दा	ऽ	ऽल	रुक	मण	मेऽ	रीऽ
रे	–	नी	सारे	रेसा	सा	–
पा	ऽ	ऊ	णीऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ

इस लोकगीत की धुन में "राग देश" का अविकसित रूप प्राप्त होता है।

चच्योट व करसोग क्षेत्र में बच्चे के जन्मदिन पर गाया जाने वाला–

भ्याई गीत

नौमीया दे दिन नौबत बाजे
नौमिया दे दिन नौबत बाजे
जन्मेयों कृष्ण मुरारी, नी माये,
नौमियां दे दिन नौबत बाजे
काहे दा ये पालणा बणेया
काहे दा ये पालणा बणेयां
काहे दी ये डोर नी माये,
नौमीया दे दिन नौबत बाजे
अगर-चन्दन दा ये पालणा बणेया
अगर चन्दन दा ये पालणा बणेया
रेशम दी ये डोर नी मार्ये नौमीया दे दिन नौबत बाजे
माये दा पोता ये पालण बणेया माये दा पोता ये पालण बणेया
झूला दीती सकी माई नी मार्ये नौमीया दे दिन नौबत बाजे
मामे दा भाणजा झूलण झूलेयां, मामे दा भणजा झूलण झूलेया
झूला दीती सकी माई नी माये नौमीयां दे दिन नौबत बाजे ॥

ताल : रूपक (ढाईया) मात्रा-7 विभाग-3, 2, 2

0			2		3		0			2		3	
1	2	3	4	5	6	7	1	2	3	4	5	6	7
रे	ग	–	रे	सा	सा	–	रे	म	–	प	ध	म	प
नौ	ऽ	ऽ	मी	ऽ	या	ऽ	दे	ऽ	ऽ	दि	ऽ	न	ऽ
ग	–	–	रे	ग	सा	रे	ग	–	–	सा	–	–	–
नौ	ऽ	ऽ	ब	ऽ	त	ऽ	बा	ऽ	ऽ	जे	ऽ	ऽ	ऽ
प	प	म	प	–	प	सां	सां	प	प	प	ध	प	म
ज	न	ऽ	मे	ऽ	यो	ऽ	कृ	ऽ	ष	ण	ऽ	मु	ऽ
प	–	–	प	–	प	–	सं	–	–	प	ध	प	म
रा	ऽ	ऽ	री	ऽ	ऽ	ऽ	नी	ऽ	ऽ	मा	ऽ	ये	ऽ
0			2		3		0			2		3	
रे	ग	–	रे	सा	–	–	रे	म	प	प	ध	म	प
का	ऽ	ऽ	हे	ऽ	ऽ	ऽ	दा	ऽ	ऽ	ये	ऽ	ऽ	ऽ
ग	–	–	रे	ग	सा	रे	ग	ग	-	सा	–	–	–
पा	ऽ	ऽ	ल	ऽ	णा	ऽ	ब	णे	ऽ	यां	ऽ	ऽ	ऽ
प	–	–	प	–	प	सां	सां	–	–	प	ध	प	म
का	ऽ	ऽ	हे	ऽ	ऽ	ऽ	दी	ऽ	ऽ	ये	ऽ	ऽ	ऽ
प	–	–	प	–	प	–	सां	–	–	प	ध़	प	म
डो	ऽ	ऽ	र	ऽ	ऽ	ऽ	नी	ऽ	ऽ	मा	ऽ	ये	ऽ

गीत की शेष पंक्तियां भी इसी क्रम से गाई जायेंगी।

इस गीत में **'तिलककामोद'** की स्थूल एवं अविकसित छाया की झलक है।

□

हिमाचल में देव-आराधना के लोकगीत

डा॰ चमन लाल वर्मा

हिमाचल अर्थात् गगनचुम्बी पर्वतराज हिमालय के आंचल में सिमटा छोटा-सा अत्यन्त सुन्दर और रमणीय 'राज्य'। हिमाचल प्रदेश जिसे देवभूमि के नाम सम्बोधित किया जाता है भारतवर्ष का एक अत्यन्त सुन्दर राज्य है जो अपनी स्थानीय परम्पराओं तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध है।

मात्र बारह जिलों में विभक्त यह प्रदेश अपनी विभिन्न परम्पराओं, रीति-रिवाज़ों, भाषाओं एवम् वेशभूषाओं के लिए ही विश्व में प्रसिद्ध नहीं अपितु जीवन्त लोक-संस्कृति, उत्कृष्ट संगीत शैलियों एवम् अटूट धार्मिक आस्थाओं के कारण भी प्रख्यात है। हर दिन कोई न कोई धार्मिक अनुष्ठान, हर गांव का अपना-अपना ग्राम्य-देवता मेला, तीज-त्यौहारों पर देव-आराधना इस भूमि को देवभूमि बना देती है।

आध्यात्मिक लाभ की दृष्टि से भी यह प्रदेश अत्यन्त उपयुक्त है। कहीं सदाबहार वनाच्छादित पर्वत शृंखलाएं तो कहीं हरी मखमली घास से ढकी पहाड़ी ढ़लानें, कहीं हिमविगलित जलधाराओं का अजस्र प्रवाह तो कहीं अथाह दरिया का एक लयबद्ध-घोष, इसी सौन्दर्य से प्रभावित अनेक ऋषि-मुनियों, योगियों, जतियों ने इस भूमि को अपनी आराधना-स्थली बनाया जिससे यह प्रदेश तपोभूमि कहलाया, देव-भूमि संज्ञा से सम्बोधित हुआ।

वस्तुतः हिमाचल की स्वस्थ संस्कृति के अस्तित्व में धार्मिक मान्यताओं एवम् मान-मर्यादाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश में धार्मिक क्रिया-क्लापों का मूलाधार यहाँ के आस्तिक एवम् भोले-भाले लोगों की अखण्ड-आध्यात्मिक और धार्मिक भावना रही है, सदियों से चली आ रही उनकी मूल-मान्यताएं रही हैं, यही कारण है कि यहाँ की संस्कृति में यही आस्तिकता अर्थात् धार्मिक भावना रच-बस गई है, दूध में जल सदृश घुल गई है जिसे अलग करके देखना असम्भव नहीं तो दुष्कर तो होगा ही।

हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध, सिक्ख और न जाने कितने ही धर्मों की संगम-स्थली यह प्रदेश इस यान्त्रिक-युग (कलयुग) में भी अपनी दृढ़-धार्मिक भावना के सहारे शान्ति और सुख का धाम बना है। विज्ञान की अंधी दौड़ से थके-मांदे कितने ही बुद्धीजीवी निराशा, हताशा, कुंठा, मृत्यु, भय और संतापों से मुक्ति प्राप्त करने हेतु इस भूमि की ओर उन्मुख होते हैं।

छल-कपट से दूर, स्वार्थ की छीना-झपटी से दूर यहाँ की भोली-भाली जनता अधिकांश गांवों में निवास करती है। गाँव भी ऐसे जहाँ साधन सीमित हैं। रोजमर्रा की सुविधाओं का सर्वथा अभाव है किन्तु 'अतिथि देवो भव' की भावना से यह प्रदेश काफी सम्पन्न है। काम ही पूजा, समझा जाता है। सत्यनिष्ठ अहिंसावादी लोग नियन्ता की सत्ता को स्वीकारते हैं। ईश्वर में केवल आस्था ही नहीं रखते बल्कि उसकी शक्ति से डरते भी हैं, इसीलिए न केवल भूलों की प्रायश्चित्त की दृष्टि से अपितु प्रत्येक विशिष्ट अवसर पर उसे किसी बहाने स्मरण करते हैं, उसकी पूजा-अर्चना करते हैं, उसे अपने गाँव में बुलाते हैं या उसके दरबार में जाते हैं।

लोग उस प्रत्येक प्राकृतिक स्रोत को एक शक्ति रूप में स्वीकारते हैं जो उनके लिए उपादेय हो सकता है, यथा—सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पृथ्वी, वायु, जल, आकाश को देवतुल्य मानकर उसकी आराधना भी करते हैं। इसी आराधना के क्रम में भावों की सबल एवम् सार्थक अभिव्यक्ति का माध्यम उनके द्वारा प्रेषित लय, ताल और स्वरबद्ध शाब्दिक अभिव्यक्ति भी रही। फलतः धार्मिक गीतों का उद्‌भव हुआ।

देवी-देवता प्रायः किसी न किसी शक्ति का प्रतीक हुआ करते हैं यथा—वनदेवी, वनरक्षिका, जलदेव, ग्राम्यदेव, ग्राम्यरक्षक, नागदेव, मांहूनाग, सरीसृप, रक्षक आदि। गांव-गांव में बीसियों देवी-देवताओं की मान्यता रहती है। स्त्री-वर्ग को भी सम्मान की दृष्टि से देखा जाता रहा है। कालान्तर में जाति-प्रथा प्रबल थी। अतः ब्राह्मण वर्ग का भी विशेष आदर-सम्मान था और ऐसे भी ऐतिहासिक वर्णन मिलते हैं जहां ब्रह्महत्या हो जाने पर अथवा स्त्री के सताये जाने पर उनके शापवश विशेष देवी-देवता अस्तित्व में आए व खोट दूर करने के लिए (शापमुक्ति हेतु) पूज्य बने।

यहाँ कोमल कांत स्वच्छन्द भावों की अभिव्यक्ति प्रायः गेय शैली में ही मिलती है। हिमाचलप्रदेश में देवी-देवताओं की पूजा का विधान विशेष-रूप से उल्लेखनीय हैं। धार्मिक मान्यताएं इतनी सबल हैं कि प्रत्येक सामाजिक क्रिया-क्लाप देवेच्छा से सम्पन्न होता है। क्षेत्रीय-विकास एवम् विनाश का कर्त्ता देवी-देवता को माना जाता है। सम्पन्नता एवम् उन्नति के लिए गांव-गांव में देवी-देवता का मन्दिर बनाया जाता है। पर्व-त्योहार व धार्मिक आयोजन में उसे पूजा जाता है और यह पूजन प्रायः गीतों व प्रार्थनाओं के रूप में संगीत-वाद्यों से होता है। इस प्रकार यहाँ कुल-देवता, ग्राम देवता, क्षेत्रीय देवता, नाग, नरसिंह, जोगन, जोगी, गुग्गा, जाहरपीर, वीर बिज्जू

गड्डादेव, बाड़ादेव और न जाने कितने ही देवी-देव आदि असंख्य आस्था के प्रतीकों को मान्यता प्राप्त है। प्रत्येक देवी-देवता को पूजा हेतु सजाया-संवारा जाता है। डोली-पालकी का इंतजाम किया जाता है। पंडित, गुरु, पुजारी आदि विशेष सेवा-दल नियुक्त होता है। पृथक् वाद्यवृन्द होता है जो पूजा-अर्चना व यात्रा के समय संगीत संतरण करता हुआ साथ-साथ चलता है।

हिमाचल प्रदेश की उज्ज्वल संस्कृति के प्रत्येक तत्त्व को प्रतिबिम्बित करने में यहाँ के लोकगीतों का प्रमुख महत्त्व रहा है। यहां की धार्मिक भावनाओं तथा देव-भावना के तत्त्व संस्कृति की चेतना के प्रतीक हुए हैं। यही कारण है कि यहाँ धार्मिक-भावों के गीतों का बाहुल्य दिखाई देता है। इन धर्म-विषयक गीतों को समाज ने आत्मसात् किया है। प्रत्येक वर्ग ने इसे मान्यता प्रदान की है। अनगिनत मन्दिरों व देवस्थलों ने इन्हें अमरत्व प्रदान किया है। इन गीतों को लोकप्रिय बनाने व परम्परा में बनाये रखने में संगीत से जुड़ी विशेष जातियाँ व सम्प्रदायों तथा स्त्री-वर्ग ने भी सराहनीय योगदान दिया है। धार्मिक मान्यताओं के कारण प्रत्येक पर्व, उत्सव, त्योहार, संस्कार, देव आराधना से ही अनुस्यूत रहता है। करियाला, जात्रा, बांठडा, बरलाज आदि अनेकानेक लोकगीत एवं नाट्य विधाएं किसी न किसी रूप में धार्मिक मूलदण्डों एवं आस्थाओं का संवहन किये दीखती हैं।

यह कहना असंगत नहीं कि हिमाचल संस्कृति में आध्यात्मिक स्तम्भ का आधार धार्मिक गीतों एवं देवभावना से परिपूर्ण अनन्त भण्डार ही है। ये गीत सरल, सहज और विविध भावों के प्रतीक बन चुके हैं। सांगीतिकता इन गीतों की मेरु है और यह विलक्षण गुण पहाड़ी प्रदेश की जन-जन की भावनाओं की सबल एवं सटीक अभिव्यक्ति सजीव व अक्षय बन गई है।

हिमाचल प्रदेश में देव-आराधना तथा धार्मिक-भावना के गीतों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है—

1. देवी-देवताओं के गीत
2. धार्मिक-गाथा गीत
3. शिक्षाप्रद गीत

देवी-देवताओं के गीत

हिमाचली संस्कृति में देवी-देवता से सम्बन्धित गीत सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। यहाँ शैवानुयायी बहुलता में हैं। अतः शिव से सम्बन्धित अनेक सुप्रसिद्ध गीत सम्पूर्ण हिमाचल में लोक-आस्था को प्रतिबिम्बित करते हैं। यथा--शिव आराधना सम्बन्धी एक गीत जो मण्डी, चम्बा, काँगड़ा तथा बिलासपुर आदि जनपदों में प्रचलित है। इस प्रकार है—

गीत के बोल

शिव कैलासों के वासी
धौली धारों के राजा
शंकर संकट हरना।
मेरे स्वामी तुध मेरा संकट हरना ॥
तेरे जे कैलासों का अन्त न पाया
जगत स्वामी लगन रहे चरणों में
औखी-औखी घाटी प्रभुजी बिखड़ा जे पैंडा
जगत स्वामी समझ-समझ पग धरना
ये गौरी कुंड सतिजुगा जे बणेया
जगत स्वामी पाप कटे घड़ी छिन में
केस जे राजे री लड़की तू कहिये
मेरी गौरा केसरी हुँदी पटराणी
राजा हिमालय दी लड़की मैं सखियो
शिवजी दी हुँदी पटराणी ॥

स्वरलिपि

स्थायी

										ग			
										रे	रे	ग	–
										शि	व	कै	ऽ
										ग			
म	म	–	ग	रे	ग	रे	सा	सा	–	रे	–	ग	–
ला	ऽ	ऽ	-सो	ऽ	ऽ	के	वा	सी	ऽ	धौ	ऽ	ली	ऽ
म	–	–	ग	रे	ग	रे	सा	–	–	नि॒	–	–	–
धा	ऽ	ऽ	रों	ऽ	ऽ	के	रा	ऽ	ऽ	जा	ऽ	ऽ	ऽ
प़	–	–	नि॒	–	–	नि॒	सा	–	–	रे	–	ग	रे
शं	ऽ	ऽ	क	ऽ	ऽ	र	सं	ऽ	ऽ	क	ऽ	ऽ	ट
नि॒	नि॒	–	सा	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–
ह	र	ऽ	ना	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

अन्तरा

रे	रे	—	म	—	म	—	प	प	—	प	प	प	—
औ	खी	ऽ	औ	ऽ	खी	ऽ	घा	टी	ऽ	प्र	भु	जी	ऽ
प	प	—	प	—	—	ध	म	—	—	ग	—	रे	—
वि	ख	ऽ	ड़ा	ऽ	ऽ	जे	पैं	ऽ	ऽ	डा	ऽ	ऽ	ऽ
म	म	—	म	—	म	—	ग	सा	—	रे	—	ग	—
स	म	ऽ	झ	ऽ	स	ऽ	म	झ	ऽ	प	ऽ	ग	ऽ
नि़	नि़	—	सा	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
ध	र	ऽ	ना	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

प्रस्तुत गीत में शिव की स्तुति की गई है। गीत का भावार्थ यह है कि हे कैलाशपति! हे धौलाधार के राजा! तुम मेरे सभी कष्टों को दूर करना। जीवन रूपी डगर बहुत ही टेढ़ी-मेढ़ी है। अतः हे शंकर! तुम हमें समझ-समझ कर पग धरने की शक्ति प्रदान करना।

गीत में जहाँ लोक साहित्य दर्शन तत्त्व से सुशोभित है वहाँ राग 'तिलक कामोद' की सुन्दर स्वरावलियों में ढला है। यह गीत 'चाचर ताल' (दीपचन्दी के सदृश 14 मात्राओं का ताल) में निबद्ध है। शिव से सम्बन्धित अन्य गीतों में शिवस्तुति तथा शिव-विवाह के गीतों का बाहुल्य है। इन गीतों में हास्य-रस की पुट भी देखी जा सकती है।

शिव से सम्बन्धित गीतों के अतिरिक्त विभिन्न देवियों से सम्बन्धित गीतों का भी प्रचुर भण्डार लोक-परम्परा में विद्यमान है। ये गीत देवी मन्दिरों तथा कीर्तन-जागरे आदि में सुने जा सकते हैं। वस्तुतः हिमाचल में असंख्य प्रसिद्ध देवियों का वास स्वीकारा जाता रहा तथा विभिन्न जनपदों में भिन्न-भिन्न देवियों को पूजा जाता है यथा—हाटकोटी, हाटेश्वरी, ब्रजेश्वरी, ज्वालाजी, चिन्तपूर्णी, नैनादेवी, हिडिम्बा, हनोगी, बनूटी, चामुण्डा आदि। इन देवियों के भव्य मन्दिर हिमाचल प्रदेश में यत्र-तत्र द्रष्टव्य हैं और इन मन्दिरों में भक्तजन अपनी भावाभिव्यक्ति गीतों के रूप में गा-गा कर व्यक्त करते हैं। देवी की स्तुति का एक गीत इस प्रकार है—

गीत

हो काँगड़ा धौलीधारा, मैया जी वैकुंठ बनाया।
ऊँचे-ऊँचे पर्वत मैया, भवन जे तेरा
शेर भरे ललकारां

दूरा बे दूरा ते मैया जातरू आये
कर रहे जै जै कारा
पाँडवे ता माता तेरा भवन बनाया
सोने रा कलश चढ़ाया
हाथ रकेबी मैया थाल जलेबी
मैया जी को भोग लगाया
सुआ सुआ चोला मैया अंग विराजे
केसर तिलक लगाया

देवी स्तुति के गीत का भावार्थ इस प्रकार है–

काँगड़ा की ऊँची-ऊँची पर्वत चोटियों पर स्वर्ग तुल्य मनोहारी देवी माँ का धाम स्थित है। यहाँ घने-घने जंगलों में शेर ललकारते हैं। दूर-दूर से भक्त लोग पधार कर माँ के मन्दिर में जयकार घोष करते हैं। माता का मन्दिर पाण्डवों ने बनाया है। माता के मस्तिक पर केसरी तिलक लगा है तथा गूढ़ा लाल परिधान माता के अंगों को सुशोभित कर रहा है। **राग तिलक कामोद** की स्वरावलियों से निर्मित यह गीत 'चाचर ताल' में निबद्ध है।

स्वरलिपि

स्थायी

प़	–	–	नि़	–	नि़	नि़	सा	–	–	रे	–	ग	–
हे	ऽ	ऽ	काँ	ऽ	ऽ	ग	ड़ा	ऽ	ऽ	धौ	ऽ	ली	ऽ
नि़	–	–	सा	–	सा	–	रे	रे	–	प	–	प	–
धा	ऽ	ऽ	रा	ऽ	मै	ऽ	या	जी	ऽ	बै	ऽ	ऽ	ऽ
म	–	–	ग	रे	ग	रे	सा	–	–	नि़	–	–	–
कुं	ऽ	ऽ	ठ	ऽ	ऽ	ब	ना	–	–	या	ऽ	ऽ	ऽ

अन्तरा

रे	रे	–	म	–	म	–	प	प	प	प	–	प	–
दू	रा	ऽ	बे	ऽ	दू	ऽ	रा	ते	ऽ	मै	ऽ	या	ऽ
प	प	–	प	–	ध	–	म	–	–	ग	–	रे	–
जा	ऽ	ऽ	त	–	रु	–	आ	ऽ	ऽ	ये	ऽ	ऽ	ऽ

(शेष अगले पृष्ठ पर)

म	म	–	म	–	म	–	ग	सा	–	रे	–	ग	–
क	र	ऽ	र	ऽ	हे	ऽ	जै	ऽ	ऽ	जै	ऽ	ऽ	ऽ
नि़	–	–	सा	–	–	–	--	–	–	–	–	–	–
का	ऽ	ऽ	रा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

सिरमौर क्षेत्र में देवी **माँ रेणुका** की स्तुति वाला गीत इस प्रकार है–

गीत

रेणुका माईये, महामाईये देऊ तेरा जागरा चेरशी
दिवे कोरू वाली रो रात परैशी
दुई हाथो जोड़ी रो कोरू ढालो
शुचे पाणी री पाणी छालो

स्वरलिपि नाटी ताल मात्र 16, ताली 5

1			4			7				11		13			
ध़	ध़	सा	रे	म	–	रे	म	म	–	ध	प	म	–	रे	–
रे	ऽ	णू	का	मा	ऽ	ई	ये	ऽ	ऽ	म	हा	मा	ऽ	ई	ये
X			2			3				4		5			
प	ध	म	प	ध	सां	ध	सां	–	–	रें	सां	ध	–	प	–
को	रू	ते	रा	जा	ऽ	ग	रा	ऽ	ऽ	चे	ऽ	र	ऽ	शी	ऽ
X			2			3				4		5			
प	ध	म	प	ध	सां	ध	सां	–	–	रें	सां	ध	–	प	–
दि	वे	को	रू	वा	ऽ	ली	रो	ऽ	ऽ	रा	त	पे	रै	शी	ऽ
X			2			3				4		5			

गीत का भाव कुछ इस प्रकार है–

हे परशुराम की जननी रेणुका माँ! तुम्हारी महिमा अपरम्पार है। हम दुःखियों के कष्ट दूर कर दो। हे माँ! हमारे मलिन हृदयों को अपने पवित्र जल के छींटों से शुद्ध एवं रोगमुक्त कर दो। तुम्हारी सदैव जय-जयकार हो।

इस गीत में राग **'दुर्गा'** के स्वरों का प्रयोग हुआ है। **'गीह'** ताल में निबद्ध यह गीत ढोलक, हुड़क आदि ताल-वाद्यों की संगति के साथ गाया जाता है। रेणुका की पावनस्थली में मेलों आदि के अवसरों पर यह गीत विशेष रूप से सुनने को मिलता है।

दुर्गा राग के स्वरों से रचित एक अन्य गीत प्रस्तुत है जो सोलन जनपद में अत्यधिक लोकप्रिय है। यह गीत 'जन्माष्टमी' तथा अन्य धार्मिक त्योहारों के समय पर गाया जाता है। इस गीत में भगवान श्रीकृष्ण की लीला का वर्णन मिलता है—

गीत

तेरी-बंसी रा नजारा कृष्णा
तेरी-बंसी रा नजारा हो
आगे-आगे बोलो कृष्ण चालो
पाछे गोपिया रा लारा हो...पाछे...
एकी गुठी पाँदे पर्वत चकेया
चकेया भ्रमण्ड सारा हो...तेरी...

स्वरलिपि (नाटी ताल मात्रा 8)

स्थायी

														म	म
														ते	री
म	–	प	–	म	रे	–	सा	ध	–	ध	प	–	प	ध	ध
बं	ऽ	सी	ऽ	रा	ऽ	ऽ	न	जा	ऽ	रा	कृ	ऽ	ष्णा	ते	री
म	–	प	–	म	रे	–	सा	प	–	ध	प	म	म	–	–
बं	ऽ	सी	ऽ	रा	ऽ	ऽ	न	जा	ऽ	रा	ऽ	हो	ऽ	ऽ	ऽ

अन्तरा

सां	सां	–	सां	सां	रें	सां	ध़	प	ध	प	म	ध	–	ध	–
आ	गे	ऽ	आ	गे	ऽ	बो	लो	कृ	ऽ	ष	ण	चा	ऽ	लो	ऽ
ध	ध	–	प	म	–	प	रे़	म	–	म	–	सां	नि	रें	सां
पी	छे	ऽ	गो	पी	ऽ	या	रा	ला	ऽ	रा	ऽ	हो	ऽ	ऽ	ऽ
ध	ध	–	प	म	–	प	रे	म	–	म	–	–	–	म	म
पी	छे	ऽ	गो	पी	ऽ	या	रा	ला	ऽ	रा	ऽ	ऽ	ऽ	ते	री

कृष्ण आपकी बांसुरी का जादू अनेकों नज़ारे दिखाता है। जिससे प्रभावित होकर गोपियों का झुंड आपके पीछे-पीछे चल रहा है। भगवान कृष्ण धन्य हैं जो एक

अंगुली पर सारा ब्रह्मांड उठा लेते हैं।

देवी-देवताओं के गीतों में सीता-राम, राधा-कृष्ण आदि के स्तुति-गीतों के अतिरिक्त बाबा बालक नाथ आदि से सम्बन्धित गीतों का भी प्रचलन हिमाचल के तराई क्षेत्र में दिखाई देता है।

धार्मिक गाथा गीत

इस वर्ग में हिमाचल में प्रचलित धार्मिक गाथा सम्बन्धी वे गीत आते हैं जो किसी धार्मिक घटना एवं प्रसंग का प्रतिनिधित्व करते हैं। पौराणिक तथा रामायण, महाभारत, भर्तृहरि, गूग्गा, शिवपुराण आदि के आधार पर अनेकों गाथायें प्रचलित हुई हैं। रामायण के प्रसंग से सम्बन्धित इसी प्रकार का एक गीत शिमला जनपद में प्रचलित है—

गीत

सीतला राणिये भूखड़ी लागी। बाग रे राणिये आज्ञा देन्दे
बुरे ओ भाइया लांके रे हेडे। बुरे ओ भाइया लांके रे हेडे
देवले मेरेया जानीएं घाये। देवले मेरेया जानीएं घाये
शड़े पौड़े फलिक खामां। शड़े पौड़े फलिक खामां
बाड़िये तेरी हाथ नी लामा। बाड़िये तेरी हाथ नी लामा
लांकेयो भाईयौ धावड़ी पड़े। लांकेयो भाईय धावड़ी पड़े
बाड़ीयो भाईया बांदरे खाई। बाड़ीयो भाईया बांदरे खाई
मारी न लांके बांदर थीये। मारी न लांके बांदर थीये।
आणेयो भाईयो रामो री सीये। आणेयो भाईयो रामो री सीये।
हणुओ भाईयो पाकड़े घाला। हणुओ भाईयो पाकड़े घाला।
नीयां भाईयो दश दवारे। नीयां भाईयो दश दवारे।
आपणी मौत आफीए दसू। आपणी मौत आफीए दसू।
आणो रूँ औ शोभण तेल। आणो रूँ औ शौमण तेल
मरदे देखे हंणू रे खेल
बिड़े-बिड़े गांव के बेशे। मायड़े-मायड़े पाछोगे बेशे
रूअ तेल पूंजड़ी बानो। हुणू री पूजड़ी लाएऔ आग
दिताअ हणूये मुंगरे गेरा। तिरि ओर दवारी ये पोरा
एकी फेरा दा शये-शाठ। दुजे फेरे दा पूरा लाख
सारी ओ हणुवें नगरी फूकी। सारी ओ हणुवें नगरी फूकी।
हणुये भाईयो लेवटे देते। हणुये भाईयो लेवटे देते।

स्वरलिपि

सा	सा	सा	सा	सा	नि़प़	प़	प़	प़	नि़	सा	–
सी	त	ला	रा	णि	येंऽ	भू	ख	ड़ी	ला	गी	ऽ
सा	सा	सा	सा	सा	नि़प़	प़	प़	प़	नि़	सा	–
सी	त	ला	र	णि	येऽ	भू	ख	ड़ी	ला	गी	-ऽ
रे	रे	रे	रे	सा	नि़	नि़	प़	प़	नि़	सा	–
बू	रे	ओ	भा	ई	या	लाँ	ऽ	कैरे	हे	डी	ऽ
रे	रे	रे	रे	स्ना	नि़	नि़	प़	प़	नि़	सा	–
बू	रे	ओ	भा	ई	या	लाँ	ऽ	कैरे	हे	डी	ऽ

यह गीत चार स्वरों से निर्मित है तथा गीत का चलन मन्द्र सप्तक में अधिक रहता है। यह गीत विशेष नृत्य के साथ गाया जाता है, जिसे स्थानीय भाषा में "ठांमरू" कहा जाता है। इस गीत को पीठ मिलाकर व दक्ष कलाकार दूसरों के बाजू से बाजू एवम् कदम से कदम मिलाकर ताल-लय तथा स्वर में नृत्य करते हुए गाते हैं। प्रस्तुत गीत में हनुमान द्वारा लंका जलाये जाने का वर्णन है। गीत का भाव कुछ इस प्रकार है–

'हनुमान लंका पहुँचकर सीता के समक्ष खड़े होकर भूख से पीड़ित होने के कारण कुछ खाने को मांगते हैं तो सीताजी हनुमान को बताती हैं कि अशोक वाटिका के रक्षक राक्षस वास्तव में खतरनाक शिकारी हैं। हनुमान सीताजी से आग्रह करते हैं कि वे उन्हें वाटिका में जाने की आज्ञा दें क्योंकि वे मात्र गिरे हुए फल ही खायेंगे, वाटिका को किंचित् भी हानि न पहुँचायेंगे।

सीताजी की अनुमति पाकर हनुमान वाटिका में घुसे। समस्त फल-फूल तोड़ डाले। रावण के अनुचर उन्हें दरबार में ले गये जहाँ पूछताछ से ज्ञात हुआ कि वे रामभक्त हनुमान हैं। क्रोधाभिभूत रावण हनुमान की पूँछ में आग लगा देते हैं। हनुमान समस्त लंका को अग्नि से ध्वस्त कर समुद्र में कूद कर अपनी पूछँ की आग बुझा लेते हैं। हिमाचल प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में इस प्रकार की धार्मिक-विषयवस्तु वाली लोक-गाथाएं प्रचलित हैं। सिरमौर क्षेत्र में **'पंडवायन'** गाथा जिसका सम्बन्ध महाभारत से है, लोकप्रिय है, इसी प्रकार इस क्षेत्र में विभिन्न गाथाएं **'हारुल'** के नाम से जानी जाती हैं। शिमला क्षेत्र में **'बरलाज'** अथवा बलिराज (राजा बलि से सम्बन्धित गाथा) भी प्रचलित हैं। इनके अतिरिक्त शिव पुराण, भक्त प्रह्लाद, रामायण व सुखसागर सम्बन्धी अनेकों धार्मिक गाथाएं गेयात्मक शैली में प्रचलित हैं। भर्तृहरि को सिरमौर क्षेत्र में "भरतरी" संज्ञा से अभिहित किया गया

है। इनका यशोगान भी भक्तजन मुक्तकंठ से करते हैं।

गीत

> **ओ आमें छोड़े ओ पापिया तू कौसी देशो के चाला ला।**
> **राणी थामोली पिंगला तेरे भोगुये रा पाला ला ॥**
> **जांदी बारी वे आमायें लोई ओकलो लाईला,**
> **मेरी शुणे बेटेया घोरो छोड़ी रो न जाईला।**
> **एबे केरी आमेया लोजया वोईरी री दियो चुकाई ॥**

स्वरलिपि

सां	सां	सां	सा	–	सा	सा	–	–	नि	नि	ध	ध	प	प	–
ओ	आ	मे	छो	ऽ	ड़ि	यो	ऽ	ऽ	पा	ऽ	पि	या	ऽ	तू	ऽ
प	ध	ध	ध	म	–	म	प	ग	ग	रे	सा	नि̣	–	–	–
ऽ	को	सो	दे	शो	ऽ	खे	ऽ	ऽ	चा	ला	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
नि̣	रे	रे	रे	–	रे	रे	रे	–	सा	सा	सा	रे	नि	रे	रे
ऽ	रा	ऽ	णि	ऽ	थाँ	मो	ली	ऽ	पि	ऽ	ग	ला	ऽ	ते	रे
रे	ग	म	म	ग	–	रे	सा	–	सा	–	सा	–	–	–	–
ऽ	भो	ऽ	गु	ए	ऽ	रा	ऽ	ऽ	पा	ऽ	ला	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

उपर्युक्त 'भरथरी' में राजा भर्तृहरि द्वारा संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् साधुवेश धारणकर राजप्रासाद त्यागने का मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी वर्णन है। रानी पिंगला राजा के भगवें वस्त्र पकड़कर साथ चलने का आग्रह करती है। माँ पुत्र को राजमहल न त्यागने की अनुनय-विनय करती है। माँ समझाती है कि 'तुम पूर्व दिशा की ओर मत जाओ। वहाँ तुम्हारी बहन है। राजा उत्तर देता है कि हे माँ! कुल की मर्यादा रानी ने भंग कर दी। भला इससे [illegible] अपमान और क्या होगा।

यह गीत **'गीह'** ताल में निबद्ध है जो 16 मात्राओं के बराबर वजन का लोक ताल है। गीत में आंशिक रूप से **खमाच** राग के स्वरों को देखा जा सकता है।

भादों मास से रक्षा बन्धन के दिनों में 'गूग्गा जाहरपीर' की गाथाओं को गाया जाता है। गूग्गा को कल्याणकारी तथा नागों का देवता माना जाता है। यद्यपि इस गाथा का सम्बन्ध राजस्थान से है तथापि यह गाथा हिमाचल के मैदानी स्थानों में अधिक प्रचलित है। लोग गूग्गे की पवित्र छड़ी उठाकर गाँव-गाँव घूमते हुए गूग्गे

की बहादुरी व बलिदान का वर्णन करने वाले गीत गाते हैं।

साँप काटे का इलाज व लोगों की सुख-समृद्धि के लिए 'गूग्गा जाहरपीर' की पूजा करते हैं। बल्ह क्षेत्र में गूग्गे की गाथा का एक गीत कुछ इस प्रकार प्रचलित है—

से वो हांजी केसावो घडिया गूग्गा राणा जन्मेया।
से वो हांजी सिरा रे बालाँ गणूये गूग्गामल जन्मेया ॥

स्वरलिपि

								नि	–	–	ध	पुध	–प	मग	म
प								से	ऽ	ऽ	वो	हाँऽ	ऽऽ	जीऽ	ऽ
प	–	सां	सां	नि	ध	प	ध	प	म	–	ध	ध	प	ध	प
के	ऽ	सा	बो	घ	ड़ी	या	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	गु	गा	रा	णा
ग	ग	ग	म	–	म	म	–	नि	–	–	ध	पुध	–पु	मग	म
ज	न	मे	या	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	से	ऽ	ऽ	वो	हाँऽ	ऽऽ	जीऽ	ऽ
प	प	सां	सां	नि	ध	प	ध	प	म	–	ध	ध	प	ध	प
सि	रा	रे	ब	लां	ग	णू	ये	ऽ	ऽ	ऽ	ओ	गु	गा	रा	णा
ग	ग	ग	म	–	म	म	–								
ज	न	मे	या	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ								

इस गीत के साथ डमरू ढोल, थाल तथा दमामटू आदि ताल वाद्यों का संयुक्त वाद्य-वृन्द संगति करता है। गीत में विचित्र लयकारियों से युक्त 'गूग्गा' ताल का प्रयोग किया जाता है। जिसका आवर्तन 16 मात्राओं के बराबर होता है। ताल इस प्रकार है।

गूग्गा ताल

ता धिग धिग	धा धिग धिग	धा ग धा ग	ता ता ऽ	ता ता ऽ

शिक्षाप्रद गीत

हिमाचल प्रदेश की संस्कृति में ऐसे अनेक गीत प्रचलित हैं, जिनमें सेवा, सत्यव्रत, तीर्थ, दान, धर्मानुष्ठान विषयक नियमों तथा मर्यादाओं का निर्देश दिया गया है। धर्माचरण का उपदेश एवं वैराग्य आदि "ावों का संचार एवं प्रसार इन गीतों द्वारा किया जाता है। कतिपय गीत सामाजिक मर्यादाओं, मूल्यों तथा मानदण्डों की ओर भी इशारा करते हैं।

सरल-सरस ये शिक्षाप्रद गीत जन-जन को शिक्षा का अवलम्बन प्रदान करते हुए सभ्यता और सुसंस्कृति का उन्नयन करते दीखते हैं।

ऐसे शिक्षाप्रद गीतों के रचयिता व प्रसारक प्रायः 'साधु' लोग होते हैं, जो डफली तथा एकतारे की सहायता से ऐसे गीतों का सस्वर लयात्मक गान करते हुए उपदेश देते हैं।

कुछ गीतों में यौगिक दृष्टि भी प्रतीत होती है। प्रस्तुत गीत में हिरण की एक कहानी के माध्यम से ईश्वर का निरन्तर ध्यान तथा सांसारिक चिन्ताओं से मुक्ति का वर्णन है—

गीत

विपदा निवारेंगा भगवान,
चिन्ता मन में काहे को करे
काहे को करे दिन-रात, चिन्ता मन में काहे को करे
हिरनु ता हिरनी चले जंगल को फंदकी ने फाईयाँ लाई
हिरनी बेचारी लंघे खड़ोती, हिरनु फसेया विच फाईयां
चिन्ता मन में काहे को करे
पांज सात कदमा पीछे हटदी जे हिरनी, मेरा हिरनु वी फसेया
म्हारी औखिया निवारेंगा महाराज, चिन्ता मन में काहे को करे
हिरनी जे बोलदी सुण मेरे हिरनुआँ हमरी थोड़ी बातां
फँदकी रे घर जाई के मुकेया बेची कने खाणा तेरा मास
हेड़ी रे मना दया जे आई छोड़ेया हरनु ते जाल
चिन्ता मन में काहे को करे
तेरी भली वे करेगा करतार चिन्ता मन में काहे को करे

स्वरलिपि

			प प
			ते री
प पृध - सा - सा	सा रेग - रे सा रे	ग- -रे सा रे	सा सा - सा रे ग
- विप ऽ दा ऽ नि	वा रेंगा ऽ भ ग ऽ	वाऽ ऽऽ ऽ न	चिं ता ऽ म न में
प रेग - रे - सा	सा - - -	- - - - - -	- - - - - -
ऽ काहे ऽको ऽक	रें ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

इस गीत में राग **'शिवरंजनी'** के स्वरों की स्पष्ट झलक मिलती है। एक अन्य गीत में जीवन के प्रति मोहमाया को त्यागने के लिए मानव देह को पिंजरा तथा मनुष्य के प्राण को पंछी की संज्ञा दी गई है। यथा–

गीत

भौंरा उडी जाणा ओ पिंजरा खाली रैहमदा
पिंजरा बणाया ओ मोहणा तेरे सौंक दा
भौंरा उड़ी जाणा ओ पिंजरा खाली रैमदा
मैहल बणाया ओ मोहणा तेरे सौंक दा
काला उड़ी जाणा पिंजरा खाली रैमदा

स्वरलिपि (कहरवा)

ध़ सा सा रे	रे सासा धध ध	प ध प -म	प - - -
मै ह ल ब	णा याओ मोह णा	ते रो सौं ऽक	दा ऽ ऽ ऽ
प ध प म	रे रे मम म	प ध प -म	म - - -
का ला उ डी	जा णा पिंज रा	खा ली रै ऽम	दा ऽ ऽ ऽ

यह गीत पहाड़ी राग की मधुर स्वरावलियों पर आधारित है जो **'कहरवा'** के सदृश्य ताल के अन्तर्गत गाया जाता है।

मनुष्य की उलझनें कभी समाप्त नहीं होतीं। इसलिए 'सर्वकर्मफल त्यागकर' निवृत्ति का मार्ग अपनाते हुए ईश अर्चना एवं नाम सुमरिन की सीख देते हुए एक गीत कहा गया है–

गीत

इन्हा धन्धेया ने नई ओ मुकणा
राम जप लै तू जिन्दड़िये मेरीये

स्वरलिपि (पीलू राग)

														प	प
														इ	न्हा
प	-प	प	धप	मम	गग	रे	ग	रे	सा	नि	-सा	गग	-रे	सा	रे
धं	ऽधे	या	नेऽ	नई	ओऽ	मु	क	णा	ऽ	रा	ऽम	जप	ऽले	ऽ	तू
ग	-रे	सा	रे	नि	-नि	सा	-	-	-	-	-	-	-	प	प
जिं	न्द	ड़ी	ये	मे	ऽरी	ये	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	इ	न्हा

इस गीत में **'पीलू राग'** की हल्की छाया द्रष्टव्य है।

इस प्रकार आदर्श जीवन की स्थापना में भी इन आध्यात्मिक गीतों का अपूर्व महत्त्व प्रतिपादित किया गया है तथा प्रमाण रूप में अवतारी महापुरुषों का उल्लेख बार-बार किया जाता रहा है। यथा मर्यादित पत्नी हेतु भगवती सीता का आदर्श, पालक हेतु श्रीराम, सखा हेतु श्रीकृष्ण सुदामा, पापनाशक हेतु भगवती दुर्गा, अनासक्ति पूर्णस्वामी के रूप में भर्तृहरि का तथा श्रेष्ठ संहारक के रूप में शिव का। इस तरह के अनगिनत गीत जन सामान्य में शिक्षा एव मर्यादा का प्रचार व प्रसार प्रचलित है। एक गीत में जीवन को क्षणिक बताते हुए ईश्वर का चिन्तन करने का उपदेश मिलता है। यथा—

गीत

खेलण दे दिन चार माये
कातदी कतांदियाँ पुनियाँ जे दुटदी
ताकली दे हुँदे बट चार

स्वरलिपि (विहागड़ा) चांचर ताल

स्थायी

सा	-	-	रे	-	नि	ध	सा	-	-	रे	-	रे	-
खे	ऽ	ऽ	ल	ऽ	णं	ऽ	दे	ऽ	ऽ	दि	ऽ	न	ऽ
म	-	-	म	-	प	ध	नि	ध	प	म	ग	रे	सा
चा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	र	ऽ	मा	ऽ	ऽ	ये	ऽ	ऽ	ऽ

अन्तरा

धा	सा	-	रे	म	सा	रे	म	म	-	म	-	म	-
का	त	ऽ	दी	ऽ	ऽ	क	ताँ	दी	ऽ	याँ	ऽ	ऽ	ऽ
प	प	-	प	-	प	-	म	प	ध	म	ग	रे	-
पु	णि	ऽ	याँ	ऽ	जे	ऽ	टु	ट	ऽ	दी	ऽ	ऽ	ऽ

ताकली दे हुंदे बट चार – स्थायी की तरह है।

यह **'विहागड़ा'** शैली का लोकप्रिय गीत है जो झिंझोटी राग की मधुर स्वरावलियों से निर्मित है। गीत **'चाचर ताल'** में निबद्ध है।

हिमाचल प्रदेश के लोगगीतों में ध्यागड़ा गीत शैली बहुत महत्त्वपूर्ण है। सांगीतिक दृष्टि से भी यह शैली अपना महत्त्व रखती है। भक्ति एवं शिक्षा की भवाना से ओत-प्रोत ये गीत, गीत के तत्त्वों की दृष्टि से अत्यन्त उन्नत एवं परिष्कृत कहे जा सकते हैं। प्रस्तुत एक अन्य सुमधुर 'बिहागड़ा' गीत में गंगा स्नान का सुन्दर वर्णन मिलता है–

गीत

गंगा दे न्हौणे जाँदा मेरे मोहणा
गंगा दे न्हौणे जाँदा हो
हाथा लैंदा लोटकू काछा लैंदा धोती
गंगा दे न्हौणे जाँदा हो...

स्वर लिपि चांचर ताल

										सा	-	सा	-
										गं	ऽ	गा	ऽ
रे	-	-	म	-	म	-	प	-	-	प	ध	नि	-
दे	ऽ	ऽ	न्हौ	ऽ	णे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	जाँ	दा	ऽ	ऽ
नि	ध	-	म	-	पध	मप	ग	रे	सा	ग	रे	सा	-
मे	रे	ऽ	मो	ऽ	ह	ऽऽ	णा	ऽ	ऽ	गं	ऽ	गा	ऽ
नि़	प़	-	नि़	-	सा	-	रे	ग	सारे	प	-	ग	रे
दे	ऽ	ऽ	न्हौ	ऽ	णे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	जां	ऽ	दा	ऽ
सा	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-
हो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

प्रस्तुत गीत **'चांचर ताल'** में निबद्ध है तथा इसमें **राग बरवा** तथा **तिलक कामोद** के स्वरों की छाया द्रष्टव्य होती है।

सारांश रूप से यह कहा जा सकता है कि हिमाचल प्रदेश के धर्म-विषयक गीतों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। क्योंकि इनमें समाज के प्रत्येक वर्ग के धर्म, दर्शन, अध्यात्मवाद तथा योग के तत्त्व विद्यमान हैं, जो यहाँ के जनसमुदाय की भावनाओं से संपृक्त हैं। अतएव जहाँ एक ओर हिमाचल प्रदेश के धर्म-विषयक गीत सामाजिक एकता व संगठन के परिचायक हैं वहाँ मानव के स्वस्थ चिन्तन-मनन एवं व्यवहार में शुभ-अशुभ, सद्-असद् को लेकर निर्णायक सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित रहे हैं। अतएव इनकी शक्ति नितांत प्रबल है।

□

हिमाचल प्रदेश के लोक गीतों में राग छाया

डा० गंगाराम शर्मा

शास्त्रीय संगीत का आधार नाद है। गुरु के समक्ष कठोर साधनोपरान्त ही स्वरों के उतार-चढ़ाव का आश्चर्यजनक प्रदर्शन किया जा सकता है। वर्तमान लोक संगीत एवं प्राचीन लोक संगीत में काफी लम्बी अवधि का अन्तर है। यह तो निश्चित ही है कि वर्तमान लोक संगीत प्रसुप्त संगीत के गर्भ से पैदा हुआ। इसी प्रसुप्त संगीत के गर्भ से शास्त्रीय संगीत का भी जन्म हुआ है। मानव ने अपने जीवन के प्रारम्भ में चारों ओर रंगीन वातावरण देखा तो उसका मन भी हिलोरें लेने लगा। हृदय से भावनाएं शब्दों में ढलकर मुखरित हुईं और धीरे-धीरे लोक संगीत का निर्माण हुआ।

प्रसन्नता के अनेक अवसरों पर त्योहारों, ऋतु पर्व तथा अन्य समारोहों के अवसरों पर खुशी मनाने के लिए लोग गाँवों में एक जगह सम्मिलित होकर नाचकर, गाकर, सींग, शंख, बांसुरी आदि बजाकर अपनी कलात्मक अभिरुचि को अभिव्यंजित करते थे।

देहातों में जब साधारण मनुष्यों द्वारा सामूहिक रूप में गाए जाने वाले यही लय प्रधान गीत जो किसी समाज में परम्परागत रूप में प्रचलित रहे हैं, कालान्तर में लोकगीत कहलाने लगे। इन लोकगीतों में तत्कालीन मानव और उसके जीवन के प्राथमिक चित्र अंकित हुए हैं।

इन गीतों में मानव ने अपनी हृदयस्थ भावनाओं को स्वरों द्वारा सहज और मुक्त रूप में अभिव्यंजित किया है।

विभिन्न प्रदेशों की गायन शैलियां विशिष्ट होती हैं। उनमें अपनी-अपनी मिट्टी का गुण होता है। इन प्रादेशिक गायन शैलियों में कभी-कभी इतनी सुन्दर स्वर रचना होती है कि वह राग का रूप धारण कर लेती है। मतंग मुनि ने भी अपने ग्रन्थ "वृहद्देशी" में कहा है कि रागों की उत्पत्ति प्रादेशिक गायन शैलियों से होती है।

प्रादेशिक गायन शैलियाँ भाखा कहलाती हैं। मतंग मुनि ने यह भी कहा है कि–

अवला बाल गोपाल क्षितीश्चैव निनैच्छया।
गीयते सानुरागेन स्वदेशः देशि उच्चते ॥

बाल-गोपाल तथा राजा अपनी इच्छा से और अपनी-अपनी बोली में जो अनुराग सहित गाते हैं वही संगीत वास्तव में देशी संगीत है।

हमारे देश के प्रख्यात **पण्डित रविशंकर** द्वारा यह कहा गया है कि "लोकधुनों को तीन भागों में बांटा जा सकता है। एक भाग वह है जिसमें मूल सूत्र भक्ति रस है इसमें हरिकथा से लेकर रामायण तक गाई जाती है।

दूसरा भाग वह है जिसमें मूल रूप से हमारे गाँवों के गीत जो अलग-अलग अवसरों पर गाए जाते हैं। इनमें हिमाचल के पहाड़ी इलाकों में गाये जाने वाले गीत सम्मिलित हैं। इन गीतों में प्रायः दुर्गा, भूपाली, पहाड़ी, सारंग और पीलू रागों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। जबकि प्रथम भाग में गाए जाने वाले लोकगीतों में दुर्गा, पीलू, काफी, गौरी और कालिंगड़ा रागों का प्रयोग पाया जाता है। महाराष्ट्र और दक्षिण भारत के लोकगीत इसी तरह के होते हैं।

तीसरे भाग में गौड़, भील, संथाल, नागा तथा मरिमां आदि लोकगीत हैं। इनमें अलग-अलग रागों के मिश्रण पाए जाते हैं। ये गीत दुर्गा, भूपाली में अपने ही ढंग से गाए जाते हैं। इस रीति से गाई जाने वाली धुनों से हम उन श्रुतियों को सुनते हैं जिनको आम लोग नहीं जानते। क्योंकि हम व्यवहार में आने वाली बारह श्रुतियों को ही सुनने के आदी बन चुके हैं। इसलिए वे लोक गायक बेसुरे से लगते हैं। लेकिन हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीतकार जो इस गुप्त भेद को जानते हैं तथा बाईस श्रुतियों के उपयोग का रहस्य समझते हैं वे इनके गुण गाए बिना नहीं रह सकते।

हिमाचल प्रदेश के लोक संगीत में राग छाया

हिमाचल प्रदेश के लोक संगीत में राग का कोई महत्त्व नहीं है, अर्थात् राग नाम की कोई चीज पाई नहीं जाती। अतएव यह संगीत राग के लक्षणों से युक्त एक स्वतन्त्र तथा स्वच्छन्द संगीत है जबकि शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत "संगीत" शब्द एक परिष्कृत संगीत का बोधक है।

आरोह, अवरोह, थाट, जाति, पकड़, न्यास आदि लक्षण राग को नियन्त्रण में रखते हैं। हिमाचल प्रदेश के लोक संगीत में पिलू, पहाड़ी, तिलग, खमाच, बिहाग, देश, बागेश्वरी, भीमपलासी, शिवरंजनी आदि रागों की स्वर लहरियां और विविध रागों की छाया देखी जा सकती है।

ऐसा भी माना जाता है कि शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त "राग पहाड़ी" लोक संगीत की इन्हीं स्वरावलियों से निर्मित हुआ है तथा वह एक निश्चित विधान के अन्तर्गत शास्त्रीय संगीत में स्थान पा गया।

शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत गेय वस्तु को बन्दिश, चीज आदि से सम्बोधित किया जाता है। इसमें स्थायी अन्तरा पाया जाता है। इसके अतिरिक्त उसमें 'संचारी' तथा 'आभोग' नामक दो चरण भी पाए जाते हैं। इन चारों की स्वरावलियां भिन्न-भिन्न होती हैं। हिमाचली लोक संगीत में केवल स्थायी और अन्तरा पाया जाता है। इसमें गेय वस्तु को चीज़ या वस्तु की संज्ञा नहीं दी जाती। अधिकतर स्थायी अन्तरा एक-सा ही होता है। इसलिए इसे बार-बार दोहराया जाता है।

शास्त्रीय संगीत में स्वरों का विकास तथा क्षेत्र अधिक विस्तृत रहता है जबकि हिमाचली संगीत में स्वरों का क्षेत्र संकुचित होने से गीत बहुत लम्बे होते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि शास्त्रीय संगीत में थोड़ा ज्यादा तथा अधिक स्वर विस्तार पाया जाता है, जबकि इसके विपरीत हिमाचली संगीत में (गीत) शब्द अधिक से अधिक तथा कम से कम स्वरों में बनी धुन का प्रयोग किया जाता है।

शास्त्रीय संगीत में राग हानि का डर हमेशा रहता है। गायक मन्द्र सप्तक से तार सप्तक तक इस ढंग से आलापचारी या सरगम का प्रयोग करते हैं कि राग भाव वैसे का वैसा ही बना रहे और उसका तारतम्य न टूटे, जबकि हिमाचली संगीत की धुनों में राग छाया होते हुए भी उनके गायन की विधि अत्यन्त सरल व मोहक होती है, उसमें केवल पूरी धुन पर ही ध्यान केन्द्रित रहता है न कि राग की स्वरावलियों पर।

इस गायन प्रणाली द्वारा लोक संगीत में गायक चार चाँद लगा देते हैं। हिमाचल प्रदेश के लोक गायक 'षड़ज' को न जानते हुए भी इतनी सुन्दरता से धुन को थामे रहते हैं कि श्रोताओं को स्वर-वाद्य की अनुपस्थिति का आभास तक नहीं होता। सामूहिक गीतों में एक-दो व्यक्ति मूल गीत को गाने वाले होते हैं और शेष गीत की कड़ियों को दोहराने वाले गायक अलग होते हैं। सिद्धान्त यह है कि मूल गायक द्वारा गाई गई कड़ी को उसके समाप्त होने से पूर्व ही (दो मात्रा पहले ही) धुन को पकड़ लेते हैं, तथा यह तारतम्य टूटता नहीं है। षड़ज का स्वर निरन्तर बनता रहता है। "तानपूरे की तरह" अन्दर-अन्दर में ही निश्चित स्वर से गाना छोड़कर पुनः उसी स्वर से गाना इन लोक गायकों के लिए बिल्कुल सरल है। कभी-कभी लोक गायक, "षड़ज गांधार" "षड़ज मध्यम" "षड़ज पंचम" का प्रयोग इतने सुन्दर ढंग से करते हैं कि श्रोता आनन्दविभोर हो जाता है। यह प्रक्रिया कितनी कठिन है यह कोई संगीतज्ञ ही समझ सकता है। पुरुष यदि षड़ज में लोकगीत का उठान करते हैं तो स्त्रियां उसी गीत की उसी कड़ी को दोहराते समय दो मात्रा पूर्व ही गाकर मध्यम अथवा पंचम स्वरों में उठाती हैं। इस प्रकार के स्वर संयोजनों का प्रयोग प्रायः विदेशी संगीत में पाया जाता है भारतीय संगीत में नहीं। अन्तर इतना है कि विदेशी संगीत में यह स्वर संयोजन गायकों अथवा किसी साज़ के माध्यम से एक साथ

होता है और हिमाचली संगीत में यह प्रक्रिया बिना किसी साज के या उसकी संगत के अलग-अलग होती है। यह अनूठा मेल स्वर संयोजन किसी भी संगीतकार के लिए एक चौंकाने वाला करिश्मा है।

हिमाचल के लोकगीत यद्यपि रसात्मक अभिव्यक्ति के लिए रस तत्त्वों के नियम एवं सिद्धांतों की अपेक्षा नहीं रखते। यद्यपि सामाजिक वातावरण, सामाजिक परिस्थितियों तथा दैनिक दिनचर्या का स्वरूप ही लोकगीतों के माध्यम से प्रस्फुटित होकर अनेकानेक भावों की अभिव्यक्ति में रस को अंगीकार करता है।

इस प्रकार शास्त्रीय रागों की रागात्मक एवं लोकगीतों की रसात्मकता के तत्त्वों के रूप में शास्त्रीय संगीत व लोकगीत एक सूत्र में बंध जाते हैं। लोकगीत रागों पर आश्रित नहीं होते परन्तु यदि इन लोकगीतों की धुनों का स्वरात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाए तो इन धुनों में किन्हीं रागों की छाया या उनका आभासमात्र परिलक्षित होता है।

सर्वप्रथम यहाँ की धुनों में स्वर क्षेत्र की व्यापकता का ज्ञान अवश्य करना होगा। हिमाचल प्रदेश में अभी भी तीन स्वर के प्रयोग से निर्मित धुनों से लेकर पूर्ण सप्तक के प्रयोग से प्राप्त होने वाली धुनें प्रायः सुनी जाती हैं। लोकगीतों में अधिकतर सात शुद्ध स्वरों और दो विकृत गन्धार और कोमल निषाद स्वरों का प्रयोग मिलता है अर्थात् उनमें मुख्यतः बिलावल, खमाज और काफी थाटों के स्वर लगते हैं। कोमल धैवत और कोमल ऋषभ तथा तीव्र मध्यम युक्त गीत न होने के समान हैं देश में शास्त्रीय संगीत के प्रचार व विकास के साथ-साथ ग्राम और नगर के पारस्परिक अधिक सम्पर्क होने के कारण अनेक स्थानों में लोकगीतों की स्वर सीमाएं भी बढ़ती जा रही हैं। जिनमें कोई न कोई राग अवश्य दृष्टि-गोचर होता है। कई बार हमें लोकगीतों में स्थान-स्थान पर भूप, दुर्गा, सारंग का आभास मिलता है इसी प्रकार कहीं काफी और खमाज व तिलंग का आभास भी होता रहता है।

हिमाचली संगीत में "साओण" गीत में 'देश' के साथ 'गौड़-मल्हार' का आभास मिलता है और सिब्बी गीत में 'हेमकल्याण' दिखाई पड़ता है इसके अतिरिक्त इस प्रदेश के लोकगीतों में शिवरंजनी, बागेश्वरी, खमाज, देश, तिलंग, तिलक कामोद, नारायणी, माँड, दुर्गा, पिलू, पहाड़ी, भीमपलासी भूपाली, झिंझोटी तथा होली इत्यादि रागों की अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से होती है।

हिमाचल प्रदेश में निम्नलिखित लोकगीतों में राग छाया इस प्रकार से है—

मंडयाली लोक गीत

इसमें राग 'तिलक कामोद' की छाया मिलती है।

नि़ नि़ - नि़	सा रे - रेम	मग - रेग सा	सा - रे -
नि र ऽ मं	डा ऽ री एऽ	बाऽ ऽ म णि	ए ऽ हो ऽ
म प प प	प - प -	पध पध म म	म ग रे सा
आ या ब र	खा ऽ रा ऽ	छाऽ लाऽ भ लि	ये ऽ ऽ ऽ

चम्बयाली लोक गीत

जिला चम्बा का लोकगीत जिसमें **'राग दुर्गा'** की छाया मिलती है।

सा रे ध़ सा	रे म रे प	म - - -	ध ध म प
रा जे री ए	बे ऽ ऽ ड़ि	ए ऽ ऽ ऽ	सौ क णी तु
ध(सां) ध(सां) म रे	म - - -		
मे ऽ ऽ रि	ए ऽ ऽ ऽ		

सिरमौरी लोक गीत

इस लोकगीत में राग **'भूपाली'** की छाया मिलती है।

X

सा गरे ग - | सा- रे गरे —प- ध़ सा गरे ग सा रेसा सासा —प-

ली लिऽ मा ऽ भाइ | ली लिमा ऽ भाइ | ली ऽ लिऽ मा भाइ लीऽ लिमा ऽ भाइ

लाहुली जनपद का लोकगीत

इस लोकगीत में राग **'दुर्गा'** की छाया है।

प म -	रे सा -	रे - मप	ध प -	प - म	म - -
रा मा ऽ	ना मा ऽ	के ऽ सुबा	शा मा ऽ	ना ऽ मा	ले ऽ ऽ

केलांगी लोक गीत

इस लोकगीत में 'भूपाली' राग की छाया मिलती है।

स्थाई

सा	रे	ग	ग	रे	-	-	-	सा	रे	ग	रे	सा	-	सा	ध़
भा	ई	सा	ब	जी	ऽ	ऽ	ऽ	के	ऽ	लां	गा	से	ऽ	ला	ऽ
सा	रे	ग	ग	रे	-	-	-	सा	रे	ग	रे	सा	-	सा	-
भा	ई	सा	ब	जी	ऽ	ऽ	ऽ	के	ऽ	लां	गा	से	ऽ	ला	ऽ

अन्तरा

प	प	ऽ	ध	सां	ध	प	प	ध	प	ग	-	ग	-	-	-
के	लां	ऽ	ग	बि	ज	ली	ऽ	झि	ली	मि	ऽ	ली	ऽ	ऽ	ऽ
सा	रे	ग	ग	रे	-	-	-	सा	रे	ग	रे	सा	-	सा	ध
भा	ई	सा	ब	जी	ऽ	ऽ	ऽ	के	ऽ	लां	गा	से	ऽ	ला	ऽ
सा	रे	ग	ग	रे	-	-	-	सा	रे	ग	रे	सा	-	सा	-
भा	ई	सा	ब	जी	ऽ	ऽ	ऽ	के	ऽ	लां	गा	से	ऽ	ला	ऽ

बिलासपुरी लोक गीत

इस लोकगीत में राग 'काफी' के स्वरूप की छाया मिलती है—

1	2	3	4	5	6	7	1	2	3	4	5	6	7
नि़॒	सा	नि़॒	सा	-	रे	-	ग॒	-	-	रे	-	सा	-
दो	ऽ	ऽ	ब	ऽ	ण	ऽ	जा	ऽ	ऽ	रू	ऽ	मैं	ऽ
सा	रे	-	रे	-	सा	-	सा	-	-	नि॒	-	नि	-
ब	ट	ऽ	णे	ऽ	जो	ऽ	मे	ऽ	ऽ	जे	ऽ	ऽ	ऽ
नी़॒	सा	नी़॒	सा	-	रे	-	ग॒	-	-	रे	-	सा	-
स्यो	ऽ	ऽ	ब	ऽ	न	ऽ	जा	ऽ	ऽ	रू	ऽ	नी	ऽ
रे	-	-	सा	-	सा	-							
आ	ऽ	ऽ	ये	ऽ	ऽ	ऽ							

उना क्षेत्र का लोकगीत

इस लोकगीत में राग 'देश' की छाया मिलती है—

						ऩी	ऩी
						वा	ऽ
सा	-	-	रे	सा	-	रे	-
वा	ऽ	ऽ	क	टो	ऽ	रा	ऽ
रे^{ग}	रे^{ग}	सा	-	सा	ध़	ऩी	ऩी
ब	ट	ने	ऽ	दा	ऽ	ऽ	ऽ
सा	-	रे	म	म	ग	रे	सा
मा	ऽ	सी	ऽ	मा	ऽ	न	ना
सा	-	-	रे	ऩी	सा	रे^{ग}	-
मा	ऽ	ऽ	न	है	ऽ	धी	ऽ
रे	-	सा	-	ऩी	प़	ऩी	ऩी
रा	ऽ	जे	ऽ	दी	ऽ	बा	ऽ

चम्बयाली गीत

जिला चम्बा का लोकगीत इसमें राग काफी के स्वरूप की छाया मिलती है—

सा	सा	-	रे	-	रे	-	ग॒	ग॒	-	म	-	म	-
अं	ग	ऽ	ना	ऽ	में	ऽ	बो	ले	ऽ	का	ऽ	ला	ऽ
प	-	-	-	-	-	प	सां	ऽ	-	नि॒	ध	प	-
का	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ओ	री	ऽ	ऽ	बो	ऽ	ले	ऽ
म	-	-	ग॒	-	रे	-	रे	ग॒	-	म	-	प	-

शेष अगले पृष्ठ पर

पिछले पृष्ठ का शेष

पि	या	ऽ	से	ऽ	अं	ऽ	ग	ना	ऽ	कै	ऽ	से	ऽ
सा	सा	-	रे	-	रे	ग़	ग़	-	-	म	-	म	-
अं	ग	ऽ	ना	ऽ	में	ऽ	बो	ले	ऽ	का	ऽ	ला	ऽ

किन्नौरी गीत

यह जिला किन्नौर का लोकगीत है इसमें राग 'दुर्गा' की छाया मिलती है यह बारह मात्रिक है। परन्तु चलन दादरा की तरह है।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
धप	धप	मरे	म	पध	-सा	धम	धम	प	प-	पप	प
गोऽ	लीऽ	कोऽ	होऽ	माया	ऽले	हाय	राऽ	मा	हाय	रामा	ऽ
धप	धप	मरे	म-	पध	-सां	धम	मम	मम	म-	म	म
गोऽ	लीऽ	कोऽ	होऽ	माया	ऽले	हाय	रामा	हाय	रामा	ऽ	ऽ

शिमला एवं सिरमौर के लोकगीत

इस गीत में राग **भीमपलासी** की छाया मिलती है—

-	प	-	-	ग़	-	म	-	ग़	रे	सां	-	-	नि़	-	प
ऽ	आ	ऽ	च्छा	गां	वों	कां	ऽ	डो	ए	रा	ऽ	ऽ	आ	ऽ	च्छा
-	सा	-	नि़	सा	-	-	-	नि़	सा	ग़	म	प	-	ग	म
ऽ	गां	ऽ	वों	रा	ऽ	ऽ	ऽ	चा	ला	मे	री	ह	र	सो	ए
म	-	-	-	-	-	सां	-	सां	नि़	सां	नि	प	-	ग	म
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	बोलो	ऽ	चाला	ऽ	मे	री	ह	र	सो	ए
-	प	-	-	ग़	-	म	-	ग़	रे	सा	-	-	नि़	-	प
ऽ	आ	ऽ	च्छा	गां	वों	कां	ऽ	डो	ए	रा	ऽ	ऽ	आ	ऽ	च्छा

मण्डयाली लोकगीत

इस लोकगीत में राग **'खमाज'** के स्वरूप की छाया मिलती है–

ध	ध	प	ध	सां	सां	सां	नि	ध	प	प	नि	ध	प
उ	ड़ी	ऽ	जां	ऽ	ऽ	यां	उ	ड़ी	ऽ	जां	ऽ	यां	ऽ
ग	-	-	म	-	-	प	ग	-	-	रे	सा	रे	सा
का	ऽ	ऽ	ले	ऽ	ऽ	या	का	ऽ	ऽ	गा	ऽ	ऽ	ऽ
नि़	सा	-	ग	-	-	ग	ग	म	-	ध	प	ध	प
इ	क	ऽ	वो	ऽ	ऽ	सं	ने	हा	ऽ	ल	ऽ	ऽ	इ
ग	-	-	म	-	-	-							
जां	ऽ	ऽ	यां	ऽ	ऽ	ऽ							

चम्बयाली गीत

इस लोकगीत में राग **'पहाड़ी'** के स्वरूप की छाया मिलती है–

सा	सा	सा	सा	रे	मप	ध	-	-	ध	ध	प	म	-	मप	ध
धि	र	धि	र	आंव	दि	यां	ऽ	ऽ	ओ	मे	रे	चम्	ऽ	बेदि	यां
-	ध	ध	प	म	-	मप	ध	म	-	रे	-	-	प	प	प
ऽ	ओ	मे	रे	चम्	ऽ	बेदि	यां	धा	ऽ	रां	ऽ	ऽ	ओ	मे	रे
म	-	मप	ध	म	-	म	म								
चम्	ऽ	बेदि	यां	धा	ऽ	रां	ऽ								

हमीरपुरी लोकगीत

इसमें राग **'भूपाली'** की छाया मिलती है।

तुम्बा गायन प्रणाली के अन्तर्गत

स्थायी

सा	-	रेग	रेसा	सा	-	रे^सा -	ग
ऽ	ऽ	गल	मेंऽ	मं	ऽ	ऽग	ल
रे	-	सा	सा	-	-	-	-
का	ऽ	रि	णी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
सा	-	-	-	-	-	-	सा
हां	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	जं
सां	सां	-	धसां	ध	प	ग	रे
तै	नु	ऽ	सिम	रा	मैं	दे	वी
ग	प	ग - - -	-	सा	-	-	-
नं	द	राऽणीये	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
				सा	-	-	-
				ऽ	ऽ	ऽ	जं

अन्तरा

सांसां	सांसां	सां	- -	सां	- -	सां	सां
तिऽ	ऽऽ	ये	ऽऽ	रै	ऽन	मै	या
धसां	ऽरे	सां -	ध	-	प	-	-
होऽ	ऽया	सऽ	वे	ऽ	रा	ऽ	ऽ
धध	ऽध	ऽध	प	- -	ग	रे	-

शेष अगले पृष्ठ पर

पिछले पृष्ठ का शेष

खु ल	ऽ ग	ऽ या	ऽ	मा ता	रा	वी	ऽ
ग प	ऽ ग	ऽ प	रे	-	सा	-	-
मं द	ऽर	ऽ ज	ते	ऽ	रा	ऽ	ऽ
				-	सा	-	सा
				ऽ	ऽ	ऽ	जं

काँगड़ी लोकगीत

इस गीत में राग **'तिलक कामोद'** के स्वरूप की छाया मिलती है।

स्थाई

प	-	-	ऩि	-	ऩि	नि	सा	-	-	रे	-	ग	-
हो	ऽ	ऽ	कां	ऽ	ऽ	ग	ड़ा	ऽ	ऽ	धौ	ऽ	ली	ऽ
ऩि	-	-	सा	-	सा	-	रे	रे	-	प	-	प	-
धा	ऽ	ऽ	रा	ऽ	मै	ऽ	या	जी	ऽ	बै	ऽ	ऽ	ऽ
म	-	-	ग	रे	ग	रे	सा	-	-	ऩि	-	-	-
कुँ	ऽ	ऽ	ठ	ऽ	ऽ	ब	ना	ऽ	ऽ	या	ऽ	ऽ	ऽ
अन्तरा													
रे	रे	-	ग	-	म	-	प	प	प	प	-	प	-
दू	रा	ऽ	बे	ऽ	दू	ऽ	रा	ते	ऽ	मै	ऽ	या	ऽ
प	प	-	प	-	ध	-	म	-	-	ग	रे	रे	-
जा	ऽ	ऽ	त	ऽ	रू	ऽ	आ	ऽ	ऽ	ये	ऽ	ऽ	ऽ
म	म	-	म	-	म	-	ग	सा	-	रे	-	ग	-
क	र	ऽ	दे	ऽ	ने	ऽ	जै	ऽ	ऽ	जै	ऽ	ऽ	ऽ
ऩि	-	-	सा	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-
का	ऽ	ऽ	रा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

कुल्लुवी लोकगीत

इसमें राग **'तिलंग'** का छायांकन मिलता है।

X					X			
म - म	म म ऽ	म - म	प म -	ग - सा	गगम	पपप	ऽसांऽ	धपप
हो ऽ छे	भाऊआ	तो ऽ ते	रामा ऽ	हो ऽ ऽ	तेराऽ	पिंजरू	ऽपुऽ	राऽना
X								
मग -	म - -	- - -	- - -	- - -				
तेरी ऽ	सौ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ				

राग भूपाली की छाया

लाहुली गीत

सा	धृ	-	सा	रे	-	ग	प	-	ग	रे	-
गा	दी	ऽ	बां	णे	ऽ	बा	णे	ऽ	से	ऽ	ऽ
सा	धृ	-	सा	-	रे	ग	रे	-	सा	-	-
ला	ऽ	ऽ	चा	ऽ	ल	गा	दी	ऽ	हो	ऽ	ऽ

इसके सभी अन्तरे स्थाई की धुन पर ही गाए जाते हैं।

प्रसिद्ध गायक **कुमार गन्धर्व** के शब्दों में—"बचपन से मैं समझता था कि राग बनाए जाते हैं किन्तु अनुभव से इस निर्णय पर पहुंचा हूँ कि राग बनाए नहीं जाते अपितु बनते हैं।" हम लोक धुनों में रागों को छुपा हुआ पाते हैं और इन्हें पकड़कर जब हम प्रकट कर देते हैं तो शास्त्रीय पक्ष सामने आ जाता है।

पद्मश्री ओंकार नाथ ठाकुर जी के अनुसार गान्धारी, सोरठ, भोपाली, मुल्तानी, कन्नड़, पहाड़ी आदि राग अपने नाम आख्या भेद के अनुसार अपने जनपदों और देशों के लोक संगीत का प्रतिनिधित्व करते हैं।

राग पहाड़ी

हिमाचल प्रदेश के विभिन्न स्थानों के लोकगीतों की धुनों को अगर ध्यान से

देखा व परखा जाए तो एक विशेष बात सामने आती है कि बहुत संख्या में गीत जिनकी भाषा और शैली अलग-अलग होते हुए भी एक ही धुन के अन्तर्गत गाए-बजाए जाते हैं। ऐसी बहुत-सी धुनें हिमाचल प्रदेश में हैं किन्तु सबसे कर्ण-प्रिय धुन **पहाड़ी** यहाँ गाई जाती है।

हिमाचल प्रदेश की भौगोलिक स्थिति पहाड़ी होने के कारण यह स्पष्ट हो जाता है कि अनेकों पहाड़ी धुनों के स्वरों का प्रचलन व विकास पहाड़ी की धुनों द्वारा ही उत्पन्न व प्रचारित हुआ। स्वरों के विशेष समुदाय को जिसमें पहाड़ी का आनन्द व्याप्त था, विद्वानों द्वारा गाए-बजाए जाने से इसे राग पहाड़ी के नाम से सम्बोधित किया गया है। उत्तरी भारत में पहाड़ी इलाकों में हिमाचल प्रदेश, काश्मीर व गढ़वाल उत्तरांचल को ही लिया जा सकता है। किन्तु पहाड़ी के स्वरों का जितना प्रयोग हिमाचल प्रदेश के लोकसंगीत में हुआ है उतना काश्मीर व गढ़वाल में नहीं है। अन्य प्रान्तों के लोकगीतों में भी पहाड़ी धुन यदा-कदा देखने को मिल जाती है, किन्तु पहाड़ी धुन का उन प्रान्तों से कोई सम्बन्ध नहीं है केवल लोक गायकों ने सुनकर ही वहां इसका प्रयोग कर लिया होगा।

राग : पहाड़ी की छाया

ध़	ध़	-	सा	-	सा	-	रे	म	-	ध	-	ध	-
ग	ल	ऽ	सु	ऽ	णी	ऽ	जा	ऽ	ऽ	अ	ड़ी	ए	ऽ
प	ध	-	म	-	म	-	रे	-	-	ध	-	ध	-
ग	ल	ऽ	सु	ऽ	णी	ऽ	जा	ऽ	ऽ	तु	ऽ	जो	ऽ
प	ध	-	म	-	म	-	रे	-	-	प	-	प	-
ल	गे	ऽ	मे	ऽ	री	ऽ	सो	ऽ	ऽ	अ	ड़ी	ए	-
प	ध	-	म	-	रे	-	म	-	-	रे	-	रेग	सा
ग	ल	ऽ	सु	ऽ	णी	ऽ	जा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ

सिरमौर तथा सोलन के बाहरी क्षेत्रों में एक लोकगीत प्रचलित है जिसमें प्रेमी-प्रेमिका के बीच मन-मुटाव के क्षणों में प्रेमी द्वारा प्रेमिका को मनाए जाने का वर्णन है। गीत में नायिका का नाम "नीरजू" है। इस गीत में आरोहावरोह तथा चलन देखते हुए यह राग 'भीमपलासी' के साथ बिल्कुल मिलता-जुलता है।

राग : भीमपलासी की छाया

सा	ग	म	पम	प	-	-	गम	गरे	सा	-	-	रे	नि	
बा	ऽ	वा	ऽरि	ए	ऽ	ऽ	धीऽ	एऽ	ऽ	ऽ	ऽ	वां	के	
												(दोबार)		
											ऽ	ऽगे	बीड़ी	
निप	पनि	सां	सां	पनि	सां	सां	नि	धप	म	प-	गम	पनिसां	निधप	
एऽ	ऽऽ	हु	तु	जप	दे	भा	जे	ऽऽ	ऽ	गेऽ	बोलो	मुईऽ	एऽऽ	
ग	म	पनि	प-	गरे	सारे	नि								
ऽ	नी	रुऽ	जुऽ	आ	ऽऽ	वांके								

इसी प्रकार चम्बा के प्रसिद्ध लोकगीत **"जुग जिओ धारा रे ओ गुजरो"** भी राग **'माल कौंस'** के बहुत अधिक समीप है बल्कि अधिकांश स्थानों में मालकौंस की धुन में गाया जाता है (अर्थात् इसमें गन्धार धैवत और निषाद कोमल प्रयुक्त होते हैं) इसे गाते हुए आरोह में शुद्ध धैवत का प्रयोग किया जाता है। जिससे इसकी धुन में थोड़ा-सा अन्तर आ जाता है। इस गीत में मध्यम व तार सप्तक का इतना अधिक प्रभाव है कि इन स्वरों को लम्बा करके न गाया जाए तो इस धुन का आकर्षण तो कम होगा ही किन्तु धुन की मौलिकता भी नष्ट हो जाती है।

राग मालकौंस की छाया

x			2				o			3			
नि	सा	-	म	-	म	-	ग	म	-	ध	-	-	नि
जु	ग	ऽ	जी	ऽ	ओ	ऽ	धा	रा	ऽ	रे	ऽ	ऽ	ओ
सां	नि	-	सां	-	-	-	नि	-	-	सां	-	-	-
गु	ज	ऽ	रो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
नि	-	-	ध	-	म	-	म	ध	-	नि	-	सां	सां
दे	यां	ऽ	मे	ऽ	रे	ऽ	गा	डा	ऽ	जो	ऽ	ऽ	ब
ध	ग	—	म	-	-	-	ग	-	-	सा	-	-	-
से	खा	ऽ	हो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

हिमाचल के लोक गीतों के अध्ययन तथा सांगीतिक विवेचन से यह मालूम होता है कि अधिकांश धुनों के पश्चात् भूपाली और दुर्गा का अधिक प्रयोग है। ये दोनों राग पहाड़ी के अत्यन्त समीप हैं। यह भी एक विशेष कारण है कि हिमाचल के लोकगीतों का भण्डार ऐसी धुनों से भरा पड़ा है जिनमें उपर्युक्त रागों की छाया स्पष्ट दिखलाई पड़ती है।

शास्त्रीय संगीत में "ख्याल" तथा 'ठुमरी' आदि गायन शैलियों को जिस प्रकार गाया जाता है उसी प्रकार से हिमाचली लोक संगीत में **'सुहाग गीत'** 'ढ़िली-नाटि-गीह' तथा अन्य संस्कारों से सम्बंधित गीतों को सुनकर ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे किसी ख्याल का भराव किया जा रहा हो। होरी, छींज तथा झिंझोटियों के गीतों के गाने का ढंग ठुमरी से मिलता-जुलता है।

शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत रागों का गायन-वादन समय निश्चित है। प्रत्येक राग को किसी ऋतु के अनूकूल जानकर तथा रात्रि या दिन के किसी विशेष समय पर गाया-बजाया जाता है। जन्म संस्कार पर भ्याई गीत, विवाह संस्कार पर घोड़ी-सेहरा, सुहाग आदि के गीत लोहड़ी के अवसर पर लोहड़ी गीत, बसन्त के दिनों बसन्त गीत तथा सावन के महीने में "साओण" तथा झूले के गीत गाए जाते हैं।

विहागड़ा गीत प्रातःकाल गाए जाते हैं। शास्त्रीय संगीत में बसन्त बहार तथा मल्हार आदि कई राग विशेष ऋतु से सम्बंधित रहते हैं। इसी कारण इन्हें ऋतु गीत माना जाता है। ठीक इसी प्रकार हिमाचल प्रदेश के लोकगीतों में छींज, झिंझोटी, बुढड़ा, बसन्त, गूग्गा, बारह मासा, त्योहार गीत, फागुन हिंडोला, लौहोल, तीज तथा रोपनी गीत ऋतु गीत हैं। इनका गायन भी ऋतु के अनुकूल होता है।

□

भौगोलिक परिस्थितियों का हिमाचली लोक संगीत पर प्रभाव

डॉ॰ मनोरमा शर्मा

भारत के प्रहरी हिमालय पर्वत के हिमाच्छादित शैल शिखरों एवं उपजाऊ तराइयों में बसा हिमाचल प्रदेश विभिन्न भौगोलिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक प्रभावों के परिणामस्वरूप ही बहुरंगी संस्कृति का दर्पण है। भौगोलिक विविधता के कारण यहां भाषा, लिपि, धर्म, दर्शन, साहित्य, संगीत, कला, वेशभूषा, खानपान व रहन-सहन के विभिन्न आयामों में विविधता मिलती है। यह प्रदेश भारत के उत्तर में सीमान्त प्रदेश है जिसकी उत्तरी सीमा चीन व तिब्बत तथा अन्य सीमाएं जम्मू, काश्मीर, पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश को छूती हैं। इस प्रकार का विविधतापूर्ण प्रान्त भारत में अन्य कोई नहीं है। पर्वतीय क्षेत्रों में यही एक गौरवशाली प्रान्त है जहां इतनी विविधता होने पर भी आपसी सामञ्जस्य तथा सरसता है। प्रशासनिक सुविधा के लिए प्रदेश को बारह जिलों में बांटा गया है प्रदेश की जलवायु की विविधता एवं पहाड़ी जीवन की कठिनाइयों से जूझता हुआ हिमाचली जनमानस अपने इन कष्टों, दुःखों, कठिनाइयों तथा प्राकृतिक विपदाओं को झेलते हुए लोक संगीत के माध्यम से इस विभिन्नता में भी आत्मीयता एवं एकता की भावना से ओतप्रोत होकर ताल और लय पर झूमते हुए अभिव्यक्ति देता है।

भौगोलिक दृष्टि से हिमाचल प्रदेश मूलतः दो क्षेत्रों में बंटा है—अन्य जनपद तथा जनजातीय जनपद इन दोनों क्षेत्रों में बसे लोगों की सामाजिक आस्थाएं, सांस्कृतिक परम्पराएं, व्यावहारिक मूल्य, जैविक आधार, चिन्तन दिशाएं तथा कार्यकलाप अपने मौलिक स्वरूप में निजी विशेषताएं लिये हैं। भौगोलिक स्थिति के अनुसार हिमाचल प्रदेश का यह विभाजन यद्यपि प्रशासनिक दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है परन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से सभी खण्डों की अपनी-अपनी विशेषताएं हैं जिनके कारण इनकी विभिन्नता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। यह प्रभाव प्रदेश के

लोकसंगीत पर भी परिलक्षित होता है। लोकसंगीत की विभिन्न शैलियां हैं जो प्रत्येक भौगोलिक खण्ड में पृथक्-पृथक् हैं। इन शैलियों पर क्षेत्रीय, भौगोलिक तथा शारीरिक अवयवी प्रभाव स्पष्ट झलकते हैं।

सिद्धान्त ग्रंथों के प्रणेता तर्क, विज्ञान और व्यवहार के आधार पर तत्त्व का विवेचन करते हैं, उन्हें किसी और मानव के वचनों को प्रमाणरूप में उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं होती उनका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार और विस्तृत होता है। "भरत" के अनुसार 'लोक' अनेक देशों में विभक्त है उसके वेश, भाषा और आचार-व्यवहार भिन्न हैं। मर्मस्पर्शी दृष्टि सम्पूर्ण लोक पर पड़ती है। जो देखा जाए अर्थात् दर्शन का विषय हो उसे ही लोक कहते हैं।

भूखण्ड को विभक्त करने के लिए अचल सीमा रेखाएं नहीं खींची जा सकतीं तथापि भरत ने एक विभाजन माना है जो भारतीय भूखण्ड के चार भाग करता है। यद्यपि इन चारों दिग्विभागों की प्रवृत्ति या प्रयोग में समानता भी पर्याप्त सीमा तक है तथापि प्रत्येक भाग की कुछ निजी विशेषताएं भी हैं। इन विशेषताओं के कारण प्रकृति के चार प्रकार आवन्तिक, दाक्षिणात्य, पांचाली और औद्रमागधी किए गए। इन चारों प्रवृत्तियों के नामकरण का आधार प्रदेश विशेष है। इन चारों प्रवृत्तियों के अन्तर्गत समस्त लोक का व्यवहार और आचार है। गायन, वादन और नर्तन भी इसी आचार के अन्तर्गत हैं।

आवन्तिकी में अवन्ती, विदिशा, सौराष्ट्र, मालव, सिन्धु, सौवीर,आर्वुदय, दशार्ण, त्रिपुर और मृत्तिकावत् प्रवृत्ति का दर्शन होता है।

अंग, बंग, कलिंग, वत्स, औद्र, मगध, पुण्ड्र, नेपाल, अन्तर्गिरी, बहुर्गिरी, प्लवंगम, मलद, मल्लवर्तक ब्रह्मोत्तर, भार्गव, प्राग्ज्योतिष, पुलिन्द, विदेह और ताम्रलिप्त में औद्रमागधी प्रवृत्ति रहती है। पूर्व दिशा से सम्बद्ध पुराणोक्ता अन्य प्रदेशों की प्रवृत्ति भी यही है।

महेन्द्र, मलय, सहद, मेकल तथा कलपंजर के समीपवर्ती प्रदेश को दक्षिणापथ कहा जाता है। कोसल, तोसल, कलिंग, यवन, खस, द्रविड़, आंध्र, महाराष्ट्र, वैष्ण, वानवासिक अर्थात् वे प्रदेश जो दक्षिण समुद्र और विन्ध्य पर्वत के मध्य में स्थित हैं, में दक्षिणात्य का प्रयोग होता है। पांचाल, शूरसेन, काश्मीर, हस्तिनापुर, वाहीक, शाकल, मद्र, उशीनर इत्यादि जो प्रदेश हिमालय और गंगा के उत्तरवर्ती तट के मध्य में हैं उनमें पांचाल मध्यमा (पांचाली) प्रवृत्ति का दर्शन होता है।

इस विभाजन से सिद्ध होता है कि शैलियों या गीतियों के वर्गीकरण में लोक प्रबल आधार है और यही तथ्य भौगोलिक प्रभावों को परिभाषित करता है। लोक साहित्य में यद्यपि भूगोल सम्बन्धी किसी विषय का सांगोपांग विवेचन तो उपलब्ध नहीं होता तथापि स्थानीय भूगोल के सम्बन्ध में बहुत-सी बातों का पता चलता है।

भौगोलिक परिस्थितियों का लोक साहित्य पर अत्यधिक प्रभाव होता है। यह प्रभाव जहां लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं पर परिलक्षित होता है। वहीं लोकगीतों द्वारा उनकी अभिव्यक्ति होती है। लोकगीतों का साहित्य भी इनसे प्रभावित होता है।

भौगोलिक परिस्थितियों के अन्तर्गत प्राकृतिक सीमाएं, अक्षांश-रेखांश सीमाएं, नदियां, पर्वत, स्थान, नगर, गांव, जलवायु, उत्पादन, रहन-सहन, खानपान, खाद्यपदार्थ, व्यवसाय, उद्योग धंधे, आवागमन के साधन आदि तत्त्व आते हैं। स्थान विशेष की यही भौगोलिक परिस्थितियां वहां के संगीत व संस्कृति से बहुत कुछ सम्बन्ध रखती हैं तथा लोकसंगीत को प्रभावित करती हैं। भौगोलिक परिस्थितियां किसी खंड विशेष के लोकसंगीत के तीन तत्त्वों को प्रभावित करती हैं।

(i) गीत की धुन (ii) लय तथा (iii) लोक वाद्य। भाषा तथा स्थान विशेष भी इन प्रभावों के निर्धारक घटक हैं।

शब्द-योजना

भौगोलिक महत्त्व के स्थानों का लोकगीतों में वर्णन

लोकगीतों में अनेक नदियों, स्थानों, गांवों, नगरों, पर्यटनस्थलों पूजास्थलों, पवित्र तीर्थों, सरोवरों, घाटियों आदि का विवरण प्राप्त होता है। इन गीतों के माध्यम से इनकी स्थिति का पता चलता है। तत्कालीन भूगोल सम्बन्धी बहुत-सी सामग्री उपलब्ध होती है। इनमें अनेक शहरों के नाम उपलब्ध होते हैं जो किसी वीर पुरुष अथवा राजा से सम्बन्धित हैं लेकिन अब वे कालक्रम में आकर अस्तित्व में नहीं हैं अथवा भग्नावशेष रूप में हैं। कुछ ऐसे छोटे-छोटे गांवों के नाम भी मिलते हैं जो अब या तो समय के प्रवाह में लुप्त हो गए हैं अथवा उनका अब पता नहीं चलता।

हिमाचल प्रदेश की अनेक लोकगाथाओं में यथा लोकरामायण, महाभारत, भर्तृहरि, गूगा आदि में इतने अधिक भौगोलिक नामों का उल्लेख हुआ है कि उनके विषय में खोज करने पर एक स्वतन्त्र पुस्तक का कलेवर भर सकता है। इन गाथाओं में भारत के अनेक ऐसे स्थानों का उल्लेख पाया जाता है जो भौगोलिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। यह भी सम्भव है कि जिन स्थानों के नामों का वर्णन उल्लिखित है उनका प्रभाव हिमाचल प्रदेश के लोकसंगीत पर पड़ा हो।

आवश्यकता इस बात की है कि भूगोलवेत्ता विद्वान लोकगाथाओं में वर्णित स्थानों का पता लगाएं।

कुल्लू लोकगीतों में कुल्लू के सौन्दर्यवर्णन के साथ-साथ अनेक स्थलों का वर्णन भी है जिनसे उनकी विशिष्टता का दर्शन होता है

फेर फिरदे हिंउआ रे जोतडू
मौंझे व्यासे री धारा।
ढोल ढौंउसी ढोला बाज़दे
नौचदे ढालपुर शाड़ा।
मणिकर्णा गर्म पाणी
जिऊ छिपला सारा।

अनेक गीतों में **मार्कण्डा, मनाली** आदि स्थानों एवं उनके महत्त्व का वर्णन भी मिलता है।

1. मार्कण्डा रिषि री बोला रिषि री
   देशा न वधकी माया।
2. जाई लैणा अच्छरिए जाई लैणा हो
   तात्तापाणी मार्कण्डा जाई लैणा हो।
3. ऐजे म्हारी मनाली हो
   हवा ठण्डड़ी खाणी हो।
4. म्हारी ऐजे मनाली हो।
   सेऊ पलम खाणा हो।

इसी प्रकार लाहौल के लोकगीतों में भी अनेक स्थानों का वर्णन आता है। **कैलाश, गोज़ोङ्, त्रिलोकनाथ, छोटा शान्सा, माड़ुंगा, केलंग** आदि।

1. हे स्वांगलोता धरती हो
   गो टोक्टी कैलाश गोज़ोङ्. त्रिलोकनाथ
   जलवी ता ईवी हो।
2. भाई साहब जी केलंग सेला।
   केलंग हेन्दु राजधानी।
3. छोटा शान्सा चामका हो
4. भाया जी रेवक पौरी जाणा गमदे
   भाया जी रेवक पौरी जाणा।
5. स्वांगला देश हेन्दु रूठे हो साधिरे
   चंगला, लोसा, गहारी, तोतपा
   इंचो नाड़ो प्यार हेनर शूई हो साधिरे।

इसी प्रकार **चम्बा, मंडी, किन्नौर, महासू, सिरमौर, बिलासपुर, ऊना** आदि क्षेत्रों के लोकगीतों में विभिन्न स्थानों का वर्णन भी प्राप्त होता है उदाहरणार्थ—

1. **दुनिया रा बेईमान दिलडू रे लाणा नी**
2. **फुली करो फुलणू डाली फूलो बेला रे**
   म्हारे जाणा राजगढ़ो के तेता देखणा मेला रे।
3. **गोरी दा मन लगेया चम्बे दीयां धारां।**
4. **चल पांगी जो जाणा**
5. **सिमले नी बसणा सबाठुए नी बसणा**
   बसी लेणा चम्बे जरूर।
6. **बाहर निकलेया भटिया रा चाड़ा।**
7. **ठंडा पाणी चूड़ी चांदणी रा**
   लाणा पाथरु नाला।
8. **निरमण्डा रिए बाहमणिए**
9. **हैट मेरेया ठयोगा चतरा देशा,**
   कौंलरामा चतरा देशा।
10. **नूरपुरे दिए खतरेटिए**
    नूरपुर हरिपुर ठंड़िया छांवां
    बिच बलोचां रा थाणा गोरिए।
11. **कुंजा जाई रहियां नदोंण**
    कुंजा जाई रहियां जमोट
    कुंजा जाई रहियां कलेसर

उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से भौगोलिक स्थानों के वर्णन की एक बानगी प्रस्तुत की गई है। असंख्य गीतों की विभिन्न पंक्तियों में भिन्न-भिन्न स्थानों और उनकी विशेषताओं का वर्णन मिलता है।

भौगोलिक परिस्थितियां

प्राचीनकाल से ही मानव का प्रकृति के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। विभिन्न खंडों में रहने वाले व्यक्तियों को जिस प्रकार का प्राकृतिक वातावरण मिला उसी के अनुसार उनकी बोलचाल, वेशभूषा आचार-व्यवहार तथा लोकसंगीत ढल जाता है। लोक मानस की हर व्यवस्था में लोकगीत जुड़े हैं। किसी भी प्रकार की कैसी भी परिस्थिति हो लोकगायक उन दशाओं के अनुसार ही लोकगीतों की रचना कर

अपनी-अपनी बोलियों में गाते रहते हैं। जनजातीय क्षेत्र दुर्गम एवं बीहड़ हैं। वहां मुख्य व्यवसाय कृषि एवं भेड़-बकरी पालना है। भौगोलिक दृष्टि से देश के अन्य भागों से कटा होने के कारण अन्य भागों में आने-जाने की असुविधा हो जाती है। व्यावसायिक केन्द्रों से सम्पर्क टूट जाने का खतरा भी हर समय बना रहता है। मेहनती होने के बावजूद वे मुश्किल से अपना निर्वाह कर पाते हैं। वर्ष के गर्मी के महीनों में ही ये लोग अपना कृषि एवं व्यवसायिक कार्य करते हैं। सर्दियों का लम्बा समय ये लोग नाच-गा कर व्यतीत करते हैं। इस प्रकार वे ऐसे मौसम की तीव्रता, जीवन की कटुतम तथा कष्टपूर्ण घड़ियों को लोकसंगीत की स्वरमाधुरी में भुला देते हैं। उस्ताद अमजद अली खां के अनुसार—"लोकसंगीत पर मिट्टी, पानी का असर बहुत गहरा होता है। मौसम, त्योहार, प्राकृतिक रंग, दृश्य, सुगन्ध, बारिश आदि का बहुत प्रभाव है। इनके कारण ही किस्म-किस्म के स्वर, ताल आदि की कल्पना आती है। लोकसंगीत नैसर्गिक है। एक लाइन गाने से ही पता चल जाता है कि यह गीत किस प्रदेश विशेष का है।"

ऋतुओं के अनुसार हिमाचली लोकगीतों की एक लम्बी शृंखला है। वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् एवं शिशिर ऋतुओं का वर्णन हिमाचली लोकगीतों में प्रचुर मात्रा में हुआ है। इनके साथ जुड़ी हुई भौगोलिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूम इनका प्रभाव भी यहां के लोकसंगीत पर हुआ है। जहां इन गीतों में विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों का वर्णन हुआ है वहीं इनके माध्यम से जीवनयापन की कठिनाइयों का भी वर्णन है। उदाहरणार्थ—

1. शुकी धारा रे गौरू हो
आमा मोरिए नई चारिदे।
सीनी छीड़ी रा धुआं हो
आमा मेरिए नई संहिदा।
सुकी छौली री रोटी हो।
आमा मेरिए नई खांईदी।
काढ़े खेचौ रे आलू हो
आमा मेरिए नई खौणिदे।

2. गाई सुई तेरे पन्द्रां
घीऊ दैणा बेगे परौणा।
हेतिए बेगे परोणा, हेरे हेतिए बेगे परोणा।
घाटे मुल्खे जल्मा, खरे हौणा खोटे लो रोहणा।
काटिए सभी झंझटा, सुख री ती निद्रा सौणा।

खोटे बी होले कर्मा पाप भी लो सामणे रोहणा।
कदी मुकणा हावड़ा, कदी हौणा ध्याड़ा नछौणा।
आपु आई तू धौरा वे दाची शैटी बौगड़े बौणा।

3. गिरयो रे पाणी रे, केईए शुका राजेया
गिरयो रो पाणी रे घोड़े पीयो हाथियो
नोयणी शणाई रे राजा शुणे पोगिए
मोयली री राणी रे राजा शुणे पोगिए

4. झिक्के भला देश रा बाणी आया हो
तिन्नी भला बाणिए क्या कुछ अन्दा हो
तिन्नी भला बाणिए मोचड़ू अन्दे,
अम्मा भला मेरिए मोचड़ू लई दे
धीए भला याणिए मुल्ल बढ़ड़ा
अम्मा भला मेरिए चाओ बढ़ड़ा।

5. मेरेया ठण्डे भरमौरा जी वो
असी गद्दी भरमौरी जी वो
चिड़ुवे बदलियां भाखां जी वो
गद्दी होये उदासा जी वो।

उपर्युक्त गीतों में कार्य की अधिकता, निर्धनता, अकाल व सूखे की स्थिति आदि का वर्णन अत्यन्त मार्मिकता से हुआ है। पहाड़ी जीवन की कठिन दिनचर्या के प्रति आक्रोश तथा कष्टों का वर्णन भी मिलता है। निम्नलिखित गीतों में यही भाव हैं–

1. ज़ली जाए पहाड़ियां रा देश
अम्मा जी मैं नई बसणा
किलणू कुदालू दिंदे, खाणे जो कचालू दिंदे
दस्सी दिंदे लम्बे-लम्बे खेत।
छल्लीयां दियां रोटियां चप्पा-चप्पा मोटियां
कन्ने देंदे देड़ियां रा साग।

2. ओ पाणी कियां करी भरणा, नूरपुरे दिया घाटिया।
खड़ियां कवालियां बस मेरे पैंदियां, पीड़ लग्गी जली बखिया।

3. पारली जे धारे हो रूग बुगिए, कि थोड़ी भैणे निंमदी होया।
तुझ पिच्छे मेरी प्याहिंया पेयोका
मांजो मुड़ए देखणे दा घाओ।

उक्त गीत में नारी हृदय की पीड़ा का वर्णन है। उसे मायके जाने का चाव है परन्तु कारणवश जा नहीं सकती। वह भरे हृदय से हरी-भरी सुन्दर पहाड़ियों को तथा रुगबुगी की धार को कहती है कि तुम थोड़ा-सा नीचे झुक जाओ ताकि मैं अपना मायका देख सकूं। मेरा मायका तुम्हारे उस पार है मुझे उसे देखने का चाव है। इस प्रकार के कई भाव अन्य गीतों में हैं जहां नदियों के कारण अथवा आवागमन के साधनों के अभाव में आना-जाना कठिन होता है।

ऐसे पहाड़ी प्रदेशों में जहां आजीविका कमाना कठिन है तथा कई परिवारों के पास उसके साधन नहीं हैं तो पुरुष आजीविका हेतु अन्य नगरों में चले जाते थे और फिर लम्बे अर्से के बाद ही अपने देश लौटते थे। इस प्रकार की भौगोलिक परिस्थितियों का वर्णन भी इन लोकगीतों में मिलता है।

उदाहरणार्थ–

1. कंता ओ मत जांदा परदेस
कत्ती लैहंगी पूणियां बट्टी लैहंगी बाण
तुजो रखूं मैं मुखे अग्गे आप कमांगी खेत
कंता ओ मत जांदा परदेस।

2. काली घघरी लयायां हो, काली घघरी लायायां
नौकरी जो छड्डी हुण छोड़े घर आयां
छोड़ घरे आयां फेर कदी वी न जायां
औंदा कोई परलिया सड़के जिंदे
दिल रही-रही मेरा धड़के जिंदे
काली घघरी लयांया

4. अप्पू तां दुर चलया नौकरी-चाकरी
मिंजो फड़ाई दिंदा खुरपा ते दातरी
कम्म करी टुट्टी जांदा लक्क बो
मेरे बांकु देया चाचुआ। हंऊ गलांनी आं सच्च बो–

लोकगीतों पर प्रकृति और जलवायु का विशेष प्रभाव दृष्टिगत होता है। हरे-भरे लहलहाते खेत, उपवन, फूलों-फलों से लदे वृक्ष, खाद्य पदार्थों आदि का विवरण स्थानीय उत्पादन तथा भौगोलिक परिस्थितियों को इन लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यक्ति मिलती है। खाद्यान्नों में धान, माश, गेहूँ, चावल की विभिन्न किस्मों आदि का उल्लेख है। पेड़ों में कीकर, पाजा, मरु, पीपल, चीड़, देवदारू आदि फलों में सेब पलम, आड़ू आदि का वर्णन हिमाचल प्रदेश की वनस्पति तथा पर्यावरण को दर्शाता है। उदाहरणार्थ–

खाद्यान्न

1. लाल चिडिए सेरे न जाणा, सेरे न जाणा, सेरे न जाणा।
   सेरे पकोला गींहू रा दाणा, गेहूं रा दाणा घरै ले आणा।
   सेरे पकोला माशो रा दाणा, माशो रा दाणा घरै ले आणा।
2. कोदरा पुराणा मेरा खान्दा नी जुराणा
   ओ बाघला दी झिंझण मंगाणी भलेया।
   अलबेलुआ हो।
3. जौ पाके बागा दी, पौड़ी गए पीवले केशे।
4. शुए खाई शांगती कागुओ खाओ खनोरा।
5. कुट्टी लोए चिओड़े लाए लोए फाके मामा।
6. डूंगे धारा रे बाथुआ लाल लम्बड़े सिल्ले-रतनिए।
7. धान कुटी बोलो ऊखले मूसले, उड़ो पैणिए कानू।
8. भात लोड़ी ज़ाटू रा खाओ मितरा, भात लोड़ी ज़ाटू रा खाओ मितरा

पेड़

1. फुल्ल-फुल्ली गया लम्मी चीला रा।
2. फुल्ल-फुल्ली गया क्रयाली रे डाले।
3. बई लैणा पिपलू दी टंडियां छांवा
   कन्ने कटण दिन सारा। घिर-घिर आंवदियां मेरे चम्बे दियां धारां
4. फुले डोडणा अच्छरिए फुले डोडणा वे (रीठे का पेड़)
   ऊंदे जाणा क्यारो खे, धान गोडणा वे।
5. फुल्ल-फुल्ली गया लो डाले तूणिए
   ग़म मत करयां छोरिए असां मिलणां ठारा उन्नीयें
6. घोड़लू दड़ांदेया कन्ता तू मेरिया, कि मांजे प्याहियां थेज
   ल्याओ वे ग्वालुओ पाज़े दी छटिया, ये सारी जाऊं-जाऊं घुकाऊं
7. बारहें जे वर्षे कन्त घर आया, बैठया ठंडीयां छांवा
   मरुए दी छांव वे घणी, मेरी जान
   मरुआ ओ पंज पत्तरा।
8. अज पर छोड़या हो साथणी दा साथ
   पीपल दी पींग जो हो।
9. आंगन साडे चम्बे दा बूटा, तेत बैठेया काला काग।
10. मैं मरुए सींजन जाणा नी, मेरा मरुआ लै।
11. झुलदे चीला रे डालू जीणां कांगड़े दा।

फल-फूल

1. पाजा फूलो झूमके, केला नोए गोभे।
   काम लागा दुईचिए, सांदू कोस रे लोभे।
2. खाटे खाणे नी हो जोमिटू मीठे बागो रे केले रतीराम।
3. पारले काडे फूली रोहा ब्रास।
4. बागे तो फूलो मालती आंगणो मेरे सोया।
5. चम्बे दियां धारां की-की बिकदा,
   नीम्बू, नारंगी, अनारा।
6. फूली खौड़का हो मेरी गांगिए, फूली खौड़का हो।
   फूली छिछड़ी हो मेरी गांगिए, फूली छिछड़ी हो।
7. चम्बा बी खिड़ी रिआ वे मरुआ बी खिड़ी रिआ
   मंझ-मंझ खिड़ी रिआ राहिया वे असल गुलाब।

लोकगीतों के साहित्य पर विभिन्न खंडों की प्रकृति, बोल-चाल, रहन-सहन, वेशभूषा तथा बोली का अन्तर भी असर डालता है। उन खंडों में रहने वाले व्यक्तियों को जिस प्रकार का वातावरण मिला उसी के अनुसार उनके प्रत्येक कार्यकलाप में अन्तर आया जिनका प्रभाव लोकगीतों के साहित्य पर हुआ। बोली अपने समझने वाले सीमित क्षेत्र के लोगों में ही प्रभाव उत्पन्न कर पाती है। वास्तव में लोकगीतों की आडम्बरहीन शब्द योजना, अपने सादे जीवन के अनुरूप सीधे-सादे ढंग से अपने मनोभावों को व्यक्त कर देना आदि कुछ ऐसी विशेषताएं हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। अतः इन तत्त्वों का विवेचन करने से ज्ञात होता है कि हिमाचल प्रदेश की भौगोलिक परिस्थितियों का यहां के लोकगीतों पर सशक्त प्रभाव है।

भौगोलिक परिस्थितियों का लोकधुनों पर प्रभाव

लोकसंगीत की धुनों का आकर्षण अपनी सरलता एवं स्वाभाविकता के कारण इतना प्रभावोत्पादक होता है कि उसको सुनते-सुनते मानव उसमें तन्मय हो जाता है तथा उसकी भावनाओं का असीम सागर स्वरों के कम्पन के साथ हिलोरें लेने लगता है।

लोकगीतों की धुनों पर भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव बहुत स्पष्ट दिखाई पड़ता है। मैदानी भाग के गीत लम्बी धुनों के मिलते हैं तथा इनमें स्वर-प्रस्तार अधिक है साथ ही खुला वातावरण और मैदान होने के कारण यहां के लोकसंगीत की स्वर परिधि विस्तृत है।

इसके विपरीत पहाड़ी प्रदेश में घाटियां हैं जो गीतों से गूंजती हैं अतएव यहां ऊंचे स्वर की गायकी मिलेगी। अधिकांश लोकगीत सप्तक के पूर्वांग में ही गाए जाते हैं,

केवल उन्हें प्रभावशाली और स्पष्ट सुनाई देने योग्य बनाने के लिए ऊंचे स्वर का आधार स्वर मान लिया जाता है। उदाहरणतया–(स्वरलिपि नं. 2)

आयां बो ललारिया,
बौहयां वो पछारिया
बौहणे जो दिंदी तिज्जो पंद
मैं तेरी सौं बौहणे जो दिंदी तिज्जो पंद
पंद वो ललारिया हो ऽ ऽ ऽ

इन गीतों की स्वर परिधि सीमित होती हैं। दो-तीन या चार स्वरों में ही सम्पूर्ण गीत गाया जाता है। एक बात और उभर कर आती है कि इन गीतों में केवल स्थायी भाग ही रहता है और सम्पूर्ण गीत उसी धुन में गाया जाता है। जैसे कुल्लू का प्रसिद्ध गीत–

भावा रुपिए ओ, खेलादे ऐजे मेरी भावा रुपिए।
भावा रुपिए ओ, जांगलू शौले मेरी भावा रुपिए। (स्वरलिपि नं.3)

यह तत्त्व प्रदेश के सभी खण्डों के लोकगीतों में पाया जाता है। कुछ ऐसे गीत हैं जिनमें प्रथम पंक्तियों की धुन अलग होती है तथा अन्य पंक्तियों को भिन्न धुन में गाया जाता है। उदाहरण–

मंडी लागीराओ म्हारे मेला शिवदासिए
आई लोड़ी मेले जो जरूर तेरी सौं।
तेरी तेरी खातिर खाणा बणाया
खाणा खाई कन्ने चली जायां तेरी सौं ॥

इस गीत की प्रथम दो पंक्तियों की धुन अगली दो पंक्तियों की धुन से भिन्न है। इन्हें स्थायी तथा अन्तरे की संज्ञाएं दी जा सकती हैं। हिमाचली लोकधुनों का एक सार्वभौमिक तथ्य यह भी है कि एक ही धुन में कई गीत गाए जा सकते हैं। यथा–

वर पक्ष का गीत

दैन्तु दा पटड़ा ढलाओ मामा जी
भाणजा न्हौंण संजोया।

वधू पक्ष का गीत

इतने कर दुखड़े कटे मामा जी,
जितने पिपला रे पत्ते।

हिमाचली लोकगीतों की रागात्मकता एवं सरसता का आधार 'टेक' है। इन गीतों की धुनों में ओ-आ, ई-ए आदि स्वर टेक रूप में प्रचलित मिलते हैं। टेक सार्थक एवं निरर्थक दोनों पद रूपों में मिलती है। गंगी गीतों में छोरुआ, छोरिए, गंगिए, जानी मेरिए आदि सार्थक पद-रूप तथा ओ, आ, हाय बो, बे आदि निरर्थक पद भी प्रयुक्त होते हैं।

दिन छिपदे तारे लगदे
मुंह खोल के हस छोरुआ
तेरे दांदडु प्यारे लगदे।
पार रिड़िया ते पियु बोलीरा ऽऽ
सामणे तू आयां गंगिए
मेरा देखणे जो जिऊ बोलीरा ऽऽ (स्वरलिपि नं. 6)

इसी प्रकार अन्य गायन शैलियों में भी इन टेक पदों का प्रयोग हुआ है। 'लामण' गीतों में नैणी, रली, दशी, झूरी, संगिया आदि भोरू, ब्राह्मण, मेरे लोभिया, मेरी झूरिए, गोरिए, मितरा आदि संस्कार गीतों में मेरे श्याम, हे, वे, ए आदि टेक पदों का प्रयोग विभिन्न शैलियों की गायन विशिष्टता पर भौगोलिक प्रभाव दर्शाता है। काव्यात्मक दृष्टि से टेक पदों का महत्त्व भले ही न हो परन्तु खंड विशेष के लोकसंगीत का ज्ञान इन टेक पदों से हो जाता है। सार्थक टेक एक पंक्ति की भी होती है, कभी कई पंक्तियों की। अधिकांश लोकगीतों की टेक में पहले चरण के बोलों को दोहराया जाता है और कभी एक ही धुन में गाए जाते हैं। निरर्थक टेक पद-रूपों में ओ, हो, वे आदि स्वरों को गीत के अन्तिम भाग में अवग्रह या विकर्षण द्वारा बढ़ा दिया जाता है। इनके प्रचुर उदाहरण दिए जा सकते हैं। उदाहरण—

1. **चम्बा वार कि नदिया पार, हा हो लाल रंगिए,**
   ओ राजा घोड़े दा सवार, हा हो लाल रंगिए।
2. **घिर-घिर आंवदियां ओ मेरे चम्बे दियां,**
   ओ मेरे चम्बे दिया, ओ मेरे चम्बे दियां धारां।
3. **धुडू नच्चया जटा जो खलारी हो,**
   धुडू नच्चया जटा जो खलारी हो।
   नच्चे धुडुआ बजे तेरे बाजे हो ॥ आदि.....
4. **गुड़क चमक भाउआ मेघा हो,**
   राणी चम्बयाली रे देशा हो,
5. **लोटा घीउवारा हो मेरी कमला,**
   लोटा घीउवारा हो ऽऽऽ।

लोकसंगीत की व्यापकता प्रदेश की भौगोलिक सीमाओं को पार कर निकटवर्ती प्रदेशों के संगीत से मेल करती है। हिमाचल प्रदेश का लोकसंगीत अपने पड़ोसी प्रदेशों पंजाब, हरियाणा और जम्मू-काश्मीर के लोकसंगीत से मेल खाता है और धुनों तथा स्वरों से आदान-प्रदान करता है। टप्पा, लामण, गंगी, बालो, गम्भरी आदि धुनें पंजाब के माहिया, टप्पे आदि के समान हैं। (देखिए स्वरलिपि-6) इसी प्रकार नृत्य शैलियों पर भी पंजाब का प्रभाव है, इन गीतों की धुनें पंजाब के गिद्दा गीतों के समान ही हैं। कांगड़ा के संस्कार गीतों तथा पर्वो त्योहारों पर गाए जाने वाले गीतों की धुनों पर भी भौगोलिक प्रभाव परिलक्षित होता है। उदाहरण—

विदाई गीत—

1. तेरे महलां दे बिच-बिच वे।
बाबुल मेरा डोला अड़ेया।
2. साडा चिड़ियां दा चम्बा वे ।
बाबुल असां उड़ी वे जाणा।

सुहाग गीत

बेटी चनण ओ ओहले
ओहले कैं खड़ी
मैं तां खड़ी थी बाबुल जी दे कोल,
बाबुल वर टोल्ऐओ।

समीपवर्ती प्रान्तीय धुनों का प्रभाव चम्बा तथा काँगड़ा के गीतों पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है अथवा हिमाचली लोकधुनों का प्रभाव अन्य प्रांतीय धुनों पर है—यह शोध का विषय है; परन्तु लोकप्रिय लोकगाथाएं कुंजु-चंचलो, बांकु देया चाचुआ, फुलमू-रांझू, मियां मनेजरा आदि गीत बोली के परिवर्तन से कुछ घटा-बढ़ाकर एक ही धुन में जम्मू, काँगड़ा तथा चम्बा तथा अन्य भागों में गाए जाते हैं। (देखिए स्वरलिपि नं.-4)

इसी प्रकार चम्बा का गीत मंडी में काँगड़ा में, महासू के गीत सिरमौर में थोड़े बहुत अन्तर से गाए जाते हैं। काश्मीर की (लद्दाखी) धुनों का लाहौल-स्पिति तथा किन्नौर की धुनों से मेल दिखता है। इसी प्रकार काँगड़ा के जनजातीय क्षेत्रों तथा कुल्लू के सीमावर्ती क्षेत्रों की धुनें लाहौल की धुनों से मिलती-जुलती हैं। धुनों पर यह प्रभाव भौगोलिक परिस्थितियों के कारण ही है। मंडी के एक गीत की धुन पर राजस्थानी धुन का अनुकरण भी प्रतीत हुआ है।

लय

लोकगीत अपने आप में धुन व लय प्रधान होते हैं। हिमाचल प्रदेश का

लोकसंगीत भी लय प्रधान है तथापि प्रत्येक खंड के लोकसंगीत की लय पर भी भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव है। ऊंचे पर्वतीय खंडों के गीतों तथा नृत्यों की लय विलम्बित है। मध्य लय में भी इनका प्रस्तुतीकरण होता है। कुल्लू के ऊपरी इलाके, लाहौल-स्पिति, किन्नौर आदि के नृत्य विलम्बित गीत से आरम्भ होते हैं। परन्तु अन्त में द्रुत लय में समाप्ति होती है। लय पर यह प्रभाव भौगोलिक कारणों से ही है। बिलासपुर, काँगड़ा, हमीरपुर, ऊना, सिरमौर, महासू के मैदानी भागों में द्रुत लय के गीत तथा नृत्यों का प्रभुत्व है। गिद्दा, चन्द्रावली, नाटी, छिंज, लुड्डी, आदि नृत्य द्रुत लय प्रधान हैं। बिलासपुर तथा मंडी की नृत्य शैलियों के लय-प्रयोग में मैदानी भागों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। लोकगीतों की गायन शैलियों में भी लय का प्रयोग भौगोलिक परिस्थितियों को दर्शाता है। संस्कार गीतों में विलम्बित लय, सुकरात, मोहणा, गंगी, लामण, झूरी तथा नाटी गीतों में विभिन्न लय प्रयोग इनके उदाहरण हैं।

गायन शैली

हिमाचल प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों की पृथक्-पृथक् गायन शैलियां हैं। इन शैलियों पर क्षेत्रीय, भौगोलिक तथा शारीरिक अवयवी प्रभाव स्पष्ट झलकते हैं। शरीर रचना विज्ञान की दृष्टि से मनुष्य के शारीरिक अवयवों पर भौगोलिक प्रभाव होते हैं मुखाकृति, कण्ठधर्म, दंतपंक्ति, नासिका, होंठ आदि की बनावट गायन को प्रभावित करती है। कण्ठधर्म भौगोलिक परिस्थितियों से अत्यधिक प्रभावित होता है। निचले पहाड़ी तथा मैदानी क्षेत्रों में मन्द्र तथा मध्य स्वर सीमा मिलेगी जबकि ऊंचे पहाड़ी क्षेत्रों में ऊंचे तार सप्तक की स्वर सीमा का आभास होता है। इसी प्रकार शरीर, हाथ तथा देहयष्टि का वादन क्रियाओं पर प्रभाव होता है। शरीर के अवयवों की रचनाधर्मिता नृत्य को प्रभावित करती है। अतः इनका प्रभाव हिमाचल प्रदेश के लोकसंगीत पर भी परिलक्षित होता है। लोकगीत प्रायः समवेत स्वर में गाए जाते हैं जिनसे उनके अकेले गाने से कहीं अधिक सामूहिक ढंग से गाने के महत्त्व का पता चलता है। लोकगायक अथवा गायिकाएं इच्छानुसार शब्द, अक्षर, मात्रा अथवा वाक्य आदि घटा-बढ़ाकर गाते हैं। इनमें लघु, गुरु का स्वरूप मुखमुद्रा के आधार पर गायक द्वारा परिवर्तित होता रहता है।

गायन शैलियों में बोली व स्थानीय प्रभाव के कारण भाषा व गायन शैली में अन्तर आ जाता है। उदाहरणतया संस्कार गीत हिमाचल प्रदेश के सभी क्षेत्रों में गाए जाते हैं। जैसे-जैसे जो रस्म की जाती है उसके अनुरूप ये गीत गाए जाते हैं। लोकमानस यथासमय इन्हें अवसरानुकूल रचता रहता है और अनेक छोटे पर्वों त्योहारों पर ये गीत पारम्परिक रीति से गाए जाते हैं।

गंगी, बालो, झूरी आदि हिमाचल प्रदेश की लोकप्रिय गायन शैलियां हैं। इनकी धुनों पर भौगोलिक प्रभाव स्पष्ट झलकता है। किन्नौरी, लाहुली तथा कुल्लवी, महासवी तथा सिरमौरी गायन शैलियों की अपनी ही विशिष्टताएं हैं जो उनकी धुन, लय स्वरप्रयोग तथा प्रस्तुतीकरण के कारण अलग पहचान बनाए हुए हैं। इन सभी शैलियों की रागात्मकता हृदयस्पर्शी है जो श्रोताओं की आन्तरिक भावनाओं को आन्दोलित करती हुई भावस्थल का वास्तविक रूप प्रस्तुत करती है।

नृत्य शैलियां

हिमाचल प्रदेश के सभी भागों में लोक-नृत्य प्रचलित हैं। ये नृत्य आनुष्ठानिक तथा मनोरंजन प्रधान हैं और परम्परागत रूप से प्रदेश के विभिन्न भागों की विशिष्टताओं के साथ प्रचलित हैं। ये नृत्य पर्वतीय प्रदेश के अभावग्रस्त, कटु जीवन, कष्टसाध्य व श्रम की एकरसता को तोड़कर नई चेतना एवं उल्लास भर देते हैं। विभिन्न पर्वों एवं त्योहारों पर नृत्यों का आयोजन किया जाता है। हिमाचल प्रदेश के विभिन्न जनपदों में नृत्यों की अपनी परम्परा है। यहां मुख्यतः सामूहिक नृत्यों का ही चलन है। कहीं पुरुषों व महिलाओं के सामूहिक नृत्यों की परम्परा है तो कहीं केवल महिलाओं व केवल पुरुषों के नृत्य ही प्रचलित हैं।

नाटी नृत्य दोनों ही प्रकार का है। इसमें पुरुष अथवा केवल महिलाएं या फिर पुरुष और महिलाएं सामूहिक रूप से भाग लेते हैं। ठोडा नृत्य पुरुषों का नृत्य है। इसी प्रकार किन्नौर क्षेत्र के नृत्य पुरुष तथा महिला प्रधान नृत्य हैं। इन नृत्यों की शैली भौगोलिक परिस्थितियों से प्रभावित है। बर्फ के दिनों में घर के अन्दर नृत्यों का आयोजन होता है। ये नृत्य विलम्बित गति के तथा छोटे कदमों वाले होते हैं जबकि मैदानी भागों में यथा सिरमौर के नृत्य खुले प्रांगण में किए जाते हैं जिनमें बांहें फैलाकर, घूम-घूमकर अथवा उठते-बैठते हुए विभिन्न मुद्राओं में मध्य व द्रुत लय में इन नृत्यों का प्रस्तुतीकरण होता है। प्रमुख नृत्य शैलियों में नाटी (कुल्लवी, महासवी, सिरमौरी), ठोडा, गिद्दा, माला नृत्य, घुरई, छम्म, लामा नृत्य, लुड्डी, स्वांग, रास, हरिण, द्रौड़ी, पडुवा, मंदलु, चन्द्रावली, गूगा नृत्य, छिंज, नानू विनायक (झमाकड़ा) आदि प्रचलित हैं। ये शैलियां भौगोलिक परिस्थितियों से प्रभावित होने के कारण अपनी लय तथा मुद्राओं के कारण स्पष्ट रूप से विभिन्न क्षेत्रों की अलग पहचान प्रतिबिम्बित करती हैं।

वाद्य

हिमाचल प्रदेश के लोकसंगीत में लोकवाद्यों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। लोकवाद्यों से अभिप्राय ऐसे वाद्य यन्त्रों से है जो परम्परा से हिमाचल प्रदेश के लोकसंगीत में

प्रयुक्त होते आ रहे हैं। जिनका निर्माण भी स्थानीय वस्तुओं से स्थानीय कलाकारों द्वारा होता रहा है। इन वाद्यों की निर्माण कला तथा निर्माण सामग्री का अध्ययन करने पर वाद्यों के विभिन्न रूप उपलब्ध हुए हैं जिन पर भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव परिलक्षित होता है। ताल वाद्यों में (अवनद्ध वाद्य) ढ़ोल, ढोलकू, ढोलकी, नगारा, दामामा, दमामट्टू, गुज्जू, हुड़क, धौंसा, टमक, डफ, ड़फाल, आदि प्रमुख हैं। विभिन्न क्षेत्रों में इनमें प्रयुक्त लकड़ी व चमड़े की किस्म खंड विशेष में प्राप्त सामग्री के आधार पर है। इनकी आकृति, बनावट तथा आकार-प्रकार में भौगोलिक भेद स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं।

प्रदेश के वाद्य अपने लौकिक तत्त्व तथा मौलिक रूप लिये हुए हैं। इन वाद्यों को बजाने की शैली भी अपनी-अपनी क्षेत्रीय विशेषताओं को प्रदर्शित करती है। क्षेत्रीय लोकगीतों तथा लोकनृत्यों के संगीत के अनुरूप ताल इन तालवाद्यों पर बजाए जाते हैं।

झांझ, मंजीरा, खड़ताल, चिमटा, घंटा, घड़ियाल, घुंघरू आदि घन वाद्य हिमाचल प्रदेश के लोक संगीत में प्रचलित हैं।

सुषिर वाद्यों में रणसिंगा, करनाल, तुरही, बांसुरी, शहनाई आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त लाहौल-स्पिति, महासू तथा किन्नौर में कुछ पुराने वाद्यों का भी प्रचलन है। तन्त्री वाद्यों धुतारी में या किन्दरी जैसे वाद्य भी हैं। परन्तु इनका प्रचलन गौण ही है। कभी-कभी काँगड़ा क्षेत्र में गूगा पीर की गाथाएं गाने वाले जोगी धन्तारा बजाते हुए दृष्टिगत हो जाते हैं।

इन सभी वाद्यों पर भौगोलिक एवं क्षेत्रीय प्रभाव हैं जिनके कारण इनकी निर्माण कला, आकार-प्रकार, वादन शैली और निर्माण सामग्री में भिन्नता है।

लोकवाद्यों पर सीमावर्ती क्षेत्रों का प्रभाव है। ऊना, हमीरपुर, काँगड़ा तथा बिलासपुर के वाद्यों पर सीमावर्ती क्षेत्रों का प्रभाव है। यहां ढोलकी तथा डफ, झांझ, मंजीरा का प्रयोग पंजाबी वादन शैली के अनुरूप किया जाता है। लोकसंगीत स्वर प्रधान न होकर ताल और लय प्रधान है। सर्वेक्षण से यह ज्ञात हुआ है कि हिमाचल प्रदेश के लोकसंगीत में कहरवा, दादरा, चांचर जैसे लघु ताल ही मूल ताल हैं। इनके अतिरिक्त झपताल, दीपचंदी और तीनताल जैसे ताल भी प्रयुक्त होते हैं। लोकसंगीत में प्रयुक्त तालों का वजन, मात्रा, बांट, बोल, लय और चाल अपनी विशिष्टता लिये हुए हैं। लोकसंगीत के इन ताल वाद्य वादकों को वस्तुतः अक्षर ज्ञान है न होने पर भी ताल के बोल कंठस्थ हैं। धा, ना, धिन, तिरकिट सदृश बोलों की कल्पना भी उन्होंने अपनी परंपरा में प्रचलित रखी है। और अपना वाद्य विविध लयों में अत्यन्त श्रेष्ठ रीति से निपुणतापूर्वक बजाते हैं। ये वादक सहज़ता में ही ऐसी लय संगतियों का सृजन करते हैं कि अच्छे-अच्छे पखावज वादकों तथा तबला वादकों को

आश्चर्यचकित कर देते हैं। कुछ लोक वादक कलाकार ऐसे भी मिलते हैं जो तबले के बाज के सदृश ही ढोलक या नगारा और दमामा के सहयोग से पूर्ण विस्तार और चमत्कार दिखाते हैं। विशिष्ट कलात्मक प्रयोग विशेष व्यावसायिक लोकवादकों द्वारा कुछ परम्परागत आयोजनों पर ही होता है।

हिमाचल प्रदेश का लोकसंगीत भौगोलिक परिस्थितियों से अत्यधिक प्रभावित है। भौगोलिक विविधता होने पर भी यहां के लोकसंगीत में मौलिकता आपसी सामंजस्य तथा सरसता है।

स्वरलिपियां

विदाई गीत

साडा चिड़ियां दा चम्बा वे
बाबुल असां उड़दे जाणा
साडी लम्बी उडारी वे
बाबुल केहड़े देस जाणा।
तेरेयां महलां दे विच-विच वे
बाबुल मेरा डोला अड़या
इक इट्ट पुटा देवां
धीए घर जा अपणे।
तेरेयां महलां दे विच विच वे
बाबल गुड्डियां कौण खेड्डे
मेरियां खेडन पोतरियां
धीए घर जा अपणे।

स्वरलिपि (तालरहित)

सा	सा	साऽसा	रेरे	रेम	मरे	रेम	-म	ध	पध	मप
सा	ऽ	डाऽ	चिड़ि	यांऽ	ऽदा	चऽ	ऽम्बा	ऽ	वेऽ	ऽऽ

मरे	रेम	म-	पध	पध	पम	-म	-रे	-	सा	-
बाऽ	बुल	अऽ	सांऽ	उड	देऽ	ऽजा	ऽणा	ऽ	ऽ	ऽ

(शेष अगले पृष्ठ पर)

(पिछले पृष्ठ का शेष)

ममु म मसां सां सां सारें सुं - नि- निध निऽ निसा ध - प म

साऽ डी लंऽ बी उ डाऽ ऽरी ऽ ऽऽ बेऽ ऽऽ ऽऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

म- मप धऽ नि निसां नि - ध - प प म - म - -

बाऽ बुल केऽ ड़े ऽ ऽ दे ऽ स ऽ जा ऽ णा ऽ ऽ ऽ -

सम्पूर्ण गीत इसी धुन में गाया जाता है। यह गीत हिमाचल प्रदेश के काँगड़ा, बिलासपुर तथा मंडी में भी इसी धुन में थोड़े-बहुत अन्तर के साथ गाया जाता है। भाषा में भी क्षेत्र विशेष की भाषा में अन्तर होने से शब्दों में परिवर्तन हो जाता है। जैसे—

"इक इट्ट पुटा देवां" के स्थान पर "इक इट्ट पुटा दिंगा" आदि शब्दों का प्रयोग कर लिया जाता है।

लाल चिड़िए

लाल चिड़िये सेरी न जाणा,
सेरी न जाणा, सेरी न जाणा।
सेरी पाकोला गीहूं रा दाणा,
गीहूं रा दाणा, गींहू रा दाणा।
गीहूं रा दाणा घौरे ले आणा,
घौरा ले आणा, घौरे ले आणा।
गीहूं रा दाणा जादा नी खाणा,
जादा नी खाणा, जादा नी खाणा।
तेरे शेंटुआ उफरी जाणा, उफरी जाणा, उफरी जाणा।
लाल चिड़िये सेरी न जाणा, सेरी न जाणा, सेरी न जाणा।
सेरी पकोला माशो रा दाणा, माशो रा दाणा, माशो रा दाणा।
माशो रा दाणा घौरे ले आणा, घौरे ले आणा, घौरे ले आणा।
माशो रा दाणा जादा नी खाणा, जादा नी खाणा, जादा नी खाणा।
तेरे शेंटुआ उंफरी जाणा, उफरी जाणा, उफरी जाणा।
लाल चिड़िये सेरी नी जाणा, सेरी नी जाणा, सेरी नी जाणा।

स्वरलिपि

प़	नि़	स	ऽरे	ग	रे	रे	स	स	रे	ग	ऽरे
ला	ऽल	चि	ऽडु	ए	ऽ	से	री	नी	जा	णा	ऽऽ
रे	स	स	ऽ	रे	ग	रे	स	स	स	स	-
से	री	नी	ऽ	जा	ना	से	री	ना	जा	णा	ऽ

सम्पूर्ण गीत एक ही धुन में गाया जाता है। प्रभावशाली बनाने के लिए ऊंचे स्वर को आधार स्वर मानकर गायक गाते हैं।

3. भावा रुपिए

भावा रुपिए ओ खेलादी एजै, मेरी भावा रुपिए।
भावा रुपिए ओ कौखे रे खौले, मेरी भावा रुपिए।
भावा रुपिए ओ पड़े रे खौले, मेरी भावा रुपिए।
भावा रुपिए ओ जांगालू शौले, मेरी भावा रुपिए।
भावा रुपिए ओ छौशियो देणू, मेरी भावा रुपिए।
भावा रुपिए ओ किजी रे तेले, मेरी भावा रुपिए।
भावा रुपिए ओ गूटी रे तेले, मेरी भावा रुपिए।

स्वरलिपि

प़	प़	प़	नि स	रे	-	प	रे
भा	वा	रु	पि ऽ	ए	ऽ	ओ	पि ऽ
प़	प़	प़	नि़ स	प़	प़	प़	नि़ स
भा	वा	रु	पि ऽ	भा	वा	रु	पि ऽ

गरे	स	-	रे	रे	गरे	स	सप़
खेऽ	ला	ऽ	दी	ए	जैऽ	मे	री ऽ

शेष चरण इसी धुन में।

बांकु देया चाचुआ (काँगड़ा)

हऊं गलानीआं सच्चं बो
मेरे बांकु देया चाचुआ
मेकी बी लई चल्ल कच्छ बो
मेरे बंकु देया चाचुआ।
अप्पू तां चल्ला मुआ नौकरी तां चाकरी
मेकी तां देई गया खुरपा तां दातरी
कम्म करी टुट्टी जांदा लक्क बो
मेरे बांकु देया चाचुआ।
मेरे बंकु देया चाचुआ।

स्वरलिपि

ग	म	-	ग	ग	म	ग	रे	ग	ध	प	म	म	-	ग	रे
ह	ऊं	ऽ	ग	ला	ऽ	नि	यां	स	च्च	बो	ऽ	ऽ	ऽ	मो	रे

रेस	रे	रे	ग	रेस	स	स	-	
बां	कु	दे	या	चां	घु	आ	ऽ	अगली पंक्ति इसी धुन में

ग	ग	प	प	ध	ध	ध	-	प	प	ध	प	ध	प	म	ग
अ	प्पू	तां	घ	ल्ल	मु	आ	ऽ	नौ	क	री	ऽ	घा	का	री	ऽ

ग	ग	प	प	ध	ध	ध	-	प	प	ध	प	ध	प	म	ग
सा	कां	तां	दे	ई	ग	आ	ऽ	खु	र	पा	ते	दा	त	री	ऽ

ग	ग	ग	ग	ग	म	ग	रे	ग	ध	प	-	म	-	ग	रे
क	म्म	क	री	टु	ट्टी	जां	दा	ल	क्क	बो		ऽ	ऽ	मे	रे

स	रे	रे	ग	रे	स	स	-	
बां	कु	दे	या	घा	घु	आ	ऽ	शेष गीत इन्हीं धुनों में

बालो (निबद्ध)

चिट्टे चावला री तिन्न कणियां
तू तां हुन्दी मुइए इक बालो
गल्ला करदी लो तिन्न जणियां।
फुल-फुल्लया डाले तुन्हिए
धीरे रैह्या धरागे बालो
असां औवणा ठारे उन्हिए
फुल्ल-फुल्ल गईरा बानि-ओ बाने
बाई पर निहालेयां बालो
तू तां आई जायां पाणी रे बहाने।

स्वरलिपि

स	स	रे	रे	रे	स	स	स	रे	म	पध	-	ध	प
चि	ट्टे	ऽ	चा	व	ला	री	ति	न्न	ऽ	कऽ	ऽ	णि	ऽ

नि	-	-	-	-	-	-	ध	प	म	रे	म	पध	नि
यां	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	तू	तां	ऽ	हुं	दी	मुई	ए

नि	ध	प	ध	प	म-	-	गरे	स	-	-	-	-	-
ऽ	ऽ	इ	क	ऽ	बाऽ	ऽ	लोऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

स	स	रे	रे	रे	स	स	स	रे	म	पध	-	ध	प
ग	ल्लां	क	र	दी	ऽ	लो	ति	न्न	ऽ	जऽ	ऽ	णि	यां

पंजाब में भी 'बालो' इसी धुन में गाया जाता है।

6. गंगी

पार रिड़िया ते पियु बोली रा
सामणे तू आयां गंगिए
मेरा देखणे जो जिऊ बोली रा

-	-	स	स	-	सरे	-म	-म	पध	पध	-प	-म	पध	-	-	-
ऽ	ऽ	पा	रे	ऽ	रिड़ि	ऽया	ऽते	पिऽ	युऽ	ऽबो	ऽली	राऽ	ऽ	ऽ	ऽ
-	पप	-ध	-प	प	प	-ध	-प	म	-ग	रे	स	-	सरे	-म	-म
ऽ	साम	ऽणे	ऽतु	आ	या	ऽगं	ऽगि	ये	ऽऽ	मे	रा	ऽ	देख	ऽणे	ऽजो
मऽ	पध	-प	-म	म	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-
जीऽ	युऽ	ऽबो	ऽली	रा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

(पंजाबी 'टप्पे' जिन्हें माहिया भी कहा जाता है। गंगी की उपर्युक्त धुन में ही गाए जाते हैं।) उदाहरणार्थ—

बागे विच आ माहियां
लोकां दियां रोण अखियां
साडा रोंदा ए दिल माहियां।

इस प्रकार के तीन पंक्तियों वाले पद उपर्युक्त धुन में गाए जाते हैं। गंगी, बालो और माहिया (पंजाबी) की अन्य धुनें भी प्रचलित हैं जो अनिबद्ध और निबद्ध रूपों में थोड़े-बहुत अन्तर से गाई जाती हैं। इन धुनों के तुलनात्मक अध्ययन से ही इसकी पुष्टि हो सकती है।

□

हिमाचल प्रदेश के लोकसंगीत में रस योजना

के० एल० सहगल

सामान्य व्यवहार में 'रस' शब्द का प्रयोग 'सार' या 'निचोड़' के अर्थ में किया जाता है। परन्तु वैदिक काल से ही इस शब्द का प्रयोग 'आनन्द' के अर्थ में भी किया जाता रहा है और क्योंकि, ब्रह्म को चरम आनन्द-रूप माना गया है अतः 'रसो वै सः' (तै. उ., 217) के रूप में परम तत्त्व को 'रस' कहा गया है। इसीलिए साहित्य शास्त्र में जब रसानुभूति के स्वरूप का विवेचन किया गया, तब उसे 'ब्रह्मानंद सहोदर' कहा गया। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि अभिधार्थ की दृष्टि से रस सामान्य जीवन, काव्य जगत् एवम् आध्यात्मिक जगत् में सार तत्त्व का बोधक है तो साथ-साथ इसके लक्षणार्थ की दृष्टि से आस्वाद की उस अनुभूति का बोधक भी है, जिसे 'आनंद' शब्द से व्यंजित किया जाता रहा है।

दैनिक व्यवहार में 'रस' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। जब कोई गन्ने के रस अथवा रसगुल्ले के रस की चर्चा करता है तो वह एक विशेष तरल पदार्थ की ओर संकेत करता है। वाणी का रस मधुरता का द्योतक है। कभी-कभी यह 'रस' नेत्रों से छलककर प्रेम का स्वरूप धारण करता है तो कभी इस रस को 'गोरस' कह कर उससे इन्द्रियसुख का बोध कराया जाता है और कभी गोरस से दूध का अर्थ ग्रहण किया जाता है। कभी उसे शब्द, रूप, गन्ध, स्पर्शादि गुणों के साथ प्रतिष्ठित किया जाता है और कभी 'रसरंग' 'रसकेलि' या 'रसरीति' कहकर उससे रतिभाव अभिव्यंजित किया जाता है। कभी 'रस' जब रूपरस हो जाता है तो सौन्दर्य की विशेष चमत्कारक तरलता का विचार उसके साथ जुड़ जाता है। व्याकरण के आधार पर रस की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की गई है।

सरसते इति रसः अर्थात् जो बहे वही रस है (यहाँ रस में द्रवत्व और बहने का गुण माना गया है)।

रस्यते इति रसः अर्थात् जो आस्वादित किया जाए, वही रस है।

आचार्य आनन्दवर्धन के विचार से साहित्य में 'रस' की अवतारणा करने वाले प्रथम कवि वाल्मीकि हैं। आदि कवि के शोक की श्लोकमयी परिणति में ही रस के तत्त्व निहित हैं। श्रव्य-काव्य से रस का सबंध उन्हीं के समय से स्वीकृत माना जा सकता है।

भरत मुनि ने 'नाट्य' को पाँचवां वेद कहा है। उसकी सामग्री समस्त वेदों से ग्रहण की गई है। रस को अथर्ववेद से ग्रहण किया गया है। भरत मुनि ने रस को नाट्य का अनिवार्य सार-तत्त्व माना है। रस नाट्य की परिणति है।

साहित्यदर्पण के तृतीय परिच्छेद् में विश्वनाथ कविराज ने काव्यात्मक रस-तत्त्व का विवेचन करते हुए रस के स्वरूप की जो व्याख्या की है, वह इस प्रकार है–

सत्त्वोद्रेकादखंडस्वप्रकाशानंद चिन्मय।
वेद्यांतरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः ॥2॥
लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित् प्रमातृभिः।
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः ॥3॥

अर्थात् रसानुभूति की दशा सत्त्वोद्रेक के बाद ही आती है। जब तक मन तमोगुण और रजोगुण से मुक्त होकर सत्त्वगुण के प्रभाव में नहीं आता, तब तक रसानुभूति संभव नहीं है। रस दशा प्राप्त होने पर मन को जिस अखंडता की अनुभूति होती है, उस स्वरूप का विवेचन करते हुए जिन शब्दों का बहुधा प्रयोग किया गया है, वे हैं–'स्वयंप्रकाश' और 'चिन्मय'। ब्रह्म स्वयंप्रकाश स्वरूप है, उसे प्रकाश के लिए या प्रकाशित होने के लिए किसी और की अपेक्षा नहीं होती, अपितु वह स्वयं ही सभी प्रकाशों का स्रोत है। रस की अभिव्यक्ति और उसकी अनुभूति के लिए किसी और की अपेक्षा नहीं होती।

मानव अन्तर्वृत्ति बुद्धि तथा भावना दोनों ही से युक्त है। हृदय भावनाओं का क्रीड़ा-क्षेत्र है और मस्तिष्क बुद्धि के चमत्कार का। प्रेम, कारुण्य, निर्वेद, वात्सल्य, वीरत्व इत्यादि सभी कोमल भावनाओं का हमारे हृदय से घनिष्ठ सम्बन्ध है। ये भावनाएँ ही मनुष्य को मनुष्य कहलाने योग्य बनाती हैं।

'शाकुन्तला नाटक' (राजा लक्ष्मण सिंह कृत) पढ़कर हमें पृथ्वी और स्वर्ग के मिलन की अनुभूति होती है। 'मेघदूत' में यक्ष के हृदय के साथ हमारे हृदय का तादात्म्य स्थापित हो जाता है और तब हम ऐसे जगत् में विचरण करते हैं, जो काल्पनिक होते हुए भी हमारी भावात्मक प्रवृत्तियों के अधिक अनुकूल तथा उनका क्रीड़ा-क्षेत्र होता है। यह हमारे हृदय की विकसित अवस्था है। तभी तो हम दूसरे के बच्चे को प्यार से अपनी गोद में ले लेते हैं। तभी तो हम एक-दूसरे के दुःख

में परस्पर भागीदार बनते हैं। हृदय को इतना संवेदनशील बनाने में साहित्य और संगीत का बहुत अधिक योगदान है।

संगीत और साहित्य, दोनों ही की उत्पत्ति भावना के तीव्र उद्रेक से होती है। हृदय में भावनाओं का आवेश आते ही कल्पना तरंगें लेने लगती हैं। भावना के उद्रेक से पहले संगीत और फिर काव्य का जन्म होता है। क्रौंच पक्षी के वध से आदिकवि महर्षि वाल्मीकि की भावनाओं के तरंगित होने पर ही उनके मुंह से ये शब्द निकले—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

यही संगीत का जन्म था। 'संगीत और काव्य' कलात्मक और रसात्मक होते हुए भी मूलतः एक-दूसरे से भिन्न हैं। संगीत में रस की अवतारणा जहाँ ध्वनि, ताल और स्वर के कलात्मक आरोहावरोह के माध्यम से उपस्थित कर दी जाती है, वहीं काव्य में रस-निष्पत्ति शब्द-शक्ति के छन्दवद्ध कलात्मकता के संयम से सिद्ध होती है। साहित्य तथा संगीतकला अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हुए भी अन्योऽन्याश्रित है। अतः दोनों का सुन्दर समन्वय अत्यन्त मनोहारी बन जाता है। इसीलिए संगीत व काव्य में एक अटूट सम्बन्ध माना गया है। दोनों के परस्पर सहयोग से रस-संचार की सम्भावनाएँ परिलक्षित होती हैं।

उपर्युक्त कथनानुसार रस शब्द का प्रसंगानुसार भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग किया गया है। इन्द्रिय सम्पर्क का बोध होकर भी रस में आनन्द अथवा स्वाद का भाव निहित है। यद्यपि रस नाट्य एवम् काव्य में मूलरूप से जुड़ा हुआ है तथापि लोकसंगीत की सरस माधुरी में भी यह प्रचुरता के साथ विधमान है।

रस लोकगीतों की आत्मा है जो इनको किसी भी शिष्ट साहित्यिक गीतों से होड़ लेने के उपयुक्त बनाती है। लोक गायक के मधुर कंठ से होकर जब इन गीतों की स्वर-लहरियाँ दिशाओं में तरंगित होती हैं, तब रस तो मानो निचुड़-निचुड़ पड़ता है।

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के शब्दों में—**"लोकगीतों की रसात्मकता के आगे बड़े-बड़े कवियों की सूक्तियाँ भी सूखी जान पड़ती हैं। लोकगीत क्या है, रस से लबालब भरा हुआ प्याला है जिसके पीने से प्यास बुझती नहीं बल्कि बढ़ती जाती है।"**

'गीतं वाद्यं नृत्तं त्रयं संगीतमुच्यते' अर्थात् गीत, वाद्य और नृत्य, इन तीनों के मेल से संगीत शब्द की सार्थकता मानी गई है। हिमाचली लोकसंगीत में निहित इस-तत्त्व अथवा रसानुभूति की अवतारणा इन तीनों घटकों में परिलक्षित होती हैं।

अतः यहाँ के लोकसंगीत में भाव तत्त्व को उजागर करने वाले निम्नलिखित उपकरण माने जा सकते हैं—

1. लोक-साहित्य 2. लोक-संगीत और 3. लोक-नृत्य।

लोक-साहित्य

लोक-साहित्य को प्रधानतया पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है—

लोकगीत, लोक-गाथाएँ, लोक-नाट्य, लोक-कथा, लोक-सुभाषित।

हिमाचली संगीत में निहित भाव-तत्त्व के आधार पर उपर्युक्त प्रथम तीन को ही चुना गया है अर्थात् ये तीनों संगीत के साथ अटूट सम्बन्ध स्थापित किए हुए हैं।

लोकगीत : हिमाचली जन-जीवन में लोकगीतों का अक्षय भण्डार है। समग्र लोकगीतों का प्रामाणिक संग्रह और वैज्ञानिक अध्ययन करना असम्भव नहीं तो जटिल अवश्य है। यहाँ के सामाजिक मनोरंजन के कार्यक्लापों से लेकर संस्कार सम्बन्धी अनुष्ठानों तथा तीज-त्योहारों और मेलों तक लोकगीतों का साम्राज्य दिखाई देता है। भौगोलिक स्थिति के अनुसार हिमाचल प्रदेश कई खण्डों में बँटा है। यद्यपि ये खण्ड प्रशासनिक दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं तथापि सांस्कृतिक दृष्टि से सभी खण्डों की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं, जिनके कारण इनकी विभिन्नता स्पष्ट परिलक्षित होती है। यह प्रभाव लोकगीतों पर भी दृष्टिगोचर होता है।

हिमाचल प्रदेश में गाए जाने वाले लोकगीतों को मुख्यतः चार भागों में बाँटा जा सकता है—

1. शैली की दृष्टि से।
2. उद्देश्य की दृष्टि से।
3. रसानुभूति की दृष्टि से।
4. अवसरानुकूलता की दृष्टि से।

1. शैली की दृष्टि से इन गीतों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। (1) प्रबन्ध गीत (2) मुक्तक। प्रबन्ध गीतों की कथात्मक शैली होती है। उदाहरणतः प्रदेश में पाई जाने वाली हारें-बारें (वीर-गाथाएँ) इस श्रेणी में रखी जा सकती हैं। मुक्तक को पदगत प्रकार कहा जाना भी उचित जान पड़ता है। झूरी, लामण, लोका तथा अधिकांश नाटियाँ इस श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं। इन रचनाओं का पदगत प्रकार दोपदी, त्रिपदी, चौपदी तथा पदमुक्त रूप भी पाया जाता है।

2. उद्देश्य की दृष्टि से इन गीतों को प्रेम, वीरत्व तथा भक्ति-भाव का संचार तथा संस्कार-गीतों के अन्तर्गत बाँटा जा सकता है। सूहड़ियाँ, घोड़ियाँ, लग्न तथा विदाई गीत इस श्रेणी में आते हैं।

3. रसानुभूति की दृष्टि से इन गीतों को मुख्यतः शृंगार, करुण, वीर, शान्त तथा हास्य रसों के अधीन रखा जा सकता है। झूरी, लामण, रांझू-फुलमू, कुंजु-चंचलो तथा अनेक नाटी-गीत शृंगारिक-गीत हैं। हारें-बारें, पक्खड़ू, विदा-गीत, झिजोटियाँ इत्यादि कारुणिक भावों को व्यंजित करते हैं। होकू मियाँ की हार, पंडवायण, भारतो, ढोलरू इत्यादि गीतों को वीर रस के अन्तर्गत रखा जा सकता है। समस्त धार्मिक गीत (भजन-भेंटें) ऐंचलियाँ (रामायण, महाभारत, कृष्णावतार) सम्बन्धी कथात्मक गीत, राजा भर्तृहरि-गाथा, झाँखों-अजबा का पवाड़ा, बीणी की हारूल आदि गीत-शैलियाँ शान्त भावों की परिचायक हैं। विवाह-सम्बन्धी गीतों में सिठणियाँ या शिठणे, लूहकड़ियाँ (लोहड़ी-गीत) झमाकड़ा, गिद्धा-गीत तथा लोक-नाट्य के अन्तर्गत प्रयुक्त कुछ अन्य लोकगीत इस श्रेणी में रखे जा सकते हैं।

4. अवसरानुकूलता की दृष्टि से इन गीतों को समस्त संस्कार-गीत, नृत्य-गीत, बीशु-मेले के गीत तथा अन्य उत्सवों-पर्वों पर गाए जाने वाले गीतों में विभक्त किया जा सकता है।

लोक गाथाएँ : लोकगाथाओं में वर्णित विषय लोकगीतों से भिन्न रहता है। इनमें युद्ध, वीरता, साहस, रहस्य और रोमांस का पुट अधिक पाया जाता है। प्रेम-तत्त्व का भी गहरा समावेश रहता है। इनमें सबंधित पात्रों के जीवन का अधिकांश भाग प्रतिबिम्बित होता है। विषय की दृष्टि से लोकगाथाएं खण्डकाव्य कही जा सकती हैं। हिमाचल प्रदेश में लोकगाथा के लिए 'वार' या 'हार' शब्द प्रसिद्ध है परन्तु, रामायण, महाभारत, भर्तृहरि आदि गाथाओं के साथ हार या वार प्रयुक्त नहीं होता। वैसे लोकगाथा के अन्तर्गत सभी प्रकार के गेय, विशाल आख्यानों की आत्मा पूर्ण सुरक्षित है।

काँगड़ा क्षेत्र में लोकप्रिय वार में रामसिंह पठानियां, सिरमौर क्षेत्र में 'होकू मियाँ की हार' आदि प्रसिद्ध गाथाओं में देशभक्ति का चित्रण मिलता है। प्रणय संबंधी रोमांचक आख्यानों में सुन्नी भूंखू, कूंजु-चंचलो तथा रांझू-फुलमूँ की गीतियाँ लोकप्रिय हैं। किन्नौर की हिना डन्डुव, लाटी शरजंग आदि रोमांच गाथाएँ हैं। पौराणिक गाथाओं के अन्तर्गत रामायण, पंडवायण, विष्णु नरैण, शिव विवाह आदि के नाम प्रमुख हैं तथा राजा भर्तृहरि, गोपीचन्द, बाबा बालकनाथ, पूर्णभक्त आदि लोकप्रिय गाथाएँ हैं। उपर्युक्त गाथाओं में वीरता, देशभक्ति तथा प्रणय संबंध की रसात्मकता की अनूठी झलक देखी जा सकती है।

लोक नाट्य : लोकनाट्य में प्रयुक्त 'लोक' शब्द के व्यावहारिक शब्द को मुख्य रखकर इसे लोक द्वारा अनुभूत भावनाओं का अनुकरणात्मक रूप कहना असंगत न होगा। लोकनाट्य परम्परा निर्विवाद है। नाटकों की उत्पत्ति से पूर्व भी ये जन नाटकों के नाम से परम्परित हुए माने जाते हैं और इस कला में मनोरंजन के साधन जीवन

के साथ गहनता से जुड़े हैं। मनौती रूप में ही नाट्यों की परम्परा बाँधी गई थी जो अब तक उसी भाव एवम् गति से प्रभावित दिखाई देती है।

हिमाचल प्रदेश के लोकनाट्यों में भगत, करियाला, बाँठड़ा तथा हरणातर अधिक लोकप्रिय हैं।

इन लोकनाट्यों में धार्मिक विश्वास ऐतिहासिक, सामाजिक एवम् पौराणिक कथाओं का समावेश रहता है। कथ्य सामयिक परिस्थितियों से जुड़े रहते हैं जिन्हें स्थानीय कलाकार अत्यन्त सफलतापूर्वक निभाने में सक्षम हैं। लोकनाट्य के अन्तर्गत अभिनय, गायन, वादन तथा नृत्य की सरस निर्झरिणी प्रवाहित होती हुई लोकजीवन की अन्तरंग झाँकी इन्द्रधनुषी रंगों में प्रस्तुत करती है।

लोक संगीत

हिमाचल प्रदेश का लोकसंगीत विभिन्न मेलों, पर्वों, तीज-त्योहारों तथा नृत्यगीतों के माध्यम से विभिन्न लोकवाद्यों के साहचर्य से पनपता रहा है। इसके लय, भाव, नाद आदि के स्वरूप निजी हैं जो अपनी सरसता, मिठास, स्वरलालित्य, नादसौंदर्य एवम् गंभीरता में अद्वितीय है तथा इसमें एक सरस प्रवाह है। संगीत एक प्रदर्शनात्मक कला है। इसका मुख्य उद्देश्य भावों की अभिव्यक्ति है, जिसे गायक गाकर, नर्तक नाचकर और वादक अपने वाद्य द्वारा प्रस्तुत करके सहजरूप में सम्प्रेषित कर लेता है।

महान कवि और संगीत कला मर्मज्ञ **रविन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार–"जहाँ हृदय की पुकार भी पहुँचने में असमर्थ है, वहां संगीत की तरंगें पहुँच जाती हैं।"**

हिमाचल प्रदेश एक विस्तृत भू-खण्ड है जिसे बारह जिलों में बाँटा गया है। इन सभी जिलों की भाषा अथवा बोली, लोकसाहित्य, लोकसंस्कृति तथा लोकसंगीत में विभिन्नताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। एक ओर शिमला, सिरमौर, कुल्लू, मण्डी, किन्नौर, लाहौल-स्पिति तथा चम्बा के पर्वतीय खण्ड हैं तो दूसरी ओर काँगड़ा, ऊना, सोलन, बिलासपुर तथा ऊना के मैदानी भू-भाग हैं जहाँ बसने वाले लोगों के गीत, संगीत आदि की स्थानीय परम्पराएँ हैं। लोकगीत शैलियों, लोकवाद्यों की वादन प्रक्रिया तथा लोकनृत्यों में स्थानीय प्रभाव की प्रबलता है। जन-जातीय क्षेत्रों में प्रयुक्त लोकसंगीत की अपनी विशेषताएँ हैं।

अभिप्राय यह है कि इस विशाल प्रदेश के लोकसंगीत में रसोत्पत्ति अथवा भाव-तत्त्व की निष्पत्ति के उपादानों का विस्तृत मूल्यांकन करना असम्भव नहीं तो जटिल अवश्य है। प्रदेश के स्थानीय संगीत में प्रयुक्त कुछ विशेष लोकगीतों तथा लोकगाथाओं की स्वर-संरचनाएँ, लोक वाद्यों से जुड़ी लय, ताल तथा प्रमुख लोक-नृत्य शैलियों पर प्रकाश डालना अभीष्ट है।

लोकगीतों के स्वर : हिमाचली लोकगीतों का सांगीतिक विवेचन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ का संगीत मूलतः कंठनिःसृत है। इन गीतों का स्वर-क्षेत्र तीन से लेकर सम्पूर्ण स्वर सप्तक तक विस्तृत रहा है। गीतों में कोमल, शुद्ध तथा तीव्र स्वरों का प्रयोग भी मिलता है। अधिकांश लोकगीत सप्तक के पूर्वार्ध में गाए जाते हैं।

इन गीतों को अत्यधिक प्रभावशाली व स्पष्ट रूप देने के लिए ऊँचे स्वर का षड्ज निर्धारण किया जाना लोक गायकों का एक स्वाभाविक गुण है, जिसे वे सहज रूप में निभाते हैं।

गीत का स्वर-तत्त्व जितना मानव की भावनाओं को आन्दोलित करने में सक्षम है, उतनी वाणी की कोई दूसरी क्रिया नहीं। स्वर के रूप विभिन्न भावावस्थाओं (रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, आश्चर्य और निर्वेद आदि) में उन्हीं के स्वभाव के अनुरूप परिवर्तित हो जाते हैं।

लोकमानस के आन्तरिक भावों का कोई ऐसा पक्ष नहीं जो इन गीतों का कथ्य न बन पाया हो। प्रेम इन गीतों का मुख्य कथ्य है। अतः इनमें रति भाव (शृंगार रस) की प्रधानता होना स्वाभाविक है। शृंगार के संयोग तथा वियोग रूपों में प्रथम की अपेक्षा दूसरे की विशद व्यंजना हुई है।

लोकगीतों की विभिन्न शैलियों के अन्तर्गत झूरी, लामण, साका, गंगी और मुंजरा (नृत्यगीत) इत्यादि अनेक प्रणय गीत हैं। सिरमौर व शिमला जनपद में गाई जाने वाली प्रसिद्ध 'झूरी' का एक अनुपम उदाहरण देखिए–

बाँठणो जुहणो बे रे झुरिए,
होला सायो दा तारा ।
आखी रा कियाँ बोलो नोरजा,
तिंदा बे तोला जिऊटा म्हारा।

भावार्थ : नायक अपनी प्रेमिका की प्रशंसा कर रहा है। झूरी का मुख चन्द्रमा की भाँति सुन्दर है। उसकी आँखों ने तराजू का काम किया तथा उस तराजू के पलड़ों में प्रेमी के दिल को तोला गया। अर्थात् नायक स्वयं को ठगा-ठगा-सा महसूस करने लगा और अपनी सुध-बुध खो बैठा।

अनिबद्ध शैली के अन्तर्गत झूरी गायन की धुन द्रष्टव्य है–

सा - - - - - - - - - - , ग म प ध नि - - - - निसां

बां ठ णो ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ , जु ह णो बे रे ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

प ध - प - - - - -, प ^ध^प - -   प ध म - पम ग - - -,

झु रि ऽ ए ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ, हो ला ऽ ऽ,   सा थो दाऽ ऽ ऽ ता रा ऽ ऽ,

सा - - - -, ग म प ध - - सां, प ध - ^म^मग - म - - - रे

आ खी रा ऽ ऽ, कि यां बो लो ऽ ऽ ऽऽ, नो ऽ ऽ रऽ ऽ जां ऽ ऽ ऽ

ग म प ध नि - - -, प ^ध^ध प म म म प म

तिं दा बो लो रे ऽ ऽ ऽ, तो ऽला ऽ ऽ जि ऊ टा ऽ

ग - - - सां, सा- ग म पध - -, म प ^म^ग - म - - - - रे

म्हा रा ऽ ऽ ऽ, तिंदा बोलो रे ऽ ऽ ऽ, झू री एऽ रे ऽ ऽ ऽ ऽऽ

ऊँचे स्वरों का निर्वाह झूरी गायक कुशलतापूर्वक निभाते हैं। जिसे सुनकर श्रोता आत्मविभोर हो उठता है। प्रकृति के स्वछन्द वातावरण में गूँजने वाले इन प्रणय गीतों में गूँज-अनुगूँज का एक अनूठा विधान है।

प्रस्तुत धुन में मींड़ का प्रयोग विशेषतः धसां, मरे तथा ग सा स्वरों पर अवस्थित रहने से यह प्रणय-गीतकाएँ स्वर-माधुरी की अनुपम छटा बिखेर रही हैं।

उपर्युक्त प्रणय गीत की धुन को यदि शास्त्रीयता के आधार पर परखा जाए तो ज्ञात होता है कि इस झूरी गीत में 'खमाज राग' के स्वरों की छाया प्रबल रूप से निखर आई है।

वैसे भी, खमाज राग श्रृंगार रसोत्पादक माना जाता है।वियोग की पीड़ा पहाड़ी गीतों में कई रूपों में उभरी है। काँगड़ा जनपद में गाई जाने वाली **झिंझोटी** (प्रणयगीत) का एक आंशिक रूप द्रष्टव्य है–

घालूआ, मजूरा ओ, डेरा तेरा दूरा ओ,
कद्दी घरैं औणा।

जीवन-यापन के लिए प्रदेश गए पति के विछोह की वेदना से विरहिणी की आँखें भर आईं। गहरी पीड़ा से उद्वेलित मन से कुछ शब्द फूट निकले, जिनका प्रत्येक स्वर दर्द में भीगा हुआ इस प्रकार ध्वनित हुआ–

स्वरलिपि

ग̣	प̣	-	ध̣	-	प̣	-	ध̣	सा	-	ग	-	-	रे
घा	तु	ऽ	आ	ऽ	म	ऽ	जू	ऽ	ऽ	रा	ऽ	ओ	ऽ
रे	ग	-	रे	-	ध̣	-	ध̣	सा	-	रे	ग	-	रे
डे	रा	ऽ	ते	ऽ	रा	ऽ	दू	ऽ	ऽ	रा	ऽ	ओ	ऽ
रे	ग	-	रे	सा	रे	सा	सा	-	-	-	-	-	-
क	दुदी	ऽ	घ	ऽ	रे	ऽ	औ	ऽ	ऽ	णां	ऽ	ओ	ऽ

इसी प्रकार मंडी व बिलासपुर क्षेत्र में गाया जाने वाला गीत **राजे दी ए बेड़िए, सौकणें तू मेरीए** तथा चम्बा जनपद में **'कुंजूं-चंचलो'** के नाम से गायी जाने वाली प्रणय-गाथा सरीखे अनेकों गीत विरह-वेदना को उजागर करते हैं।

पहाड़ी गीतों में करुण रस (शोक भाव) अनेक रूप लेकर व्यंजित हुआ है। वियोग की चरम सीमा, प्रिय की प्रतीक्षा में घुल-घुलकर प्राणों की बाजी लगा देना, सामाजिक कुंठाओं का पात्र बनना।

सास अथवा माता द्वारा जंवाई (दामाद) को मरवाकर पुत्री को अन्यत्र ब्याहने की भावनाएँ इत्यादि करुणा भाव को जगा देती हैं। चम्बा क्षेत्र की भटियात तहसील का एक हृदयविदारक गीत **'फुल्मू राझूँ'** पूरे हिमाचल में लोकप्रिय है। बिलासपुर का 'मोहणा' अनेकों विदाई गीत (वैवाहिक अवसर पर गाए जाने वाले गीत) सिरमौर में गाई जाने वाली हारें तथा काँगड़ी झिंझोटियों के अन्तर्गत 'राजे दीए बेड़िए सौकणें तू मेरी ए' तथा कन्या की विदाई के समय 'तेरे मैहलां दे अन्दर नी बापू जी मेरा डोला अड़ेया' गाए जाने वाले गीत कितने करुणोत्पादक हैं इन्हें शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता।

शोक भाव को अभिव्यंजित करते अनेक गीतों के साथ-साथ हिमाचली गीतों में वीररस भी प्रवाहित होता हुआ दिखाई पड़ता है। इस रस की अभिव्यक्ति हारें, वारें, पवाड़ा आदि गीतों में स्पष्ट हुई है।

सिरमौर जनपद में प्रसिद्ध 'होकू मियाँ की हार' का आंशिक रूप धुन सहित प्रस्तुत है—

स्वरलिपि

नि	ध	नि	ध	प-	ध-	-	म	मप	धपम		म-	सां	नि	-	ध
हो	ऽ	बो	लो	भोऊ	ताऽ	ऽ	दे	णाऽ	ऽ,ऽऽ		लाऽ	शां	दु	ड़ो	ऽ
मप	पम	म	-	म	प	पम	ग	रे	सा	-	-	-	-	-	-
म्हा	ऽऽ	रे	ला	पा	ऽ	ऽऽ	छ	ऽ	ऽ	ड़े	ला	पा	ऽ	ऽ	ऽ
सा	-	-	प	प	-	-	-	म	-	-	-	म	प	नि	ध
ई	ऽ	ऽ,	हो	पा	ऽ	ऽ	छ	ऽ	ऽ	ड़े	ऽ	पा	ई	रो	बे
प	म	ग	रे	गुरे	-	-	म	ग	रे	सा	-	-	-	-	-
दे	ऽ	णा	ला	पाऽ	ऽ	ऽ	छ	ऽ	ऽ	ड़े	ला	पा	ऽ	ऽ	ऽ
नि	ध	नि	ध												
ई	ऽ	बो	लो												

उपर्युक्त लोकगाथा में लगभग 300 वर्ष पूर्व तत्कालीन नाहन के राजा द्वारा चलाए जा रहे मनमाने प्रशासकीय ढंग के फलस्वरूप जनता पर हो रहे अत्याचार के विरुद्ध होकू नामक योद्धा की वीरता का वर्णन है जिसने अपने इर्द-गिर्द गाँवों से पाँच सौ युवकों की एक सेना बनाकर नाहन पहुँचाई।

राजा के मन्त्री ने उसे धोखे से मरवा डाला परन्तु होकू योद्धा के बलिदान की कहानी आज भी सिरमौर जनपद में बड़े उत्साह के साथ हारूल अथवा हार (वीर गाथा) के रूप में गाई जाती है।

स्थानीय जनगायकों के पराक्रम, अन्याय अथवा शोषण के विरुद्ध युद्ध-वर्णन आदि से जुड़ी अनेक गाथाएँ हैं। सूरमा मदना, बीणी की हार, ढुंडू-कमरऊ लोकगाथाओं में वर्णित जननायकों के पराक्रम और शौर्य के भाव व्यक्त होते हैं। इन प्रासंगिक गीतों की शृंखला में नारी बलिदान न्याय के अन्तर्गत चम्बा का प्रसिद्ध

गीत 'सुकरात' तथा बिलासपुर का प्रसिद्ध गीत 'मोहणा' तथा रूकमणि के नाम उल्लेखनीय हैं।

पहाड़ी गीतों के रस विधान के अन्तर्गत शान्त रस (निर्वेद भाव) के प्रभुत्व को भी नकारा नहीं जा सकता। यद्यपि इस रस में अधिक गीत दिखाई नहीं पड़ते तथापि देवी-देवताओं के धार्मिक गीत, (ऐंचलियाँ) पंडवायण, (महाभारत गाथा) भगवान शिव और दुर्गा माता के गीतों की भी एक लम्बी कतार है। राजा भर्तृहरि लोकगाथा शिमला व सिरमौर जनपद में विभिन्न रूपों में गाई जाती है। 'छिछा' नामक लोकगाथा में घृणा भाव तथा 'मदने री हार' नामक गाथा में क्रोध भाव संचरित हो उठे हैं। इसी प्रकार जन्म गीत, लोरियाँ एवम् मुण्डन संस्कार सम्बन्धी गीतों में वात्सल्य की सुन्दर व्यंजना मिलती है।

लोक वाद्यों द्वारा रसानुभूति

हिमाचली संगीत में लोक वाद्यों का विशेष महत्त्व है। धार्मिक कार्यों जैसे यज्ञ (भुण्डा) देवपूजन, सामाजिक कार्यों जैसे विवाहादि मांगलिक अवसरों पर तथा युद्ध आदि स्थलों पर प्रयुक्त लोकसंगीत वाद्यों के विविध रूपों का विविध प्रयोग क्षेत्र विशेष के साथ भावाभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। यदि बालक के जन्म का संकेत देना है तो बधावा ताल, लोक नाट्य करियाला में जंगताल, विवाहादि के अवसर पर शवारी ताल, अन्द्रेड़ा ताल तथा बधाई ताल, देव पूजा के समय चौघड़ी, पुजोज ताल और नृत्यगीतों के साथ कहरवा ताल के विभिन्न रूपों की वादन शैली तथा नाटीताल गीह-मुंज़रा (नृत्यगीत) ताल, ठोडा ताल इत्यादि का वादन किया जाता है। भारतीय संगीत वाद्यों की भांति हिमाचली लोक वाद्यों को भी चार वर्गों में बाँटा जा सकता है—

1. अवनद्ध वाद्य : इस वर्ग के अन्तर्गत ढोल, ढोलकी, नगाड़ा-दमामा, गुज्जू डोंरू तथा हुड़ुक आदि अनेक प्रकार के छोटे-बड़े ढोलों का प्रयोग समूचे क्षेत्र में किया जाता है।

2. घन वाद्य : इस वर्ग में झाँझ, मजीरा, खड़ताल, चिमटा, घंटा, घड़ियाल, थाली आदि की अपनी विशेषता है। जगराता, करियाला आदि में इन वाद्यों का अधिक प्रयोग होता है।

3. सुषिर वाद्य : इस वर्ग में रणसिंगा, करनाल, शहनाई (सन्हाई) बांसुरी, अलगोजू आदि वाद्यों का प्रयोग किया जाता है।

4. तन्त्र वाद्य : इस वर्ग में एकतारा, किन्नरी (स्थानीय बोली में किंदरी या किंगरी), द्युतारी, ग्राम्यड; जुमङ आदि वाद्य प्रयुक्त किए जाते हैं।

लोक वाद्यों के उपर्युक्त वर्गीकरण को यदि क्षेत्र विशेष के आधार पर उसके

महत्त्व को देखा जाए तो ज्ञात होता है कि शिमला, सोलन तथा सिरमौर क्षेत्र में ढोल, नगाड़ा, दमामा, खंजरी, घड़ा, थाली, शहनाई, करनाल तथा रणसिंगा या हरणसिंगा वाद्यों का अधिक प्रयोग किया जाता है। इन वाद्यों को गायन व नृत्य के साथ तालयुक्त संगति हेतु और एकल वाद्य-वादन क्रिया के रूप में भी प्रयुक्त किया जाता है।

बिलासपुर और मण्डी जनपद में टमक, नगाड़ा, ढोल, डोहरू, घड़ियाल, चिमटा, ताशा, दमामा तथा डफ आदि वाद्यों का प्रयोग मिलता है।

चम्बा तथा कुल्लू जनपद में भी इन्हीं वाद्यों का प्रचलन है। शहनाई वादन का विशेष महत्त्व समझा जाता है। यह वाद्य स्थानीय गायकों के साथ आधार स्वर स्थापना की मुख्य भूमिका निभाता है। ग्राम्यङ, जुमङ आदि लाहौल-स्पिति तथा किन्नौर के प्रमुख तन्त्र वाद्य है। अवनद्ध वाद्यों के वर्ग में यहाँ 'पौन' एक विशिष्ट वाद्य माना जाता है। इस वाद्य का प्रयोग लय व ताल देने के लिए नहीं बल्कि वातावरण को सुरीला बनाने के लिए किया जाता है।

हिमाचली लोकगीतों, लोकनृत्यों तथा अन्य तीज-त्योहारों पर प्रयुक्त स्थानीय संगीत के साथ विभिन्न तालों के बजाए जाने की एक विशेष परम्परा है। ये ताल प्रायः छः, सात, दस, चौदह तथा सोलह मात्राओं वाले होते हैं। ठोडा नृत्य के साथ छः मात्रिक, करियाला के साथ सात या चौदह मात्रिक, गिद्धा अथवा पढुआ के साथ चतुःमात्रिक, गीह के साथ आठ मात्रिक तथा लम्बी अथवा ढीली नाटी के साथ सोलह मात्रिक लय की बोल बांट का निजी स्वरूप और व्यवसायिक जाति के। कलाकारों द्वारा वादन क्रिया सुनकर अच्छे से अच्छा शास्त्रीय संगीतज्ञ भी अचम्भे में पड़ जाता है। करियाला में प्रयुक्त 28 मात्रओं से निर्मित 'बधाई' एक स्वतन्त्र शैली का ताल है। यह ताल ढोल तथा दमामा-नगाड़ा वाद्यों पर बजाया जाता है।

इन समस्त लोकतालों में स्थान विशेष का प्रभाव अधिक प्रभावकारी रहता आया है। हारुल (वीर गाथा) में एक साथ स्थानीय वादकों द्वारा दीपावली आदि अवसरों पर 20 से 30 हुड़क एक साथ बजने से धरती काँप उठने का आभास होता है। सारा वातावरण गुंजायमान हो उठता है। ढोल-नगाड़ा वाद्य भी गूँज-अनुगूँज ध्वनि उत्पन्न करने के लिए प्रायः सभी मांगलिक एवं सामाजिक पर्वों पर अपना विशेष स्थान रखते हैं। फूँक वाद्यों में शहनाई का स्थान सर्वोपरि है तथा करनाल, रणसिंगा का प्रयोग भी कोई कम महत्त्व नहीं रखता। इन सभी वाद्यों का अवसर विशेष के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध माना जाता है तथा इनकी वादन-क्रिया से स्वतः ऐसा रस उमड़ पड़ता है, जो श्रोताओं को आत्मविभोर कर देता है।

हिमाचली गीतों, वाद्यों तथा वादन-क्रिया पर संक्षिप्त विचार करने के उपरान्त यहाँ के लोकनृत्यों पर भी तनिक ध्यान देना समीचीन होगा। झूरी, लामण, लोका,

गंगी आदि एकल अथवा युगल गायन और कुछ संस्कार गीतों को छोड़कर शेष लोकगीतों के साथ नृत्य करने की प्रथा यहाँ परम्परागत रूप लिए हुए है। किन्नौर का कायङ्, माला नृत्य स्पिति का छम्म नृत्य, लाहौल घाटी का 'शन्' तथा 'शाब्रो' नृत्य सोलन, बिलासपुर का गिद्धा, चम्बा की 'घुरई' काँगड़ा का झमाकड़ा, कुल्लू मंडी, सिरमौर तथा शिमला का नाटी-नृत्य यहाँ के पारम्परिक नृत्य हैं। माला नृत्य प्रदेश के अधिकांश क्षेत्रों में प्रचलित है। यह एक प्रकार का सामूहिक नृत्य है जिसमें नर्तक समान गति अथवा लय में समान हाव-भाव का प्रदर्शन करते हुए अनेकता में एकता का भाव जागृत करने में पूर्णतया सक्षम दिखाई देते हैं। माला नाटी के अन्तर्गत गाए जाने वाले एक गीत की सस्वर पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

लाल चिड़िए सैरे नि जाणा, सैरे नि जाणा, सैरे नि जाणा।
सैरे पाका म्हारे गीऊँ रा दाणा, गिऊँ रा दाणा, गिऊँ रा दाणा ॥

स्वरलिपि

x				x				x				x			
प़	-	ध़	सा	सा	रे	ग॒	रे	सा	-	-	-	रे	-	ग॒	रे
ला	ऽ	ल	चि	ऽ	ड़ि	ए	ऽ	सै	ऽ	रे	नि	जा	ऽ	णा	ऽ

^ग^रे	सा	-	-	सा	-	रे	ग॒	^ग^रे	-	सा	-	सा	-	-	प़
सै	ऽ	रे	नि	ऽ	ऽ	जा	णा	सै	ऽ	रे	नि	जा	ऽ	णा	ऽ

(अगली पक्तियाँ इसी धुन में गाई जाती हैं)

उपर्युक्त माला नृत्य गीत के साथ 20-30 से लेकर दो या तीन सौ पुरुष तथा महिलायें किसी खुले आँगन में नृत्य करते हैं तथा सभी समवेत स्वरों में गाते, कदम से कदम मिलाते झूम-झूमकर नाचते जाते हैं तथा वाद्यों पर संगति का क्रम भी अत्यन्त मधुरता बिखेरता जाता है। प्रथम पंक्ति की समाप्ति पर गीत की उसी धुन को शहनाई वादक दोहराता जाता है तथा ढोल व नगाड़ा लय वाद्यों के रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं जिससे सारे वातावरण में रस की लहर उमड़ पड़ती है।

गीह अथवा मुंज़रा नृत्य आयोजन की एक विशिष्ट परम्परा आमतौर पर शिमला, सिरमौर जनपद में देखने को मिलती है। इस नृत्य को विवाहोत्सव, बीशु-मेलों तथा तीज-त्योहारों के अवसर पर देखा जा सकता है। गायकों तथा वादकों की मंडली एक गोलाकार बनाकर अपने कला-कौशल द्वारा उपस्थित जन-समूह को नाचने के

लिए मजबूर कर देती है। ऐसे वातावरण में सभी का मन उमड़ उठता है। ढोलकी तथा खंजरी वाद्यों पर गीह ताल का स्वरूप, पाटाक्षर तथा बोलबाँट की लयात्मकता का एक उदाहरण प्रस्तुत है–

स्वरलिपि

घिड़	घिड़	घि़	ना	घिं	घिं	ना	घड़	घिं	घिं	ना	घड़	घिड़	घिड़	घिड़	घिड़
x			2			3				4		5			

इस ताल में पाँच तालियों को हाथ पर बजाते रहना एक स्वाभाविक परम्परा बन गई है। 16 मात्रिक **पाटाक्षरों** में तालियों का यह क्रम विशिष्टता लिए हुए है। गीत ताल में बंधी एक नृत्य गीत की पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

स्वरलिपि

-	प	-	-	ग	-	म	-	ग	रे	सा	-	-	नि	-	प
	आ	ऽ	च्छा	गां	वों	कां	ऽ	डो	वी	रा	ऽ	ऽ	आ	ऽ	च्छा
-	सा	-	नि	सा	-	-	-	नि	सा	ग	म	प	-	ग	म
ऽ	गां	ऽ	वों	रा	ऽ	ऽ	ऽ	चा	ला	मे	री	हो	र	सो	ए
-	-	-	-	-	-	सां	-	सां	नि	सां	नि	प	-	ग	म
						बो	लो	चा	ला	मे	री	हो	र	सो	ए
-,	प	-	-	ग	-	म	-	ग	रे	सा	-	-	नि	-	प
ऽ	आ	ऽ	च्छा	गां	वों	कां	ऽ	डो	वी	रा	ऽ	ऽ	आ	ऽ	च्छा

इस गीत में नायिका का सौन्दर्य वर्णन किया गया है। प्रणय सम्बन्धी इस प्रकार के अनेको गीत नर्तक नाचकर तथा वादक अपनी वादन क्रिया द्वारा अलंकृत कर प्रस्तुत करते हैं तो स्वर, लय अथवा ताल की सुरसरी स्वमेव प्रवाहित हो जाती है।

सर्दियों के महीनों में किन्नरी लोग बाघ मारने की योजना बनाते हैं। बाघ मारा

जाता है, तो इसकी खाल में भूसा भरवाकर, लोग अपने हाथों में तलवार, बंदूक, खुखरी आदि शस्त्र लेकर नाचते-गाते हैं। इसी भाव से जुड़ी एक गीत की पंक्तियाँ स्वर-लालित्या के आधार पर कितनी सरस बन गई हैं, द्रष्टव्य है—

सिङ्कु राजा लो तो भई ता।
अड. सिड.ोनी हम तौन भई ।।
अड. सिड.ोनी हम तौन भई।
इचू बातड. रिड. तौक भई ॥

स्वरलिपि

X			0			X			0		
सां	मरें	सां -	पध	सां	-सां	धप	म	ध़	सा-	-,	मप
सिं	ङ्कु	रा ऽ	ऽ ऽ	जा	ऽ ऽ	लोऽ	तो	ऽ	भई	ऽ,	ताऽ
सां	रें-,	सां-	धम	प-	म	म	म-	- -	ध़-	-	-
अ	ङ	सि	ङोऽ	नीऽ	ऽ	हम	तौन	ऽ ऽ	-भई	ऽ	ऽ

एक अन्य गीत प्रस्तुत किया जा रहा है—

बीतेली काई हो ले, देखीयू तौमासो।
बीतेली काई हो ले, राड. के देन शौङ ॥

प्रस्तुत पंक्तियों में किन्नरी प्राकृतिक दृश्यों की मनोहारी छटा का वर्णन किया गया है (यहाँ केवल प्रारम्भिक गीत के बोल लिखे गए हैं, पूरा गीत नहीं) सावन-भादों माह में मौसम यहाँ सुहावना होता है।

लोग अपनी पारम्परिक वेश-भूषा पहने ऊँची पहाड़ियों पर चढ़कर चारों ओर निहारते हैं तथा आनन्द प्राप्त करते हैं। यह आयोजन 'पिकनिक' जैसा ही दिखाई देता है।

नाच-गाने तथा खाने-पीने के साथ दिन ढले वापस अपने घरों को लौट आते हैं। 'इसे तौमासो गीथड.' के नाम से जाना जाता है। धुन इस प्रकार है—

स्वरलिपि

x	0	x	0
प़ सा म	पम म -	म - -	गसा - - निसा
बी ते ली	काई ऽ ऽ	हो ऽ ऽ	लैऽ ऽऽ ऽऽ
म - सांध सां	म मसा म	ग सा -	- - -
दे ऽ खीऽ यू	तां ऽऽ ऽ	मा सो ऽ	ऽ ऽ ऽ
म - -	म प़ -		
बी ते ली	का ई ऽ		

उपर्युक्त प्रथम गीत में तार सप्तक के स्वरों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। गीत का चलन मध्य लय में निहित है तथा दूसरी पंक्ति के अन्तिम चरण में मध्य सप्तक के 'म' से मन्द्र सप्तकीय धैवत पर न्यास करने की स्वाभाविक प्रक्रिया एक विशिष्ट सम्वाद-भाव लिए हुए है।

इसी प्रकार, दूसरे गीत (बीलेली काईं) का प्रारम्भिक स्वर-समुदाय 'प़ सा म' म सांध सां अत्यन्त जटिल-सा जान पड़ता है परन्तु, स्थानीय कलाकार में इस प्रकार के अनेक स्वर-संवाद स्वाभाविक तौर पर कंठनिसृत हैं। गीत की टेक में मध्यम से मन्द्र पंचम तक मींड़ युक्त स्वर-प्रयोग प्रस्तुत गीत में एक विचित्रता उत्पन्न कर देता है।

अतः यह कहना अनुपयुक्त नहीं होगा कि इस पहाड़ी प्रदेश में स्वर-तारत्व के विशेष गुण किन्नर गायकों के कंठ में मौजूद है। संभवतः यह स्वर-निखार छोटी और बारीक तन्त्रियों के कारण या फिर भौगोलिक परिस्थितियों के कारण हो, किन्नरी पुरुष अथवा महिलाओं के प्रकृति प्रदत्त कंठ-माधुर्य की प्रशंसा जितनी अधिक की जाए, कम है।

'मोण' मछली पकड़ने का एक नृत्यगीत है। सिरमौर में वर्षाऋतु में नदी का जलस्तर बढ़ने के साथ ही स्थानीय नौजवानों की टोलियाँ अपने हाथों में डाँगरु, लाठियाँ और मछली मारने का सामान आदि लेकर मिनस नदी की ओर प्रस्थान करती हैं, जहाँ 'मोण' का आयोजन होना है। इस गीत में प्रयुक्त स्वरों की एक झलक देखिए—

स्वरलिपि

सा	-	नि़	नि़	प़	-	नि़	-	सा	रे	-	-
म्हा	रे	मो	ऽ	णे	ऽ	आ	या	रे	दा	ऽ	दा
x			x			x			x		
रे	सा	-	नि़	रे	सा	सा	-	-	सा	-	-
रो	ए	आ	ऽ	ड़ा	ऽ	हो	जू	ऽ	रे	ऽ	ऽ
x			x			x			x		

प्रस्तुत गीत में मन्द्र सप्तकीय निषाद तथा पंचम स्वरों का प्रयोग अत्यन्त आकर्षक बन गया है। इन स्वरों पर स्वाभाविक मींड़ प्रयोग, तीन मात्रिक द्रुत लय में हुड़क, नगारा आदि वाद्यों पर स्वांगटी गीह ताल से उत्पन्न गूँज से निरन्तर उत्साह भाव का संचारण स्वतः हो जाता है।

अपनी मातृभूमि से प्यार किसे नहीं होता। हमारे आस-पास के सुन्दर हरे वन, बहते हुए झरने व नदी-नाले, ऊँची पहाड़ियों पर बने देवताओं के मंदिर तथा स्वच्छ जलवायु प्राकृतिक सौंदर्य की छटा उजागर करते हैं। केलंग (लाहौल-स्पिति) में झिलमिलाती बिजली देखकर लोगों में आनन्द की लहर जागी और नृत्य के लिए तत्पर पाँवों में थिरकन के साथ गीत के बोल इस प्रकार गूँजने लगे—

भाई साहब जी केलंग सेला
केलंग कोठी रंगी रंगी
केलंग बिलजी झिलीमिली जी,
भाई साहब जी केलंग सेला।

स्वरलिपि

सा	-	-	ग	-	-	रे	-	-	रे	-	-
भा	ई	ऽ	सा	ह	ब	जी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

शेष अगले पृष्ठ पर देखें

पिछले पृष्ठ का शेष

सा	-	ग	-	सा	-	सा	-	-	सा रे	सा ध	
के	ऽ	लं	ऽ	ग	ऽ	से	ऽ	ला	ऽ	ऽ	ऽ
प	-	-	-	-	ध	ध	सां	ध	पं	-	-
के	ऽ	लं	ऽ	ग	ऽ	बि	ऽ	ज	ली	ऽ	ऽ
प	ध	प	ग	रे-	ग	सा	-	-	रे सां	ध़	-
झि	ऽ	ली	मि	ऽऽ	ऽ	ली	ऽ	ऽ			

इस नृत्य गीत का चलन भी द्रुत लय में निभाया जाता है। ऊँचे स्वरों वाले मधुर कंठों से इस गीत की धुन सुनते ही 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' कहावत सार्थक हो उठती है।

सांगीतिक दृष्टिकोण के आधार पर क्षेत्र-विशेष में गाए जाने वाले अनगिनत लोकगीतों की स्वर-संरचनाएँ सम्वाद-भाव, वाद्य एवम् ताल-योजना से सम्बन्धित कुछेक का संक्षिप्त विवरण देना आवश्यक है, जो इस प्रकार है— चम्बा-क्षेत्र में गाए जाने वाले, 'सुकरात', 'सावन आयो, आयो रे', 'गुड़क चमक भाऊआ मेघा ओ' 'पारिलिया बणिया मोर जे बोले हो' आदि प्रसिद्ध लोकगीतों में राग देस की यथेष्ट छवि निखर आई है।

महासू तथा सिरमौर जनपद के प्रसिद्ध 'किन्दी मरचिए चाली बे दाड़िए' (भीमप्लासी) 'माँगीरा पेवका' (जैजेवन्ती) 'बाबुआ जोगीन्दरा' (भैरवी) टासी लाड़िए हो (शिवरंजनी) 'खूनिया परसरामा' (सारंग) लोकगीतों में रागों की छाया स्पष्ट झलकती है।

काँगड़ा क्षेत्र के प्रसिद्ध लोकगीतों 'बाड्डुए सुगाड्डुए तू कज्जो झाकदी' 'आयां बो ललारिया', 'धन्तारा बजदा ओ राझणा' (दुर्गा) और 'भला मियां मनेजरा', 'तेरे माथे दा बिंदला लावा गोरिए' (पहाड़ी) में भी दर्शाए गए रागों की झलक स्पष्ट रूप में दीखती है। लाहौली लोकगीत, जो कि 'टशी कलजम' के नाम से प्रसिद्ध है, 'पारे बाणे ओ एकी मिरुगे आसे ओ' तथा 'भाई साहब जी कैलंग सैला' में भूपाली और किन्नरी गीतों 'नीमा जाड.मो' तथा 'हौले सापा सी पीले हेलो आई ले योना' में दुर्गा राग की छाया प्रकट हुई है।

मंडी क्षेत्र के 'ओ रे पड़ा मंडी शहरा लो' (जोग) 'सिर तेरा कापला जुटु चाँदीरा' (काफी) 'बसोए रा ध्याड़ा बापुआ' बिलावल और 'चिट्टे तेरे दाँदडू' (पहाड़ी) लोकगीतों में भी यही स्वर-प्रभाव प्रबल रूप से दृष्टिगोचर होता है।

कुल्लुई गीतों में 'लुम्बरुआ' (काफी) 'भावा रूपिए' (सारंग) स्वर-संरचनाएँ अत्यधिक प्रभावपूर्ण एवम् लोकमानस के लिए आकर्षण का माध्यम बन गई हैं। हिमाचली संगीत में प्रयुक्त स्वर, लय एवम् ताल, छन्द आदि का विधान यहाँ की विशिष्ट संगीत परंपरा का यह अकृत्रिम एवम् स्वाभाविक स्वरूप समूचे पहाड़ी प्रदेश के लोकमानस की भावावस्थाओं का प्रतीक है। रस-व्यंजना में रति भाव की प्रधानता दिखाई देती है और इसमें भी संयोग की अपेक्षा वियोग रूप अत्यधिक व्यंजित हुआ है। लोकगीतों में रागात्मक एवम् सरसता का अधार टेक है। टेक के प्रभाव के कारण ही भावग्रहण में सहायता, लय की निरन्तरता तथा स्वर माधुर्य में सहयोग प्राप्त होता है। विभिन्न स्थानीय लोक वाद्यों की वादन-प्रक्रिया तथा अवसर विशेष के साथ उनका गहरा सम्बन्ध जुड़ा होना सांगीतिक आयोजन के ए एक विशेष रसानुभूति को प्रकट करता है। स्वरों के परस्पर वाद-सम्वाद भाव, न्यास स्वर तथा निरर्थक टेक पद रूप 'हाँय बोलो, हाँय बे, बोलो रे, होरे, मेरिए इत्यादि लोकगीतों का सांगीतिक महत्त्व और अधिक बढ़ा देते हैं।

लोकनृत्यों की विविध शैलियों में गाए जाने वाले सामूहिक एवम् एकल लोकगीत, सामूहिक वाद्य-वादन तथा लोकनृत्य के आयोजन देखने-सुनने मात्र से प्रतीत होता है कि इस प्रदेश के लोकसंगीत में सर्वत्र लोक चेतना का प्रवाह है तथा अनुभूति के प्रबल सम्प्रेषण का सामर्थ्य भी। प्रांजलता, सरसता एवम् मधुरता आदि इसके मुख्य गुण हैं। समग्रतः लोकगीतों में शृंगार (रति भाव) की प्रधानता है और उसमें भी वियोग-भाव प्रचुरता के साथ व्यंजित हुआ है। गूँज वाद्य उत्साह एवम् मंगलमय भावों के द्योतक हैं। स्वांगटी गीह, ठोडा, गीह अथवा मुंजरा के साथ बजने वाले ताल जहाँ एक ओर चंचल होने के फलस्वरूप मन में हर्ष व उल्लास का संचार करते हैं वहीं दूसरी ओर, नाटी (ढीली नाटी) और चांचर आदि तालें तीव्रगामी जीवन की छटपटाहट से दूर सुखद एवम् शान्तमय भावों का संचार करती हैं। पहाड़ी संगीत में निहित सांगीतिक तत्त्वों का वर्तमान स्वरूप अकृत्रिम तथा स्वाभाविक है।

सिरमौरी लोकगीत

स्थायी

गोली दागी ना कनेरुए लाए, दिता आखी रा चीरा,
कुणिए लाया जियो दा बुरा ॥

अन्तरा

काली आखटी पिंऊला ढाठू, माथे पान्दे रा टिका।
बिना पोईसे मुफती दा ऐ पापी जिऊदा विका ॥
कुणिए लाया जिओ दा बुरा ॥
फूली कोरो ला फुलटु-फुलटु ज़ेरा मिसरी कुज़ा
आखी भितरे मुरतो कोसरी कोरू आशुए पूजा ॥
कुणिए लाया जियो दा बुरा- - - -

स्वरलिपि

स्थायी

1			2			3				4		5			
प	-	-	-	-	-	-	-	-	म'	प ग	-	म	प	-	सां
-	गो	ली	दा	गी	ऽ	न	ऽ	क	ने	रु	ऽ	ए	ला	ए	ऽ
सां	नि॒	प	प	-	म	नि॒	प	म	ग	ग	सा	-,	ग	म	प
ऽ	दि	ता	आ	खी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ची	रा	ऽ	ऽ,	कु	णि	ए
ग॒	-	-	सा	-	-	नि़	-	-	सा	-	-	-,	प	म	प
ला	या	ऽ	जि	यो	ऽ	दा	ऽ	ऽ	बु	सा	-	ऽ,	कु	णि	ए
-	ग॒	-	सा	-	-	नि॒	प़	-	नि़	सा	-	-	पम	म	प
ऽ	ला	या	जि	यो	ऽ	दा	ऽ	ऽ	वु	रा	ऽ	ऽ	कु	णि	ए

अन्तरा

1			2			3				4		5			
-	प	-	-	-	-	-	-	-,	ग	-	म	प	-	प'	सां
ऽ	का	ली	आ	ख	ऽ	टी	ऽ	ऽ,	पिं	ऊ	ला	-	ढा	ठू	ऽ

शेष अगले पृष्ठ पर

पिछले पृठ का शेष

-	नि̱	प	-	-	-	म	ग	-	म	प	-	-	-	-	-
ऽ	मा	ये	पा	न्दे	ऽ	रा	ऽ	ऽ	टी	का	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
-	नि	-	-	-	-	-	-	-	निसां	नि	सां	नि̱	प	प	सा
ऽ	वि	ना	पो	ई	ऽ	से	ऽ	ऽ	मु	फ	ती	दा	ऽ	ऽ	ऐ
सां	नि̱	प	म	-	-	नि̱	प	म	ग	ग	सा	-,	प	म	प
ऽ	पा	पी	जि	यो	ऽ	टा	ऽ	ऽ	वि	का	ऽ	ऽ,	कु	णि	ए
-	म	ग	सा	-	(स)	नि़	-	-	सा	-	-	-	पम	म	प
ऽ	ला	या	जि	यो	(ऽ)	दा	ऽ	ऽ	बृ	रा	ऽ	ऽ	कु	णि	ए

उपर्युक्त लोकगीत के शेष अन्तरे भी इसी धुन में गाए जाएंगे।

चम्बयाली लोकगीत

स्थायी

माए नि मेरीए जमूए दी राहे, चम्बा है कितणी-क-दूर।

अन्तरा

उच्ची-उच्ची रिड़ियां, डुग्घी-डुग्घी नदियाँ,
दिल मेरा होई जांदा चूर। माए नि मेरीए....
उड्ड-उड्ड काग तू लई जा संदेसा,
सजणा जो मिलणा ज़रूर। माए नि मेरीए....
सिमले नि बसणा सबाठुए नि बसणा,
बसी लैणा चम्बे जरूर। माए नि मेरीए....
होर-होर देस माए सब वो दिक्खी लै,
चम्बा तां दिक्खणा जरूर। माए नि मेरीए....

स्वरलिपि

स्थाई

X			2				0			3			
प़													
ग़	-	-	प़	-	-	-	ध़	सा	-	रे	ग	म	ग
मा	ऽ	ऽ	ए	ऽ	ऽ	नि	मे	री	ऽ	ए	ऽ	ऽ	ऽ
रे	-	-	रे	ग	म	ग	सा	-	नि़	ध़	प़	नि़	ध़
ज	मु	ऽ	ए	ऽ	ऽ	दी	रा	ऽ	ऽ	हे	ऽ	ऽ	ऽ
प़										सा			
ग़	-	-	प़	-	-	-	ध़	सा	-	रे	-	ध़	-
च	ऽ	म	बा	ऽ	ऽ	हे	कि	त	ऽ	णी	ऽ	ऽ	क
सा	-	-	-	-	-	नि़	ध़	-	-	ध़ नि़	-	प़	ध़
दू	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	र	हो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
ग़	-	-	प	-	-	-	ध़	सा	-	रे	-	ध़	-
च	ऽ	म	बा	ऽ	ऽ	हे	कि	त	ऽ	णी	ऽ	ऽ	क
सा	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-
दू	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

अन्तरा

							प	ध		प			
प	-	-	-	-	-	-	म	पं	-	ग़	-	-	रे
उ	च्ची	ऽ	उ	ऽ	च्ची	ऽ	रि	ड़ि	ऽ	यां	ऽ	ऽ	ऽ

शेष अगले पृष्ठ पर

पिछले पृष्ट का शेष

रे	-	-	रे	ग	म	ग	सा	-	-	सा	-	$^{\text{म}}$प	-
डु	ग्घी	ऽ	डु	ऽ	ऽ	ग्घी	न	दि	ऽ	यां	ऽ,	हो	ऽ
प	-	-	-	-	-	-	म	$^{\text{ध}}$प	-	$^{\text{प}}$ग	-	रे	-
उ	च्ची	ऽ	उ	ऽ	च्ची	ऽ	रि	ड़ि	ऽ	यां	ऽ	ऽ	ऽ
रे	-	-	रे	ग	म	ग	सा	-	-	सा	नि़	$^{\text{ध}}$प़	$^{\text{प}}$ध़
डु	ग्घी	ऽ	डु	ऽ	ऽ	ग्घी	न	दि	ऽ	यां	ऽ	ऽ	ऽ
प													
ग़	-	-	प	-	-	-	ध़	सा	-	रे	-	सा	ध़
दि	ल	ऽ	मे	ऽ	ऽ	रा	हो	ई	ऽ	जां	ऽ	दा	ऽ
सा	-	-	-	-	-	-	$^{\text{सा}}$ध़	-	-	नि़	-	प़	ध़
चू	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	र	हो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

अगली पंक्तियां भी इसी धुन में गाई जाएंगी।

लोअर महासुवी लोकगीत

मामटीया बोलो दयारामा, चल बोलो घरा खे जाणा।
घरा री ताखे बुरी लो लागी, ज़ाईरो दिल्डु लाणा ॥
ऊबे बोलणा शिमला-शिमला, हूदे सामणी नेरी।
काम्म तो करे घरा रा आपणे, रह्या नजरी मेरी ॥
शिमले री बोलू शड़के-शड़के, चक्करो रा लाणा फेरा।
शोघी स्टेशने टिकट कटाणा, दिल्लीया लाणा डेरा ॥
फूली करो बोलो फुलणु-फुलणु-ऐबे फुलणा काथी।
ईशी लाये बोलो मामता पापिए, घरा जोगी न राखी ॥

स्थाई

X	0	X	0
नि़			सा
प़ सा -	- - -	- - -रे	नि़ - -
मा म टी	या बो लो	द या ऽरा	मा ऽ ऽ
		ग	
निसा गम प	पम गरे मग	सा - -,	निसा मग सा
चल बोलो घ	राऽ खेऽ ऽऽ	जु णा ऽ,	होऽ ऽऽ ऽ
प		ग	ग रे
प - म	प प- मग	म - पम	सा सा नि
घ रा ऽरी	ता खेऽ ऽऽ	बु री लोऽ	ला गी ऽ
- निसा गम	पम गरे मग	सा - -	निसा गरे सा
ऽ ज़ाई रोऽ	दिल डु ऽऽ	ला णा ऽ	होऽ ऽऽ ऽऽ

अन्तरा

			ग
प - -	- प- मग	म - पम	सा सा नि
ऊ बे बो	ल णाऽ ऽ ऽ	शि म लाऽ	शि म ला
निसा गम प	- गरे मग	सा - -,	पम गम निप
हूँ ऽ देऽ सा	म णीऽ ऽ ऽ	ने री ऽ,	होऽ ऽ ऽ ऽ

(यही पंक्ति पुनः दोहराई जाएगी)

(शेष अगले पृष्ठ पर देखें)

पिछले पृष्ठ का शेष।

नि॒						नि॒			रे		
प़	सा	-	-	-	-	सा	-	रे	सा	नि॒	-
का	म्म	तो	क	रे	ऽ	घ	रा	रा	आ	प	णे
		नि॒		ग॒							
निसा	गम	प-	पम	गरे	मग	सा	-	-	निसा	ग	सा
रऽ	हया	नऽ	जऽ	रीऽ	ऽऽ	मे	री	ऽ	होऽ	ऽ	ऽ

गीत की शेष पंक्तियाँ भी उपर्युक्त स्वरावलियों पर आधारित होंगी।

बिलासपुरी लोकगीत

स्थायी

हाए मेरेया दिलडुआ हो
कुज्जे रेया फुलडुआ हो ॥

अन्तरा

घर सै पुराणे जित्थी हस्सेया खेलेया तू,
हस्सदेया खेलदेयां जित्थी बड्डा होया तू,
भूली जायां दिलडुआ हो–हाय मेरेया दिलडुआ हो.....
सांडु रे मदाना झीला रापाणी,
हुण सै नलवाड़ी अस्सा कित्थी लाणी,
दस्सी देयां दिलडुआ हो-हाय मेरेया.....
गलियां च पाणी जित्थी खेलां पाइयां तै
बड़ सै पुराणी जित्थी पींगां पाईयां तैं,
भूली जायां दिलडुआ हा—हाय मेरेया......

स्वरलिपि

X			0				X			0			
ध़	सा	-	रे	ग	ग	रे	सां	ध़	-	प़	ग़	प़	ध़
हा	ए	ऽ	मे	रे	या	ऽ	दि	ल	ऽ	डु	ऽ	आ	ऽ
सां	-	-	-	-	-	-	-	-	-	रें	सा	ध़	-
हो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
सा	-	-	रे	ग	ग	रे	सा	ध़	-	प़	ग़	प़	ध़
टु	टी	ऽ	रै	ऽ	यां	ऽ	फु	ल	ऽ	डु	ऽ	आ	ऽ
सा	-	-	-	-	-	-	-	-	नि़	रे	-	(ग)रे-	(ग)ध़
हो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ,	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ
सा	-	-	रेग	गप	ग	रे	ध़	-	-	(ध़)ग़	-	प़	ध़
हो	ए	ऽ	मेऽ	ऽरे	या	ऽ	दि	ल	ऽ	डु	ऽ	आ	ऽ
सा	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-
हो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

अन्तरा

ग	-	-	-	-	ग	प	रे	-	-	ग	-	सा	-
घ	र	ऽ	सै	ऽ	ऽ	पु	रा	ऽ	ऽ	णे	ऽ	ऽ	ऽ
सा	-	रे	ग	म̇	प	म̇	ग	रे	-	ग	-	(ग)रे	सा
जि	त्यी	ऽ	हूं	ऽ	सेया	ऽ	खे	लया	ऽ	तू	ऽ	ऽ	ऽ
ग	-	-	-	-	ग	पे	(ग)रे	-	-	ग	-	(ग)रे	सा

(शेष अगले पृष्ठ पर देखें)

पिछले पृष्ठ का शेष

ह	स	ऽ	दे	ऽ	ऽ	यां	खे	ल	ऽ	दे	ऽ	यां	ऽ
सा	रे	-	ग	म	(ध)प	मं	ग	रे	-	ग	-	ग	सा
जि	त्थी	ऽ	व	ऽ	ड्डा	ऽ	हो	या	ऽ	तू	ऽ	ऽ	ऽ
प़	-	-	(प)ग़	-	-	रे	सा	ध़	-	प़	ग़	प़	ध
भु	ली	ऽ	जा	ऽ	यां	ऽ	दि	ल	-	डु	ऽ	आ	ऽ
सा	-	-	-	-	-	-	-	-	नि़	रे	सा	ध़	-
हो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ

अन्य पक्तियाँ भी इन्हीं स्वरों के आधार पर गाई जाएंगी।

मण्डयाली (सुकेती) लोकगीत

औरे बोला तेरा घर-गरांवो,
पौरे पाणी रा छोआ।
छोआ लाड़ीए कमला यारीए,
पोरे पाणी रा छोआ।
तुलेराम लागा बोलदा कमला किलै तेरे शा लै होआ।
तुलैराम बाजो कमला बां किए,
बाजो ढोल-नगारे।
शाशु शौरे लागे पुछदे कमला,
तीं किए हाया रे इशारे ॥
घौरा पौरे थी आज लाड़ी म्हारी कमला ऊँदे सामणी बागा।
देशै वी देशै मन्ने देवते मामुए, सत म्हारी मामी लै नि लागा
कमला लागी म्हारी बोलदे शान्तुलें, चाल हामा घौरा लै जाणा
चीए बी लौंगी यारे तीं देरेवली, आटा बे बाजे छोड़े पराणा ॥

स्वरलिपि

x			0			x			0		
- -	रेम	गरे	सा-	- -	रेसा	निप	पनि	पम	पनि	सारे	रे -
ऽऽ	ओरै	बोऽ	लाऽ	तेऽ	राऽ	ऽऽ	घर	गऽ	रांऽ	वोंऽ	गेऽ
रेग	रेम	गरे	सा-	- -	निप	नि-	सा-	- -	- -	- -	- -
ऽऽ	पोरे	पाऽ	णीऽ	राऽ	ऽऽ	छो	आ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
- -	रेम	गरे	सा-	- -	रेनि	-	पनि	पम	पनि	सारे	रे
ऽऽ	छोआ	लाऽ	ड़ीऽ	एऽ	ऽऽ	ऽऽ	कम	लाऽ	आऽ	रीऽ	ए
- -	रेम	ग-	(नि)सा-	रेनि	निप	नि-	सा	-	-	-	-
ऽऽ	पोरे	पाऽ	णी	राड	ऽऽ	छो	आ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
ऽऽ	रेम	ग-	(रे)सा-	(सा)रे	नि-	नि	पनि	पम	पनि	सारे	रे
ऽऽ	तुलै	राऽ	मऽ	ऽला	गाऽ	ऽ	बोल	लड़ी	कऽ	मऽ	ला
रेग	रेम	ग-	सा	रेसा	निप	नि	सा	-	-	-	-
किजे	तेरे	शाऽ	ऽ	लैऽ	ऽऽ	हो	आ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
म-	मग	गरे	सा-	रेनि	नि	-	पनि	पम	पनि	सारे	रे
हांय	गेऽ	लाऽ	ड़ीऽ	येऽ	ऽऽ	ऽ	कम	लाऽ	आ	रीऽ	ए
रेग	रेम	गरे	सा	-	निप	नि-	सा-	-	-	-	-
किजे	तेरे	शाऽ	ऽ	लै	ऽऽ	होऽ	आऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
- -	रेम	गरे	सा	सा	सा-	निप	निप	म-	पनि	सारे	रे
ऽऽ	घौरा	पोऽ	रे	थी	आज	लाऽ	ड़ीम्हा	रीऽ	कऽ	मऽ	लाऽ
रेग	रेभ	ग-	सा	सा-	निप	नि-	सा-	-	पनि	सारे	रे
ऊंऽ	देऽ	सा	म	णीऽ	ऽऽ	बाऽ	गाऽ	ऽ	कऽ	मऽ	लाऽ

शेष पंक्तियां भी इसी धुन में गाई जाती हैं।

हिमाचल प्रदेश के गाथा गीतों की शैलियाँ

डॉ॰ इन्द्राणी चक्रवर्ती

गाथाओं का इतिहास वैदिक काल से जोड़ा जा सकता है। एक विशिष्ट तथा परम्परागत गीत प्रकार जो धार्मिक तथा लौकिक समारोहों में गाया जाता रहा है, 'गाथा' कहलाती है। ऋग्वेद के ब्राह्मणों में गाथाओं का बहुतायत उल्लेख मिलता है। अश्वमेध यज्ञ में गाथाओं का गान ब्राह्मण तथा क्षत्रिय गायकों द्वारा किया जाता था। प्राचीन परम्परा पर अधिष्ठित होने के कारण इन गाथाओं को ऋचाओं के समान बताया गया है। इन गाथाओं के गायक'गाथिन्' कहलाते थे(शतपथ ब्राह्मण 1.7.1.)। संवाद के रूप में भी गाथाओं का गान किया जाता था। जैसे--यमयमी संवाद, उर्वशी-पुरूरवा की गाथा इत्यादि।

यजुर्वेद के वाङ्.मय में 'महाव्रत' नामक सोमयाग में कलशधारिणी दासियों का गोलाकार नृत्य पद-क्रम, लय के अनुसार होता था। यह गीत-प्रकार 'गाथा' नाम से उल्लिखित है। सूत्र वाङ्मय में गाथाओं के निम्न अभिधान पाये जाते हैं– हिल्लका, हिम्बिनी, हस्ताबारा, सम्वत्सर-गाथा, मिल्लुका इत्यादि (द्र॰ आपस्तम्ब श्रौत, 21-19,20 तथा अन्य श्रौत सूत्र)। नृत्य के समय प्रत्येक गीत का गान जोड़ी के गायकों द्वारा होता था और सभी गाथाओं के अन्त में "है महा इदं मधु हिव्लिहिल्लि" इस पंक्ति का सामूहिक गान होता था। आज के गीतों में 'टेक' से इसका संबंध जोड़ सकते हैं।

गाथादि गीतों का स्वरूप परम्परागत वीर काव्यों के समान था। यह लौकिक संगीत था किन्तु याग यज्ञ में भी इनका आदरपूर्वक प्रदर्शन किया जाता था। 'सूत' नामक जाति गाथा गीत तथा नृत्य किया करते थे।

गाथाओं का उल्लेख वेदेतर साहित्य जैसे उपनिषद् व शिक्षाग्रन्थों में किया गया है।

पुराण काल में गाथा-गीतों की परम्परा अधिक सशक्त बनी और अनेकों कथानक जुड़ते चले गए। रामायण तथा महाभारत इनमें सर्वश्रेष्ठ हैं। इन्हीं दो

महाकाव्यों की महागाथाओं पर आश्रित कर भारत तथा अन्य देशों में अनेक खंड काव्यों तथा कथानकों की रचना हुई और गाथा के रूप में गाये जाने लगे। क्षेत्रीय संस्कृति में पनपी ये गाथाएँ अपनी अलग पहचान भी बनायी हुई हैं; जो उनकी भाषा, संगीत, स्वर तथा प्रस्तुत करने के तरीके से विशिष्ट तथा परस्पर भिन्न लगते हैं।

हिमाचल प्रदेश भारत का एक सुन्दर पहाड़ी प्रदेश होने के साथ-साथ अपनी विशिष्ट संस्कृति के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध है। लोक-साहित्य तथा लोकसंगीत के क्षेत्र में यह प्रान्त अत्यन्त समृद्ध है। यहाँ के लोक साहित्य में गाथाओं का प्रचुर भंडार मिलता है। इन लोकगाथाओं को यहाँ के भावपूर्ण सरल तथा सरस संगीत ने अमरत्व प्रदान किया है जो स्वाभविक रूप से स्वर, लय, यति आदि से सुशोभित है।

इस प्रान्त की गाथाओं की अमूल्य निधि को परम्परागत रूप से संजोये रखने में सांगीतिक तत्त्व का प्रमुख हाथ रहा है। यहाँ की संगीतात्मक शैलियों ने न केवल पहाड़ी प्रदेश की कोमल भावनाओं से युक्त लोक साहित्य को जीवित रखा अपितु इसे इतना प्रभावपूर्ण बना दिया है कि यह बिना किसी अवरोध से पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही हैं।

हिमाचल प्रान्त के गाथा-गीतों की विषयवस्तु बहुत ही विस्तृत है। क्षेत्र विशेष की गाथाएँ भी विशिष्ट हैं, जो जनमानस में अत्यन्त लोकप्रिय हैं। यहाँ के विभिन्न क्षेत्रों में भौगोलिक भिन्नताएँ होने के कारण अनेकों क्षेत्रीय संस्कृतियाँ पनपीं और विकसित हुई हैं। अतः इन विभिन्नताओं के कारण यहाँ अलग-अलग क्षेत्र की अलग-अलग लोककथा, लोकगीत, लोकगाथा, लोक सुभाषित, नाट्य तथा वर्ण्य-विषय प्रचलित हैं, जो साहित्यिक तथा सांगीतिक दोनों दृष्टि से महत्त्व रखते हैं।

कथा : कथा या कथानक का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव सभ्यता तथा संस्कृति का। लोक मानस का हर तत्त्व कथानकों में निहित होता है और साथ ही एक परम्परा से सम्पर्क।

मानव जीवन में घटित घटनाओं से मनुष्य जो कुछ सीखता है, उसकी अभिव्यक्ति ही लोककथाओं में मिलती है। लोक जीवन के हर पहलू व घटनाओं का जीवन्त वर्णन कथाओं में मिलता है। इन कथाओं से हम मानव जाति अथवा क्षेत्र विशेष के आचार-विचार, रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास, रहन-सहन, आशा-निराशा, सुख-दुःख की सुन्दर झाँकी पा सकते हैं। लोककथा में उपदेशात्मक प्रवृत्ति की प्रधानता रहती है, साथ ही कथावस्तु की स्थापना क्षेत्र-विशेष से सम्बन्धित और कौतुहल व जिज्ञासा के आधार पर होती है। कथा को 'साका' या 'किस्सा' भी कहा जाता है तथा यह छोटी-छोटी घटनाओं को लेकर गायी जाती है।

गाथा : गाथा वह कथानक है जो गेय छन्दों में लिखी होती है अथवा मौखिक

परम्परा से याद की जाती है। लम्बे कथानक वाली पद्यबद्ध कथा 'गाथा ' कहलाती है। यह अपने में एक इतिहास समेटे है। इनमें गेय तत्त्व की प्रधानता है। जीवन की पूर्ण अभिव्यक्ति इन गाथाओं में प्रतिफलित होती है। गाथाएँ अपने जनपद का समग्र चित्र प्रस्तुत करती हैं, जिन्हें कोई लेखक अथवा कवि अपने मानसिक पटल की रचना होने का दावा नहीं कर सकता, बल्कि यह मानव-संवेग के रूप में स्वयं ही फूट निकलती हैं और विषयवस्तु आगे-आगे जुड़ती चली जाती है। कहीं-कहीं इसका प्रभाव इतना तीव्र होता है कि ये अपने में सभी भाव-भूमिओं अर्थात् समाज, इतिहास, दर्शन, धार्मिक विचारों एवं लोक विश्वास को समा लेती है।

गाथाओं का विषय सामाजिक इतिहास, जाति, धर्म या कोई अन्य पौराणिक घटना भी हो सकती है। एक गाथा युगों तक चलती रहती है, परन्तु जब गायक अपने समयानुसार इसमें नवीन विचार मिला देता है, तो गाथा का स्वरूप परिवर्तित हो जाता है। गाथा के चित्रण से हमें कई सौ वर्ष पूर्व की सभ्यता के ऐतिहासिक दिग्दर्शन प्राप्त हो जाते हैं। हाँ, प्रायः उनमें क्षेत्र विशेष के काल्पनिक पुट का भी समावेश दिख जाता है।

गाथाएँ मानव जीवन की हर अनुभूतियों, रहस्यों, उपाख्यानों, रीति-रिवाजों आदि को विस्तृत कथानक के रूप में प्रस्तुत करती हैं। लोकधर्मी जीवन में हर घटनाओं को लिखने या पढ़ने की व्यवस्था नहीं है। अतः पीढ़ी दर पीढ़ी जीवन के मूल्यबोध को बरकरार रखने के लिए मौखिक परम्परा ही श्रेष्ठ शिक्षक रही है, क्योंकि लिखी गई घटनाओं से कही गई बातें अधिक फलदायी और तुरन्त प्रभावी होती हैं। लोकगाथाएँ इन कार्यों में सदा ही सक्षम रही हैं। कथा और गाथा में थोड़ा अन्तर रहता है।

गेयरूप : गाथाओं पर आधारित गेय छन्दों में लिखी गई कथावस्तु का विशेष तात्पर्य छन्दोबद्ध गीतों की कथाओं से है। इनमें अधिकतर कथावस्तु पौराणिक है जो परम्परागत रूप से चली आ रही है। ये गाथाएँ छन्दोबद्ध गीत हैं और एक ताल-लय के साथ गायी जाती हैं। अर्थात् इनमें मुख्यतः स्थायी की स्वरावली होती है, पर 'अन्तरा' नहीं होता।

पुरातन संस्कृति में और पूर्ण इतिहास के आधार पर समाज में धार्मिक आस्था तथा परम्परागत परिपाटी को वंशानुगत रूप में कायम रखने हेतु रामायण, महाभारत तथा अन्य पौराणिक गाथाएं अधिकतर गीत रूप में ही स्मरण रखी जाती हैं और आज भी समाज बहुत आदर से इन गाथा-गीतों के माध्यम से मौखिक परम्परा के आधार पर पौराणिक कथाओं को स्मरण रखते हैं।

हिमाचल प्रदेश के गाथा गीत : जिस तरह आर्य सभ्यता लोक परम्परा की देन है, उसी प्रकार गाथाएँ भी आर्य तथा आर्येतर संस्कृति` जुड़ी हैं तथा ये परस्पर

आदान-प्रदान का फल भी हैं। जिन उपादानों से धार्मिक गाथाओं का जन्म हुआ, उन्हीं से प्रान्त विशेष की लोक-गाथा, लोक,-वार्ता तथा लोक-कथाओं की उत्पत्ति हुई। हिमाचल प्रदेश के गाथा-गीतों का भी यही इतिहास है। प्रदेश की अधिकांश गाथाएँ पौराणिक हैं तथा इनका सम्बन्ध धर्म सापेक्ष है। प्रदेश के अलग-अलग क्षेत्र में अलग-अलग गाथाओंका गान होता है। जहाँ एक ओर सृष्टि तथा मानव की उत्पत्ति से सम्बन्धित गाथा-गीत 'ऐंचली' गाया जाता है, वहीं रामायण, महाभारत व गुग्गा-पीर जैसी पौराणिक कथावस्तु पर निर्मित गाथाओं का गान होता है। हिमाचल के कुछ मुख्य गाथागीतों के नाम इस प्रकार हैं–

(क) ऐंचली : चम्बा के गाद्दी क्षेत्र, किन्नौर क्षेत्र।

(ख) (महा) भारत, पवाड़े, पंडवायन,भरथरी (भर्तृहरि), होकु मियाँ की हार (वीर गाथा) सामा- दौलतु की हार : सिरमौर, महासुवी क्षेत्र।

(ग) गुग्गा जाहर पीर की गाथा : कांगड़ा, हमीरपुर, ऊना, बिलासपुर, मंडी, चम्बा, सिरमौर के बल्ह क्षेत्र आदि।

(घ) झेड़े : बिलासपुर व हमीरपुर।

(च) रामायण : हिमाचल का लगभग सम्पूर्ण क्षेत्र।

(छ) ब्रलाज (बलिराज) : सिरमौर, शिमला, मण्डी व सोलन जिले के कुछ भाग।

(ज) सती चैन्खी की गाथा : जुब्बल, रोहडू आदि ।

गाथागीतों की शैलियाँ : उपर्युक्त गाथाओं में कुछ शैलियों का वर्णन यहां प्रस्तुत है जिनका प्रचलन हिमाचल के विभिन्न क्षेत्रों में है।

ऐंचली–सृष्टि की उत्पत्ति सम्बन्धी गाथाओं को 'ऐंचली' कहा जाता है। 'ऐंचली' चम्बा के भरमौर क्षेत्र में पर्याप्त रूप से प्रचलित है। इसके अतिरिक्त किन्नौर में सृष्टि की उत्पत्ति से सम्बन्धित लगभग इसी प्रकार की गाथा गाई जाती है, जिसे 'यूकुंतरस' या 'मादेव यूकुंतरास' कहा जाता है।

'ऐंचली' शब्द हिमांचली या 'हिम का पर्वतीय क्षेत्र' शब्द से जोड़ा जा सकता है। सृष्टि के निर्माण सम्बन्धी यह गीत अत्यन्त प्राचीन है तथा भाषागत भेद होते हुए भी मूल कथानक लगभग एक जैसा है। आदिम मानव तथा पृथ्वी की सृष्टि के बारे में गाये जाने वाले कथानक भारतीय परम्परा में प्रचलित पुरागाथाओं का अवशेष 'ऐंचली' गाथा-गीत में सुरक्षित है। यह नृतात्त्विक दृष्टि से भी अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

स्थान व काल में परिवर्तन के साथ-साथ इनके भाषागत अन्तर भी देखे जा सकते हैं। गाद्दी क्षेत्र में प्रचलित 'ऐंचली' गाथा का अंश इस प्रकार है–

1. न थीये धरणी न थीये गासा, तां थीआ न्हेर ग्वारा न।
   न थीये चन्द्र न थीये सूरज, तां थीआ न्हेर ग्वारा न।।

न थीये तारा न थीये ब्याहणु, तां थीआ न्हेर ग्वारा न।
न थीये पौण न थीये पाणी, तां थीआ न्हेर ग्वारा न।।

2. न वो थीये धरती, न वो आकासा
थीया वो घनघोर अन्धेरा
पहिले आये बरमा, फिरी आये विष्णु
फिरी आये आथु महादेवा।

चम्बा क्षेत्र में प्रचलित अन्य ऐंचली गाथा में गुरु द्वारा गुग्गल की धूनी धधकाने, धूनी की राख से मनसा देवी का जन्म, गुरु की कुदृष्टि से मनसा के गर्भ से क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा भोला स्वामी (महादेव) का जन्म, गुरु द्वारा सृष्टि का बँटवारा तथा माटी के मानव का निर्माण आदि की कथा है। किन्नौर क्षेत्र की ऐंचली या यूकुंतरस में देवताओं की उत्पत्ति बुलबुले या अंडे से मानी गई है। यहाँ प्रथम देवता महादेव माना गया जिनके अंग से विष्णु व ब्रह्मा तथा सूर्य-चन्द्र का जन्म हुआ। कथावस्तु में थोड़ा-बहुत अन्तर होते हुए भी इन गाथाओं में आधारभूत समानताएँ दिखती हैं।

गुग्गा जाहर पीर के गाथा—गीतों आरम्भ में 'गवाह' या प्रार्थना गाए जाने की प्रथा है। यहाँ भी सृष्टि की उत्पत्ति का संक्षेप में वर्णन मिलता है।

ऐंचली गाथा के प्रारम्भ की कुछ पंक्तियों की स्वरलिपि निम्नलिखित है। चूँकि गाथाओं में अन्तरा की अलग स्वरावली नहीं होती, अतः सम्पूर्ण गीत मुख्यतः स्थायी की धुन पर ही गाया जाता है।

स्वरलिपि–

सा	सा	-	सा	-	सा	-	ग	ग	-	म	-	-	-
न	वो	ऽ	थी	ऽ	ये	ऽ	ध	र	ऽ	ती	ऽ	ऽ	ऽ
सा	प	-	प	-	प	-	म	-	-	ग	-	रे	सा
न	वो	ऽ	आ	ऽ	ऽ	ऽ	का	ऽ	ऽ	सा	ऽ	ऽ	ऽ
सा	प	-	प	-	प	-	म	-	-	ग॒	-	सा	-
थी	वो	ऽ	घ	ऽ	न	ऽ	घो	ऽ	ऽ	र	ऽ	अं	ऽ
म	-	-	म	-	-	प	ग॒	-	-	रे	-	सा	-
धे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	रा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

इसी तर्ज पर पूरी गाथा गाई जाती है।

यह गाथा- गीत 7 मात्रा के चम्बयाली ताल में निबद्ध है। यद्यपि इन स्वरों में राग छाया नहीं दिखती, किन्तु दोनों गान्धार के विशेष प्रयोग से एक खास वातावरण का निर्माण अवश्य होता है।

रामायण की गाथा : रामायण की गाथा समस्त भारत तथा भारत के बाहरी देशों मे भी गाई जाती है। प्रसंग, भाषा, संगीत तथा वेशभूषा में अन्तर होते हुए भी मूल कथा एक होती है। शिमला तथा सिरमौर के जनपद में रामायण का गान लोग बड़े रुचि से सुनते हैं। रोचक बात यह है कि अपने स्थान में बजाई जाने वाली वीणा का वर्णन भी इन गाथाओं में किया गया है।

रावण का साधू-वेश धारण कर सीता-हरण करने के प्रसंग में किंगरी (किन्नरी) का वर्णन है, जो स्पष्ट करता है कि रामायण का कथाकार अपने समय की विशिष्ट वीणा का किस प्रकार गीत में उपयोग करता है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि किंगरी या किन्नरी वीणा यहाँ एक लोकप्रिय वाद्य रही है। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

सुनुए मौते किंदरे लाए रे।
रामो री राणिए बाय रे आए रे।
बाजि किन्दरे-किन्दरीरे तार रे।
नि अ सितोला रावणे हार रे।

स्वरलिपि

सा	रे	-	-	सा	नि॒	सा	-	रे	-	-	-	सा	नि॒	सा	-
ऽ	सु	नु	ए	मौ	ऽ	ते	ऽ	किं	द	रे	ऽ	ला	ए	रे	-
सा	रे	-	-	स	नि॒	सा	-	रे	-	-	-	सा	नि॒	सा	-
ऽ	रा	मो	री	रा	णि	ए	ऽ	बा	य	रे	ऽ	आ	ए	रे	ऽ

गीत केवल तीन स्वरों में ही निबद्ध है। ताल 16 मात्रा की 5 ताली की नाटी ताल में है।

रामायण का एक और प्रसंग, जिसमें हनुमान द्वारा लंकापुरी को तहस-नहस करने का वर्णन है, निम्नलिखित है। यह शिमला जनपद में गाया जाता है।

सीतला राणिये भूखड़े लागि। सीतला राणिये भूखड़े लागि।
बुरे ओ बाइया लांकेरे हेड़े। बुरे ओ मेरेया लांकेरे हेड़े।
देवले मेरेया जांनिये घाये। देवले मेरेया जानिये घाये।
शड़े पड़े फलक खामा। शड़े पड़े फलक खामा।
बाड़िये तेरी हाथ न लामा। बाड़िये तेरी हाथ न लामा।
मारी न लांके बांदर थिये। इयें आणे राम री सिये।
लांके रे राईये पाकड़े घाला। नियां भाईयो दशे दवारे।
आपणें मऊत आफिये दसू। ऐरा हणु कदि न मर।
शाट-मण आणो रूं अ तेल। मरदे देखे हणु रे खेल।
विड़े-विड़े आगडू बेशे। मायड़े मायड़े पाछडू बेशे।
रूं अ तेल पुन्जड़ी बानो। हणु री पूंजड़ी लाये न आग।
हणुये दिता मुन्नगरे गेरा। एकी फेरेदा शये अ शाठ।
दुजे फेरेदा पुरा लाख। तिरि अ मगीरी गे पोरा।
तिरि मगीरी गे पोरा। सोने रे लान्का फूकेय लाये।
हणु ये लाये उल्टे छाल। हणु समुन्दर-दा कूदा।

स्वरलिपि

सा	सा	सा	सा	सा	निप़	प़	प़	प़	नि़	सा	-
सी	त	ला	रा	णि	येऽ	भू	ख	ड़े	ला	गे	ऽ
सा	सा	सा	सा	सा	निप़	प़	प़	प़	नि़	सा	-
सी	त	ला	रा	णि	येऽ	भू	ख	ड़े	ला	गे	ऽ
रे	रे	रे	रे	सा	नि़	नि़	प़	प़	नि़	सा	-
बू	रे	ओ	मे	रे	या	लां	के	रे	हे	ड़े	ऽ
रे	रे	रे	रे	सा	नि़	नि़	प़	प़	नि़	सा	-
बू	रे	ओ	मे	रे	या	लां	के	रे	हे	ड़े	ऽ

यह गीत चार स्वरों से निर्मित है तथा गीत का झुकाव मन्द्र सप्तक की ओर है।

सिरमौर के विभिन्न गाथागीतों में से हम तीन गाथाओं का यहाँ विवेचन करेंगे। इन गाथाओं की गान-शैली में यह स्पष्ट करना उचित है कि सिरमौर में गायी जाने वाली गाथाओं के गायक बराबर दो भागों में विभक्त हो जाते हैं। सामान्यतः इनकी

संख्या चार-चार की होती है। आरम्भ करने वाले गायकों का दल, प्रथम पंक्ति समाप्त करने के पश्चात् उसी स्वर पर न्यास करता है, जिस स्वर पर (षड्ज, मध्यम या पंचम) ताल के अनुसार एक आवर्तन पूरा होता है। इसी बीच दूसरा गायक दल अगली पंक्ति का उठान लेता है। आगे दी गई 'पंडवायण' तथा सामा-दौलतु की हार' नामक गाथा की स्वरलिपि में इसका प्रमाण देखा जा सकता है। इन गाथाओं को गाते समय हायरे' या 'लागे' इत्यादि शब्दों की 'टेक' दी जाती है। टेक देने की परम्परा वैदिक काल में भी थी। प्रबन्ध के आरम्भ में ऐसी टेक का उदाहरण दिया गया है।

उपर्युक्त गाथा में स्वर भराव के लिए संवादी स्वर (सा-प) का प्रयोग एक विशेष आकर्षण बिन्दु बन जाता है। गाथाओं को गाने वाले गायक दो पंक्ति के बीच में बराबर स्वरों के भराव का प्रयोग करते हैं ये हारुल या गाथा बिना किसी बाधा के घंटों तक और कभी-कभी रात भर गायी जाती है।

वाद्य

गाथाओं में प्रयुक्त होने वाले वाद्य हैं—खंजरी, घड़ा, हुड़क व ढोलक।

विशेष पर्व पर कई हुड़क (हुडुक्का) बजते हैं।

वीर गाथा को स्थानीय बोली में 'हारुल' या 'हार' कहा जाता है।

उदाहरण—पंडवायन, भरथरि, होकू मियाँ तथा सामादौलतु की हार आदि।

बोल(पंडवायण)

आवन्दा नि भाईयो हाण्डे भीतरा हाण्डा।
फिरी-फिरी खुबला झाल़ रा काण्डा ॥
कुण बड़ा छतरी कुणजा बड़ा खाण्डा।
बाणो छाड़ा आगनी धोखे दा पाण्डा ॥
मामे तेरे शकुनीए बातो लोई लाए रे।
जितणा तेरे जोध धारो कुढ़ासनी री आए रे ॥

(यह गाथा अत्यधिक लम्बी है अतः कुछ अंश लिखे गए हैं)

भावार्थ : इस 'पंडवायण' गाथा में कौरव-पांडव के पारस्परिक मतभेद तथा क्रमशः बढ़ती हुई शक्ति का वर्णन किया गया है।

एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं, इसलिए अपनी-अपनी शक्ति और पराक्रम दिखाना आवश्यक है। कौरव-पांडव का घमासान युद्ध 'कुड़ासणी' (कुरुक्षेत्र) नामक स्थान पर हुआ।

स्वरलिपि

-	नि	-	-	सा	-	ग	-	-	म	-	प	म	-	ग	-
ऽ	आ	ऽ	वं	दा	ऽ	नि	ऽ	ऽ	भा	ई	यो	आं	ऽ	डे	ऽ
-,	म	-	प	म	-	ग	रे	सा	-	-	-	-	-	-	-
ऽ	भी	ऽ	त	रा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	हां	डा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
प	-	-	-	-	-	-	-	-	म	-	प	म	-	ग	-
रे	कु	ऽ	ण	ऽ	ब	ड़ा	ऽ	ऽ	छ	ऽ	त	री	ऽ	ऽ	ऽ
-,	म	-	प	म	-	ग	रे	सा	-	-	-	-	-	-	-
ऽ	कु	ऽ	ण	जा	ऽ	ब	ड़ा	ऽ	खां	डा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

लोकगाथा के समस्त पद इन्हीं स्वरावलियों के अनुसार गाए जाते हैं।

राग छाया

ऊपरोल्लिखित लोकगाथा का स्वर क्षेत्र मन्द्र कोमल निषाद से मध्य पंचम स्वर तक सीमित है। प्रारम्भिक स्वर नि सा ग् म प में राग भीमपलासी अथवा धनाश्री रागों की स्पष्ट छाया दिखाई देती है। प ग की सुन्दर संगति और बराबर रूप में पंचम स्वर के चमकते रहने से यह धनाश्री राग से अधिक प्रभावित दिखती है। ऋषभ स्वर का अल्प प्रयोग है। गीत की दूसरी पंक्ति (हाय रे) प्रायः मध्य पंचम स्वर से उठाई जाती है। इस प्रकार पंचम और षड़ज स्वरों पर विशेष न्यास किये जाने से भी इसमें धनाश्री राग की अधिक छाया पड़ी है।

होकू मियाँ की हार (वीर गाथा)

बोल–

हो बोलो भेऊता देणा लाशां दुड़ो वे मेरे, पाछड़े पाई
पाछड़े, आखरो बे चारो होकू री देणी आगड़े री लाई

(यह भी अत्यधिक लम्बी गाथा है)

भावार्थ : हारुलों के गायक दो ग्रुपों में बंट जाते हैं। पहला ग्रुप प्रथम पंक्ति गाने के पश्चात् चुप हो जाता है तथा उन्हीं पंक्तियों को दूसरा ग्रुप शब्दों के तनिक हेर-फेर में उठान भरता हुआ गाता है।

उपर्युक्त गाथा में प्रथम ग्रुप ने 'हो बोलो' तथा दूसरे ग्रुप ने 'ई बोलो' शब्दों को आरम्भिक स्थान दिया है। इससे सा और नि का विचित्र संवाद उभरता रहता है।

लगभग सवा तीन सौ साल पूर्व राजा बुद्ध प्रकाश (1664-81) के देहावसान के पश्चात् शासन की बागडोर दोलू मेहता नामक वज़ीर के हाथों सौंपी गई। उसने मनमाने ढंग से स्थानीय जनता को आतंकित किया। फिर होकू मियाँ नामक योद्धा ने 500 नवयुवकों की फौज का गठन किया तथा अन्याय व अत्याचार के विरुद्ध नाहन जाकर शासक वर्ग को युद्ध के लिए ललकारा। अन्त में उसे धोखे से मार दिया गया।

स्वरलिपि

नि ध नि ध प- ध- - म मप ध मम - (म)सां नि - ध
हो ऽ बो लो भेउ ताऽ ऽ दे णाऽ ऽऽऽ लाऽ ऽ शां दोउ ड़ो ऽ

मप (ध)पम म - म प प- -म ग रे सा - - - - - -
म्हा ऽऽ रे ला पा ऽ ऽऽऽ छ ऽ ऽ ड़े ऽ पा ऽ ऽ ऽ

सा - - प प - - - म - - - म प नि ध
ई ऽ ऽ हो पा ऽ ऽ छ ऽ ऽ ड़े ऽ पा ई रो बे

प म ग रे गरे - - म ग रे सा - प - - -
दे ऽ णा ला पाऽ ऽ ऽ छ ऽ ऽ ड़े ऽ पा ऽ ऽ ऽ

नि ध नि ध प- ध- - म
ई ऽ बो लो भेइ ताड ऽ दे

राग छाया

गाथा में मध्य सप्तकीय स्वर-प्रयोग अवरोही ढंग से हुआ है। कोमल गान्धार तथा कोमल निषाद का प्रयोग भी अपने ही ढंग से हुआ है। प्रारम्भिक स्वरों, नि ध नि ध, सां नि ध प, म ग, रे सा, का स्पर्श होते ही सिन्दुरा (काफी-थाट) की छाया उभर आती है। म प, नि ध प म ग रे, स्वर समुदाय में यह और भी स्पष्ट हो जाती है।

इस गाथा में पूरे सप्तकीय स्वरों का प्रयोग होने से इसे सिन्दुरा का अधिक सामीप्य प्राप्त हुआ है।

'षड्ज' पर विशेष रूप से न्यास और 'पंचम' का वादी-संवादी के समान संवाद-भाव भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं।

भरतरी[1]

राजा 'भर्तृहरि' (भरथरि) की (आंशिक रूप में) गाथा स्थानीय गायक दो प्रकार की धुनों में गाते हैं।

बोल–

कोठणो कामों, जोगी पोड़ा ला धारणा।
राजे दीता भरतरी के राणिए फिटकारो।
तूनी राजा बोलो हेड़ा खेलदे, तू खांदा ना शिकारो

राजा भरथ हरि की राणी पिंगला ने राजा को ताना दिया कि आप राकुमार होते हुये भी शिकार नहीं खेलते न ही मांस खाते हैं यह बात सुन कर राजा भरथरी ने संन्यास धारण किया, भगवें वस्त्र पहनें और पूर्व दिशा की ओर चल दिये। रानी पिंगला उन्हें संन्यास धारण न करने का आग्रह करती है परन्तु राजा उसकी बात नहीं मानता।

पहला प्रकार–

इस धुन के भी दो भाग हैं। प्रथम भाग में राजा भर्तृहरि तथा दूसरे में रानी पिंगला का वर्णन किया गया है।

---

1. सिरमौर के रेणुका, 'संगड़ाह तथा शिलाई क्षेत्रों में 'भरतरी' गायन को सुनकर महिलाओं में स्थानीय देवता प्रकट हो जाता है।

स्वरलिपि

- रे - म म - - ग - रे ग - - - - -

- को ऽ ठ णो ऽ ऽ ऽ ऽ का ऽ मो ऽ ऽ ऽ ऽ

- म - ग रे - सा नि़ - सा - - - ग - $^{\text{रे}}$सा

ऽ जो ऽ गी पो ऽ ड़ा ला ऽ धा र णा ऽ बो ड़ा ऽ

- सा - - - - - - - - सा रे - म - -

ऽ को ऽ ठ णो ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ रे ऽ ऽ ना री णा

- रे म म - - ग

ऽ को ऽ ठ णो ऽ ऽ ऽ

- सा - रे म - - - - - प म ग - - -

ऽ रा ऽ जे दी ऽ ता ऽ ऽ भ र त री ऽ के ऽ

- ग म ग रे - सा - - रे - सा नि़ - - -

ऽ रा णी ऽ ये ऽ फि ट ऽ का रो ऽ ला ऽ ऽ ऽ

नि रे - - - - - - - - सा नि़ सा - - -

ऽ उ के ऽ रा ऽ जे ऽ ऽ हे डू ऽ खे ऽ ल दे

- ग - - रे - नि - - सा - - - - - -

तू खां ई दा ना ऽ शि ऽ ऽ का ऽ रो ला ऽ ऽ ऽ

दूसरा प्रकार–

1			2			3				4		5			
सां	-	-	-	-	-	सांनि	रेंसां	-	नि	-	-	ध	प	-	-
ओ	आ	मे	छो	ऽ	ड़ि	योऽ	ऽऽ	ऽ	पा	ऽ	पि	या	ऽ	तू	ऽ
-	प	ध	म	-	-	ध	प	म	-	ग	रे	सानि	-	-	-
ऽ	को	सी	दे	शो	ऽ	के	ऽ,	ऽ	चा	ला	ऽ	ला	ऽ	ऽ	ऽ
नि	रे	-	-	-	-	-	नि	-	सा	-	-	-	ग	-	-
ऽ	रा	ऽ	णी	ऽ	यां	बो	लो	ऽ	पिं	ग	ला	ऽ	ते	ऽ	रे
-	ग	प	म	ग	-	रे	नि	-	सा	-	-	-	-	-	-
ऽ	भो	गु	ऽ	ए	ऽ	रा	ऽ	ऽ	पा	ला	ऽ	ला	ऽ	ऽ	ऽ

राग छाया

उपर्युक्त धुनों के प्रथम प्रकार में रे म, म ग रे सा, स्वरों में राग **झिंझोटी** की छाया झलकती है। इसी गाथा की दूसरी धुन में, आरम्भिक स्वरों, सां – – **नि** ध प, ध प म ग रे सा के प्रयोग में भी झिंझोटी राग की छाया स्पष्ट है। प्रथम धुन का विस्तार मन्द्र निषाद से मध्य पंचम तक है। झिंझोटी राग का विस्तार भी प्रायः मन्द्र व मध्य स्थानों तक किया जाता है। दूसरी धुन में तार 'सां' का अधिक प्रयोग तथा मन्द्र कोमल निषाद पर न्यास करने का प्रयोग विशेष ढंग से दिखाया गया है। सां, सां रें **नि** ध, स्वरों में **सोरठ** राग की थोडी छाया दिखती है, परन्तु ज्यों ही गीत में म ग रें सा, स्वर समूह आता है, यह छाया नष्ट हो जाती है।

ताल

उपर्युक्त भरथरि या भरतरि गाथा 'गीह' ताल में गायी जाती है। गीह ताल 16 मात्राओं की होती है। ताली प्रयोग के आधार पर इसके दो प्रकार हो सकते हैं।

प्रथम प्रकार–

धिं कड़ धी ना	धि धि ना किड़	धि धि ना कड़	धि ना	धिड़ धिड़

चार मात्रिक लय के आधार पर बराबर की लय में क्रमशः पहली, पाँचवीं, नवीं और तेरहवीं मात्रा पर नगाड़े की छड़ी से चोट की जाती है।

दूसरा प्रकार : यही गीह का वास्तविक ताल है। इसके बोल मनगढ़न्त रूप में ध्वनि के आधार पर माने जाते हैं। मात्राओं का विभाजन 3, 3, 4, 2, 4, है और नगाड़े की छड़ी क्रमशः 1,4,7,11 और 13 मात्राओं पर पड़ती है।

(ग) सामा-दौलतू की हार (वीरगाथा)

इस गाथा में प्रथम पंक्ति का आरम्भ प्रथम दल द्वारा इस प्रकार किया जाता है–

बोल :

लागे धौले केसो तोबे, बुड़े होए मामा ताऊआ
कोथे हिंस्से रा देशो कोथे हिंस्से री बागोटी

भावार्थ : इस गाथा में दो भाइयों सामा और दौलतू के परस्पर झगड़े का वर्णन है। जमीन का बँटवारा झगड़े का मुख्य कारण था। बड़ा भाई सामा था जिसने जमीन का अधिक हिस्सा हथिया लिया था। छोटे भाई के अनुरोध पर झगड़ा शुरु हो गया। दोनों ही परिवार के सदस्य इससे हताहत हुए। जब नाहन के राजा को इस झगड़े का पता चला तो दौलतू की सहायता के लिए फौज के जवानों को भेजा गया।

स्वरलिपि

x				x				x				x			
सां	-	-	नि॒	ध	प	-	-	म	-	ग॒	-	प	-	-	म
ला	गे	ऽ	धौ	ऽ	ऽ	ले	ऽ	के	ऽ	सो	ऽ	जो	ऽ	बे	ला
प	-	-	म	ग॒	रे	ग॒	म	^{म}ग$^{सा}$	रे	सा	-	-	-	-	प
बु	ड़े	ऽ	हो	ए	ऽ	मा	मा	ता	ऽ	ऊ	ऽ	आ	ऽ	ऽ	हो
प	म	-	ग॒	ग॒	-	म	प	म	-	गरे	सा	सा	-	-	-
ला	गे	ऽ	धौ	ऽ	ऽ	ले	ऽ	के	ऽ	सोऽ	ऽ	तो	ऽ	बे	ऽ
म	-	-	ग॒	रे	-	ग॒	म	ग	-	रें	सा	-	-	-	-
बु	ड़े	ऽ	हो	ए	ऽ	मा	मा	ता	ऽ	ऊ	ऽ	आ	ऽ	ऽ	ऽ

दूसरा ग्रुप इसी पंक्ति को इस प्रकार उठान भरकर गाता है—

												-	-	प	म
												ऽ	ऽ	बो	लो
पध	निसां	-	नि	ध	प	-	-	म	-	ग	-	प	-	-	म
लाऽ	गेऽ	ऽ	धौ	ऽ	ऽ	ले	ऽ	के	ऽ	सो	ऽ	जो	ऽ	बो	लो

(अब प्रथम पंक्ति के अनुसार दोहराते हैं)

राग छाया

इस लोकगाथा का प्रारम्भ अवरोहात्मक ढंग से हुआ है। सां **नि** ध प, म ग रे सा स्वरों के बार-बार प्रयोग से **'काफी'** राग की प्रबल छाया दिखाई देती है। रे ग म, ग रे सा स्वरों में भी यही आभास होता है। प ध **नि** सां सां **नि** स्वरों का प्रयोग गीत के सौन्दर्य को और अधिक निखार प्रदान कर रहा है। 'मध्यम' स्वर भी गीत के मध्य कभी-कभी मधुर तथा चमत्कृत अवस्था में प्रयुक्त होता दिखाई देता है।

गाथाओं में प्रयुक्त किये जाने वाले वाद्य : उपर्युक्त गाथाओं में खंजरी, घड़ा, हुडुक और ढोलक का प्रयोग विशेष रूप से होता है। इनमें से हुडुक वाद्य का विशेष महत्व है और कहीं-कहीं एक से अधिक हुडुक का प्रयोग भी किया जाता है।

गुग्गा जाहरपीर की गाथा

गुग्गा गाथा हिमाचल के काँगड़ा, हमीरपुर, ऊना, बिलासपुर, मंडी, चम्बा, सिरमौर आदि क्षेत्रों में समान रूप से प्रचलित है। यद्यपि इस गाथा का मूल सम्बन्ध राजस्थान से माना जाता है, किन्तु हिमाचल के इन क्षेत्रों में गुग्गा गाथा बहुत लोकप्रिय है और इसका गान घंटों तक किया जाता है। गुग्गा को समर्पित स्थान को 'मढ़ी' या 'बान' कहा जाता है। इन स्थानों में यूँ तो वर्ष भर श्रद्धालु चले रहते हैं, किन्तु गुग्गा नवमीं को विशेष मेले लगते हैं। जिन स्थानों में गुग्गा देवता का प्रभाव अधिक है वहाँ हर घर के आँगन में घोड़े पर सवार गुग्गा की पत्थर की मूर्ति स्थापित की जाती है।

गुग्गा गाथा जिसे 'झेड़ा' या 'बार' भी कहते हैं, रक्षाबन्धन से श्रीकृष्ण जन्माष्टमी तक गायी जाती है। गायक समूह को 'मंडली' कहा जाता है, जो घर-घर जाकर गान करते हैं। गाने वालों में एक चेला, जो लोहे की छड़ी लिये रहता है, बजंत्री (थाली बजाने वाला जो प्रायः काँसे की होती है), एकतारा तथा डमरू वादक

होते हैं। गुग्गा जाहर पीर साँपों का देवता है। सर्प दंश से रक्षा करने वाले गुग्गा के स्थान पर कहीं-कहीं जादू-टोना करने वाले व्यक्ति का भी उल्लेख गाथाओं में होता है।

प्रथा के अनुसार गुग्गा जाहर पीर की गाथा गाने से पूर्व 'गवाह' गाया जाता है। 'गवाह' यानि साक्षी। कहीं-कहीं इसे 'प्रार्थना' भी कहा गया है। गवाह में बताया गया है पृथ्वी प्रारम्भ में अन्धकारमय थी। 'हुंकार' की ध्वनि स्वयं ही आरम्भ हुई और उसी से शिवजी का जन्म हुआ। शिवजी ने सूर्य और चाँद बनाए और उनके पसीने से तारामंडल बने। इससे थोड़ा अलग स्वरूप हमीरपुर क्षेत्र के गवाह या प्रार्थना में है। इसमें सागर के बीच से अकाल निर्वाण पुरुष का प्रकट होना बताया गया है। उन्होंने समुद्र के बीच तीन पत्ते पर बैठकर वेदों की रचना की। उनके वाम अंग से बाबा नानक तथा मन से मनसा देवी की उत्पत्ति हुई मनसा से अकाल पुरुष सृष्टि व मानव का निर्माण कराता है।

उदाहरण

न थी धरती न था कासा,
बरसेया धुंधुकारा
न था चन्द्र न था सूरज
न था नौ लख तारा।
न था कछुआ न था बछुआ
न था सरजन हारा।
बीच समुदरा प्रगट होया,
अलख पुरख नरवाणा
बीच समुदरा बड़ी दा बड़ोटु
तिन पत्ते लगदे डाला।
इक्की पत्ते पर आसन लगाया,
ता ते वेद बचारा।
बाएँ अंगे बाबा नानक पनपेया
मनसे मनसा माई।
तिन्नां पत्तेयां पर आसण लाये
बैठेया उगत कमाए।

हमीरपुर, काँगड़ा या बल्ह क्षेत्र की गाथाओं में भाषा भेद के साथ-साथ स्वर भेद भी मिलते हैं। यह परिवर्तन अन्य गाथाओं में भी द्रष्टव्य हैं।

गीत के साथ संगति के लिए डमरू, ढोल, थाल, टमामटु आदि वाद्यों का प्रयोग

होता है। गुग्गा गाथा-गीत में गुग्गा ताल का प्रयोग किया जाता है, जिसका पूरा आवर्त्तन 16 मात्रा के समान होता है। किन्तु तीन ताल की तरह चार-चार मात्राओं का समान भाग न होकर 3-3-4-3-3 होता है। गुग्गा ताल इस प्रकार है–

ता धिग धिग	धा धिग धिग	घ ग घ ग	ता ता ऽ	ता ता ऽ

हमीरपुर क्षेत्र में प्रचलित 'गुग्गा' गाथा का गीत इस प्रकार है–

बोल :

नौई धोई राणिए वाछले आरसुए मुख देखै
आरसुए मुख राणिए देखेआ नैणा भरी-भरी राणी रोई
तख्ते बैठेया राजा जेवर बोलदा ओ राणिए तू कैं राणिए आज रोई
कालेआं केसे रंग बटाई लेया काया मेरी विरधी होई
कालेया केसे धौले आई गए औतर कायां राजा मेरी होइ।
सुणा ओए राणिए मुलैं लेइए पुत फल मुलैं नी मिलदे
कागज होए राणिए वाच लेइए लेख वाचया नी जांदा।
सेवा करेयां राणिए वाछले ता सेवा ते फल मिलगा।

भावार्थ : गुग्गा गाथा का उदाहरण हमीरपुर क्षेत्र से दिया जाता है। इस भाग में राजा जेवर और रानी वाछल के सन्तान पैदा न होने के कारण मानसिक कष्ट का वर्णन किया गया है।

रानी वाछल ने स्नान करने के बाद अपना मुख शीशे में देखा तो उनकी आँखें भर आईं। सिंहासन पर बैठे राजा जेवर ने जब रानी को रोते हुए देखा तो कारण पूछा।

रानी ने कहा कि राज परिवार के होने के कारण हमारे पास किसी चीज की कमी नहीं है परन्तु पुत्र न मिलने के कारण मैं रो रही हूँ। इसके उत्तर में राजा कहते हैं कि हे रानी, अगर सोना होता तो उसे मोल में खरीद लेते, मगर पुत्र का फल मोल नहीं मिलता। अगर कागज़ होता तो उसे पढ़ लेते पर विधि का लेख बाचा नहीं जाता।

फिर रानी वाछल कहने लगीं जैसा आप कहोगे वैसा ही हम करेंगे। फिर राजा ने रानी से कहा (गुरु गोरखनाथ की) सेवा से पुत्र फल ज़रूर मिलेगा।

स्वरलिपि

ग	-	ग	-	ग	ग	-	ग	प	म	ग	रे	स	नि़	स	-
ओ	ऽ	नौ	ऽ	ई	ऽ	धो	ऽ	ऽ	ई	ऽ	रा	ऽ	णि	ये	ऽ
सा	रे	-	ग	म	ग	-	रे	सा	-	नि़	सा	सा	सा	सा	-
बा	ऽ	ऽ	ऽ	छा	ले	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	आ	ऽ	ऽ	ऽ

ग	-	ग	-	ग	ग	-	ग	प	म	ग	रे	सा	नि़	सा	-
ओ	ऽ	रा	ऽ	णि	ऽ	ए	ऽ	आ	ऽ	र	ऽ	सु	ऽ	ये	ऽ
स	रे	-	ग	म	ग	-	रे	स	-	नि़	सा	सा	सा	सा	-
मु	ख	दे	ऽ	ऽ	खे	ऽ	ऽ	ऽ	ओ	ऽ	ऽ	आ	ऽ	ऽ	ऽ

सती चैन्खी की गाथा

किन्नौर और शिमला जिला का रामपुर क्षेत्र कभी एक रियासत थी। किन्नौर के सांगला घाटी के पास कामरूकुप्पा नाम का स्थान है, जो पहले किन्नौर तथा रामपुर रियासत की राजधानी थी।

यहाँ कामरू का किला अभी तक विद्यमान है। किन्नौर, रामपुर तथा जुब्बल रियासत में वज़ीर या मन्त्री बिष्ट (क्षत्रिय) जाति के लोग होते थे। यहाँ के राजा ने किसी कार्य से अपने वज़ीर बिष्ट को बाहर भेजा और रास्ते में उनकी मृत्यु हो गई।

जब यह समाचार घर के लोगों को मिला तो वज़ीर की पत्नी जिसका नाम चैन्खी था, को यह दुःखद सन्देश मिलने से पहले ही आभास हो गया। चैन्खी पतिव्रता स्त्री थी। जब चैन्खी को वास्तविकता का पता चला कि उनके पति का स्वर्गवास हो गया है तो उसने भी सती होने की ठान ली। सती होने को यहां 'घुमास्ती' होना कहते हैं।

चैन्खी के सती होने पर यह गाथा गाई जाती है। जुब्बल तथा रोहड़ू क्षेत्र में गाई जाने वाले चैन्खी गाथा गीत को यहाँ प्रस्तुत किया गया है। चैन्खी के गीत में लोक कवि ने जो संवेदना व्यक्त की है उसमें से यहाँ कुछ का उल्लेख किया गया है—

रुन्दे लागे चैन्खीये गे हाटुये री टीर।
खेबड़ी आशो माटिये पोहाड़िय वज़ीर ॥
टिर पौड़े हाटुये लुम्बरु धुयें।
पाणिये चैई बागरिये चैन्खिये मुयें ॥
टिर पौड़े हाटुये रे लोहे रे शरु।
कालिये रान्ड़े बागोरेये बरशर्णे ड़रू ॥
ऐके नोटे आदमें मड़ेलि ले जाओ।
ओड़ौ तिनों मड़ोलिरे देओ शिगड़े बुलाये हो ॥
तन्गे पोड़े आगुये गे चैन्खीये ऊटे।
बिष्टौ रीये बेदणे मेरे हिखौटे फूटे ॥
देखे नि दाईये चेन्खीये तुयें ओड़ौ रे नैहाणौ।
तेरे चाणू जुगटू दे विष्णू नरैण ॥
बाओ आजा चेन्खी श रे टोई रे टेके।
जले न मरे चेन्खीये मेरे नैस्ती रे ऐके ॥

भावार्थ : पर्वत की चोटी पर बैठी चैन्खी पति की मृत्यु के दुःखद सन्देश से रो रही है और माँ वसुन्धरा से विलाप कर रही है—हे माँ! मेरे पहाड़ी वज़ीर कब आयेंगे। उस पर्वत की चोटी पर बादल ऐसे छाये हैं कि चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा है और ऐसा लगता है कि बारिश और तूफान आ गया। चैन्खी कल्पना कर रही है कि लोहे के ओले पड़ने चाहिएं जिससे मेरे प्राण भी निकल जायें। चैन्खी दो आदमियों से कहती है कि मड़ोली गाँव में जायें और मिस्त्री बुलाकर मेरे जलने की तैयारी के लिए सन्दूक बनाया जाये।

चैन्खी जब घर पहुँचती है तो बरामदे पर नीचे गिर जाती है और गिरने के बाद कहती है कि बिष्ट की मृत्यु से मुझे इतना आघात है कि मेरी छाती फटी जा रही है।

जब चैन्खी ने मिस्त्री को कहा कि मेरी अर्थी के लिए सन्दूक बनाओ तो उन्होंने यह कहा कि तुम्हारी अर्थी में भगवान विष्णु नारायण को भी उतार देंगे। चैन्खी के पिताजी ने चैन्खी के सती होने की बात सुनी तो उन्होंने चैन्खी को मना किया और यह कहा कि तुम मेरी एक ही बेटी हो, तुम्हारी मृत्यु का दुःख मैं सह नहीं सकूंगा। परन्तु फिर भी चैन्खी सती हो गई।

यह गाथा काफी लम्बी है और चूँकि गाथाओं में अन्तरा नहीं होते इसलिए एक पद की ही स्वरलिपि यहाँ दी जा रही है—

स्वरलिपि

पप मप धप म गु रे सारे म गु रे सा सा ध़ - प़ -

रु ऽ न्दे लाऽ गे चैं रिव येऽ गे हा टु ये री टी ऽ र ऽ

रे ग रे स स रे गरे सा प - ग - रे सा - सा

के ब ड़ी आ शो मा ठिऽ ये पो ऽ हा ड़ि ये ब ज़ी र

इस गीत में पीलू राग की छाया है

हिमाचल प्रदेश के इतिहास, संस्कृति की अनेकों महत्वपूर्ण घटनाएं यहां के लोक गीतों, लोकगाथाओं, हारों तथा देव गीतों में प्रचलित हैं जिनके प्रलेखन से उन्हें स्वरवद्ध तथा लिपिवद्ध करके प्रदेश की इस अमूल्य धरोहर का संरक्षण और संवर्धन संभव हो सकता है। हिमाचल के लोक संगीत में छुपें अनेकों रहस्यों को उजागर करने के लिए इस अनमोल विरासत का संरक्षण आत्यावश्यक है अन्यथा लोक संस्कृति के ये महत्वपूर्ण अवशेष स्मृति मात्र बनकर रह जाएंगे।

□

हिमाचली लोकनृत्य में वीररस

डॉ॰ हरिराम जसटा

लोकांचलों में एकता, समानता, जन-मनोरंजन प्रदान करने में लोक-नृत्यों की भूमिका सदैव ही महत्त्वपूर्ण रही है क्योंकि लोक-नृत्यों द्वारा जन अभिरुचि, मानव की सौंदर्य-उपासना, जनमानस की उमंगें, प्रकृति का रंग वैभव, ग्राम्यजीवन के संघर्ष, श्रम और मन की बन्धनमुक्त उड़ान प्रतिबिम्बित होती है। सरलता, संवेदना, सहकारिता, स्फूर्ति, रंगवैभव तथा शक्ति के संगम लोक-नृत्यों में सम्पूर्ण रूप से प्रस्फुटित होते हैं। सामाजिक एवं सांस्कृतिक संचेतना के तात्त्विक गुणों की जैविक गरिमा भी प्रकट होती है। वास्तव में लोकनृत्य लोक भावना की प्राणात्मा है और इसमें लोक-संस्कृति चिरायु होकर कुसुमित होती है। चूंकि लोक-नृत्यों एवं लोक-नाट्यों में लोक-कला की जीवंत सांसें होती हैं इसलिए ये लोककला के नैसर्गिक प्रतिफल से सीधी पहचान कराते हैं।

हिमाचल में लोक-नृत्यों के ऋतु-पर्व, महोत्सव, त्योहारों आदि अवसरों पर आयोजन की परम्परा प्रारम्भ से ही रही है। अतः लोक-नृत्यों को जीवित रखने और उनको विकास की गति देने का श्रेय इन्हीं पर्वों-महोत्सवों को है। ऐसे अवसरों पर जो लोक-नृत्य आयोजित किए जाते हैं उनकी प्रकृति सांस्कृतिक विकास, कृषि उन्नयन और धर्म संचेतना अदि से संश्लिष्ट होती है।

भारत में नृत्यों का क्रमबद्ध इतिहास निर्मित करना अत्यन्त कठिन है। नृत्यों के अनेक रूपों के उदाहरण हमें पुरातत्त्व अवशेषों, मुद्राओं, इतिहास, साहित्यकारों, कलाकारों और सम्राटों की वंशावलियों, मूर्तिकला और संगीत में उपलब्ध होते हैं।

भारत में नृत्यकला मिथक और पौराणिक कथाओं का असाधारण

सम्मिश्रण है और इसी से भारतीय जनता को जनजीवन और धर्म में इसके महत्त्वपूर्ण स्थानों के प्रमाण मिलते हैं।

प्रायः नृत्य को भारत में दिव्य उत्पत्ति से जोड़ा जाता है। आख्यानों में वर्णन मिलता है कि एक बार देव इन्द्र ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि वह देवताओं के योग्य मनोरंजन की रचना करें ताकि साधारण जन की पहुंच भी वैदिक प्रजा तक हो सके। सृजक ब्रह्मा ने चारों वेदों से प्रमुख विशेषताएं चुनकर पांचवें वेद—नृत्य कला का विकास किया।

ऋग्वेद से गीति काव्य, यजुर्वेद से भाव मुद्रा, सामवेद से संगीत तथा अथर्ववेद से भावनात्मक एवं सौन्दर्यात्मक अंश लेकर नाट्य वेद की रचना की गई। इसके बाद ब्रह्मा ने भरत मुनि को विज्ञान और कला में दक्ष बनाकर नृत्य को लोकप्रिय बनाने का कार्य सौंपा।

इतिहासकारों और नृत्यकला समीक्षकों की धारणा है कि स्थानीय आंचलिक लोकनृत्य ही धीरे-धीरे समय और सभ्यता के विकास के साथ-साथ विकसित होकर श्रेष्ठ परिष्कृत चिरंजीवी नृत्य शैली के रूप में उभर कर सामने आये, जिन्हें भरत मुनि ने सिद्धान्त का रूप दिया। भारत में लोकधर्मी नाट्य-परम्पराएं अपना रूप ग्रहण कर चुकी थीं। इन परम्पराओं ने ही नाट्यशास्त्र की निर्माणकला का काम किया। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र रंगमंच पर एक वृहत् कोण है। इस शास्त्र के सैंतीस अध्यायों में से पांच सीधे नृत्य से सम्बधित हैं। रंगमंच, नृत्य, नाटक, संगीत वक्तृत्वकला, अलंकारशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र और व्याकरण पर अलग-अलग अध्याय हैं फिर भी भारतीय परम्परा में सभी प्रकार की प्लास्टिक और अभिनय कला नाटक और रंगमंच द्वारा पराकाष्ठा पर पहुंची हैं।

नाट्यशास्त्र में भरत मुनि के नृत्य के दो भाग किए हैं। एक नृत्य अमूर्त रूढ़शैली के अनुसार अंकित गति और मुद्रा का प्रदर्शन तथा दूसरा नृत्य व्याख्यात्मक नृत्य, जिसके द्वारा प्रत्येक गति और चेष्टा को अर्थपूर्ण बनाया जाता है। इसके साथ-साथ नृत्य में ताण्डव नृत्य गतिशीलता और पुरुषोचित गुणों के लिए प्रसिद्ध है और लास्य नृत्य इसका सूक्ष्म, मनोहर, ललित, स्त्रीयोचित प्रतिरूप होने के कारण प्रसिद्ध है। भारत के सभी नृत्यों के मूल में इन दो प्रमुख नृत्यों की भाव भूमि है।

निःसंदेह नृत्य की अपनी भाषा होती है जिसे हम चेष्टा या कृत्य

(हावभाव) द्वारा व्याख्यात्मक और अलंकारिक भाषा कह सकते हैं। इस सांकेतिक भाषा में हाथ और उंगलियों की 105 मुद्राओं द्वारा बोले गए शब्दों की तह प्रभावशाली अभिव्यक्ति होती है। भारतीय परम्परागत रंगमंच के तीन मूल तत्त्व हैं--संगीत, काव्य एवं नृत्य। इनका परस्पर गहरा सम्बन्ध है और पूर्ण सफलता के लिए एक दूसरे पर निर्भर करते हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में यदि हिमाचल प्रदेश में लोक-नृत्यों का अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट हो जाएगा कि हिमाचल प्रदेश के लोक-नृत्य की सजीव कल्पना की उपमा यदि मां दुर्गा की असंख्य भुजाओं से या नृत्य के अधिष्ठाता नटराज शिव की 12 तांडव मुद्राओं से की जाए तो निराधार न होगी। एक ओर एकीकृत नीरवता, शांत समचितता की प्रतीक है और दूसरी ओर विभिन्न रूपों में शक्ति का सतत् अभिनय हैं। लोकधर्मी नृत्यों की पृष्ठभूमि भी प्राचीन म्परा की कड़ियों से निरन्तर जुड़ी रहती है क्योंकि उसमें मिट्टी की भीनी गंध सदा सुवासित रहती है।

हिमाचल प्रदेश के किसी अखण्डित नृत्य का जिक्र असंभव है। इसकी अपेक्षा हिमाचल प्रदेश के विभिन्न जनपदों में विभिन्न स्तरों पर लोक-नृत्यों की विभिन्न परम्परायें उपलब्ध हैं। प्रत्येक जनपद की लोक-नृत्य परम्परा को कला के रूप और शैली के विकास को काल और समय-समय की सामाजिक, सांस्कृतिक स्थिति की पृष्ठभूमि के संदर्भ में समझना होगा। इनमें जटिल सांस्कृतिक प्रतिमान की विशेषताओं की परतें उपलब्ध हैं, जिनके कारण यह जीवित रहे और फलते-फूलते रहे। हिमाचल प्रदेश के लोक-नृत्यों के विभिन्न रूप समष्टि के ही भाग हैं।

जन-जातीय लोक एवं शिष्टकला नृत्य का अपना-अपना महत्त्व एवं विशेषताएं हैं। हिमाचल प्रदेश में यह सभी लोकनृत्य धीरे-धीरे एक-दूसरे से हिल-मिल रहे हैं। एक-दूसरे को प्रभावित कर रहे हैं और कई बार वे साथ-साथ प्रदर्शित हो रहे हैं। इन लोक-नृत्यों में विचारों, विषयानुक्रम और रूपों में गतिशीलता है। बाह्य एवं आन्तरिक प्रभाव समय की गति के साथ आते हैं, जिनसे लोकरुचि भी अनुप्रमाणित व प्रभावित होती है और उन पर अपनी छाप छोड़ जाते हैं। हिमाचल प्रदेश में नाट्य कला एंव नृत्य कला लोकजीवन में नया रंग और रूप भर देते हैं।

आज भी हिमाचल प्रदेश के लोकजीवन में **"करियाला" "स्वांग" "बांठडा"**

और ऐंचली के साथ-साथ विभिन्न जनपदों में असंख्य लोक-नृत्य अपनी परम्परागत शैली में प्रदर्शित हो रहे हैं। परन्तु धीरे-धीरे ऐसे लग रहा है कि इन लोक-नृत्यों की पृष्ठभूमि में जो ऐतिहासिक, पौराणिक या सांस्कृतिक भाव एवं विचार कार्यरत हैं उसे प्रायः लोग भूलते जा रहे हैं, जिसके बिना ये लोक-नृत्य धीरे-धीरे निष्प्राण होते जायेंगे।

भारतीय लोक-नृत्य के इतिहास का भौतिक निरूपण संभव नहीं है। कारण स्पष्ट है कि यह केवल राष्ट्र या जनता का इतिहास नहीं अपितु कुछ और भी है। परिणामस्वरूप लोक-नृत्य की भाषा कुछ स्पष्ट है, कुछ नहीं। मनुष्य और प्रकृति की अभिव्यक्ति का माध्यम लोक-नृत्य है। यही क्रम अज्ञात काल से जारी है। पुरुष और प्रकृति में नैसर्गिक प्रवृत्ति पीढ़ियों से प्राप्त होती रही है उसे भाषा और संगीत लय द्वारा श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति मिलती रही है। इस निहित विचार की बाह्य अभिव्यक्ति मानव इतिहास में है और नृत्य-कला का ताना-बाना भी। भारतीय धर्म एवं दर्शन न केवल कोरे तर्क, बौद्धिकता या कुछ नैतिक नियमों पर ही आधारित हैं बल्कि इसका नृत्य के साथ गहरा सम्बन्ध है। विश्व के प्रथम नट शंकर हैं, जिनके विराट् नृत्य से विश्व की पंचक्रियाओं का जन्म हुआ और सृष्टि के ताल, स्वर का स्वरूप निर्दिष्ट हुआ है, ऐसा लोगों का विश्वास है। जब वह मुण्डमाली, नीलकण्ठ, अहिभूषण, त्रिलोचन, भस्माविलिप्त देह, त्रिशूल, डमरू धारण कर, अपनी जटाओं को उन्मुक्त करके नृत्य करने लगते हैं तब अकस्मात् ही यह कहना पड़ता है—

महीपादाघाताद् ब्रजति सहसा संशयपदं
पदंविष्णोर्भ्राम्यद्भुजमरिरघरूग्णा ग्रहगणं
मुहूर्तोदौरस्थ्यं यात्या निभृत जटा ताडिततटा

"चरणों का आघात लगने से लगता है, जैसे भूमण्डल कच्चे घड़े की भांति टूट रहा है। उठे हुए करों के घेरे में आकर तारामण्डल अस्त-व्यस्त होने लगता है, जटाएं उमड़ती हैं तो लगता है, जैसे भूमण्डल छिन्न-भिन्न हुआ जा रहा है।"

शिव के इस विराट्-नृत्य का पहाड़ी लोक-गीत में बड़ा ही विशद् तथा सुंदर वर्णन हुआ है। लोक-गीत लम्बा है परन्तु यहां उसकी कुछ पंक्तियां उद्धृत हैं।

देखे गिरिजा मेरा तमाशा—चूल्है लाकड़ी आपिए आशा

इशर नाचौ अंग-अंग मोड़े
सुलै नाचौ लाधत्री न चोड़े
पैरे नाचौ पैताली रानी
डिंडे नाचौ ढनेसरा रानी
जानू नाचौ जानका देवी
हीयै नाचौ हिडिम्बा देवी
गले नाचौ ऐ रूण्ड माला
साथी नाचौ ऐ सरपौ काला
काने नाचौ मुंदरो बाले
शिरे नाचौ ऐ जटा बालौ
मुकटै नाचौ गांगौ रो पानी
बांवी नाचौ पार्वती रानी
हाथै नाचौ दगधे तीरौ
दांवी नाचौ हनुमन्त बीरौ
ईशर नाचौ अकेलि ऐ अकेला
संगे नाचौ नौ लख चेला।

भावार्थ—शिव अंग-अंग मोड़ कर नाच रहे हैं

धीरे नाचो, शिव! धरती न तोड़ देना
पैरों में पाताल की रानी नाच रही है
घुटनों में ढनेसरा देवी नाच रही है
जानू में जानकी देवी नाच रही है
हृदय में हिडिम्बा देवी नाच रही है
गले में रूण्ड माला नाच रही है
साथ में काले सांप नाच रहे हैं
कानों में मुन्दर नाच रहे हैं
मुकुट पर गंगा मैया का पानी नाच रहा है
बायीं ओर देवी पार्वती नाच रही हैं
हाथ में दगधे तीर नाच रहे हैं
दायें हनुमन्त बीर नाच रहे हैं

शिव अकेले ही नाच रहे हैं
साथ में नौ लाख चेले नाच रहे हैं
शिव आनन्दविभोर होकर नाच रहे हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारतीय नृत्य का आदिरूप दिव्य रहा है। वेदों में भी नृत्य का उल्लेख मिलता है। जैसे नृत्य मानो अमृत है (ऋ. 5-33-6) हिन्दू देवी-देवता शिव का नटराजरूप उनकी जीवन-सहचरी पार्वती, श्रीकृष्ण और गोपियों का सम्बन्ध प्रायः इस कला के साथ जोड़ा जाता है। प्राचीन काल से लेकर लोक-नृत्य समाज के सभी वर्गों के जीवन का अंग रहा है। प्राचीन भारतीय इतिहास एवं साहित्य में अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनसे यह प्रकट होता है कि नृत्य राजघरानों में प्रिय रहा और राज-परिवारों की राजकुमारियां इसे सीखती थीं।

महाभारत के अनुसार राजा विराट की राजकुमारी उत्तरा ने अर्जुन के बृहन्नला के रूप में उस से नृत्य-कला सीखी। दक्षिणी भारत के अनेक प्रसिद्ध मन्दिरों के पुजारी इस कला में दक्ष थे। अन्य कलाओं की तरह नृत्यकला भी प्राचीनकाल से लेकर अब तक पनपी और विकसित हुई। इसका उदाहरण भरत मुनि द्वारा रचित नाट्य-शास्त्र है जिसके द्वारा न केवल नाट्य-कला बल्कि संगीत, कविता, वास्तुकला, नृत्यकला और सौन्दर्य-शास्त्र का भी प्रतिपादन किया गया है अभिनय दर्पण और धनंजय का दशरूपक अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ है। समय-समय पर कला क्षेत्र में अनेक उतार-चढ़ाव आए और विदेशी आक्रमणों के साथ-साथ भारतीय नृत्य कला दक्षिण में मन्दिर की देवदासियों तक और उत्तर भारत में कुछ व्यावसायिक वर्ग तक तथा राजदरबारों में समर्थन के अभाव में तथा सामाजिक रूढ़ियों के कारण यह कला निम्न वर्ग तक सीमित हो गई और आर्थिक कारणों से वे लोग चरित्रहीन जीवन व्यतीत करने लगे। उदाहरण के लिए हिमाचल प्रदेश में नृत्य-कला व्यावसायिक निम्न वर्ग लोक-वादक—तूरी, ढाकी, बाजगी तक सीमित हो गई। इस वर्ग की स्त्रियां देवी-देवता के ग्रामों में जाकर प्रायः चैत, वैशाख, श्रावण संक्रांति अन्य त्योहारों और उत्सवों पर लोक-नृत्यों का प्रदर्शन करती थीं और ग्रामीण लोग उनके साथ भद्दे मजाक भी कर बैठते थे, ऐसी परिस्थितियों में यह कला भारत के अन्य क्षेत्रों में भी गुजरी है।

स्वतन्त्रता के उपरान्त लोक-जीवन की इस महत्त्वपूर्ण थाती को सुरक्षित

रखने और पुनर्जागरण की ओर ध्यान दिया जाने लगा। गणतन्त्र दिवस पर दिल्ली में प्रत्येक क्षेत्र के लोक-नृत्य प्रस्तुत करने की प्रथा प्रशंसनीय है। इसी प्रकार प्रत्येक प्रदेश सरकार तथा कलाकारों ने कुछ संगठन स्थापित कर लोक-नृत्यों को प्रोत्साहन देने का सद्प्रयत्न किया है। इस संदर्भ में श्री जवाहर लाल नेहरू के विचार उल्लेखनीय हैं **"यदि मुझसे कोई पूछे कि भारत की प्राचीन संस्कृति और उसकी जनता के स्फूर्तिपूर्ण जीवन और कला-प्रेम का सबसे सुन्दर चित्रण कहां होता है तो मैं कहूंगा कि हमारे लोक नृत्यों में। मैं चाहता हूं कि भारत की यह प्राचीन था ती अपने प्राचीन स्वरूप में न केवल जीवित ही रहे, वरन् निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर हो, जिससे वह साधारण जनता का स्वस्थ मनोरंजन करती हुई उनमें नई उमंग, नया जीवन तथा नई चेतना भर सके।"**

समय के अनुसार भारतीय लोक-नृत्य में बहुत कम परिवर्तन हुए हैं। उनका आंतरिक गठन वही रहा है।

व्यक्ति या समूह का अपने देश से सम्बन्ध कुछ ऐसा होता है जैसा उसका अपनेपन तथा अपने माता-पिता से। जिसकी गोद में बैठकर व्यक्ति या व्यक्ति-समूह विकसित होता है उससे उसका सहज स्नेह हो जाना स्वाभाविक है। इस प्रसंग में आदि कवि वाल्मीकि की यह पंक्ति सार्थक है—**जननीजन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी**,—अपनी मां, अपने जन्म-ग्राम अपने घर और अपने पड़ोस के माध्यम से ही हम अपने प्रदेश या देश को पहचान सकते हैं। उनके प्रति प्यार से ही हम देश-भक्ति की ओर अग्रसर होते हैं। हम अपने निकटस्थ वातावरण से ही समूचे क्षेत्र या देश के भूगोल, इतिहास, कला और लोक-जीवन के प्रति रुचिशील हो जाते है। अपने क्षेत्र के विगत, उसकी श्रेष्ठ परम्पराओं, उसके उज्ज्वल और उत्कृष्ट सांस्कृतिक पक्षों और उसकी जीवन-विधि एवं रीति-नीति की जानकारी से देशभक्ति का संवर्धन होता है।

आज भी जिस देश में कला का लोक-जीवन से गहरा सम्पर्क बना हुआ है वहां के लोक-नृत्य एंव लोकगीत वहां की संस्कृति के सच्चे प्रतीक हैं। यही लोक-नृत्य जब लोक-जीवन के सम्पर्क को खो बैठते हैं और उनका लोकरंजनात्मक गुण कम होने लगता है तो वे कुछ ही लोगों की सम्पत्ति बन जाते हैं। भारत के प्रसिद्ध लोक-साहित्यकार एंव लोक-कलाकारों के निर्देशक

देवीलाल सामर के शब्दों में—"उनमें धीरे-धीरे शास्त्रीयत्व का समावेश होने लगता है और वे एक विशेष कलात्मक रूप धारण कर लेते हैं। प्रत्येक देश की शास्त्रीय कलाओं का यही इतिहास है।" जिस प्रकार भाषा अपना प्रारम्भिक और लौकिक रूप खोकर कुछ ही पंडितों और आचार्यों के प्रयत्नों से क्लिष्ट और साहित्यिक बन जाती है, उसी प्रकार लोक-नृत्य भी कुछ विशेषज्ञों के प्रयास से शास्त्रीय नृत्यों का रूप धारण कर लेते हैं इससे यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक शास्त्रीय कला की जननी लोककला है। अतः यदि हमें अपनी लोक संस्कृति को जीवित रखना है तो इन लोक-कलाओं को जीवित रखना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि उनमें जीता है प्राणी का सच्चा स्पन्दन।

हिमाचल प्रदेश जैसे दुर्गम पहाड़ी क्षेत्र में जहां जीवनोपार्जन अत्यन्त कठिन है। लोक-रंजन के साधन सरलता से उपलब्ध नहीं लोक-कलाओं के अनेक रूप अभी तक मूल रंगीन, संपन्न और समृद्ध रूप में विद्यमान हैं। हिमाचल प्रदेश के सभी लोक-नृत्य व्यावसायिक नृत्य न होकर जातीय नृत्य हैं। इसलिए इनमें लौकिक और सांस्कृतिक पक्ष अधिक हैं। इनमें आज भी यहां के पर्वतीय जीवन की आत्मा का निवास है। यहां के लोक-जीवन की सादगी, आनन्दानुभूति, तल्लीनता, तन्मयता, दक्ष शारीरिक अभ्यास का अपूर्व परिचय मिलता है। **जयशंकर प्रसाद** ने एक जगह भारतीय कृषक का सजीव चित्र इन पंक्तियों में खींचा था—

कठिन जेठ की दोपहरी में तप्त धूलि में सन।
कृषक तपस्वी तप करते हैं तप से स्वेदित तन ॥

हिमाचलवासियों का ग्राम्य-जीवन कठिन, कठोर और रूक्ष है। फिर भी यहां के परिश्रमी पहाड़ी लोग अपने सुमधुर लोकगीतों और लोक-नृत्यों द्वारा मुरझाये हुए प्राण-स्त्रोत का हिमाचल की गोद में अटखेलियां करती हुई पावन गंगा मैया की धारा-समान उल्लासमय और नन्दनवन के कल्पवृक्ष की तरह सब और सुख ओर आननद बिखेरते हैं।

हिमाचल प्रदेश में अतीत गौरव के प्रतीक लोक-नृत्य किसी ग्राम्य-उत्सव के समय प्रायः अपने पुरानेपन में भी सौंदर्य को समेटे मानव मन को आनन्दित एवं आकर्षित किए रहते हैं। उनका मूल उद्देश्य सामूहिक मनोरंजन और लोक मंगल की भावना है। लोक-नृत्यों का मूल स्रोत हमारी लोक-संस्कृति हैं, जिसे स्थान और काल की दूरी भी छिन्न-भिन्न नहीं कर सकती। इस पहाड़ी प्रदेश

के लोक-नृत्य की अन्तरात्मा में मानव की सौंदर्य-बोधि चेतना पर्वतीय लोक-जीवन के ह्रास और रुदन की स्वस्थ कला परम्परा, जन मन की उमंगें, प्रकृति का रंग वैभव, यहां का ग्राम-जीवन-संघर्ष, श्रम और मन की बंधनमुक्त उड़ान प्रतिबिम्बित होती है।

प्रकृति समान सरल हिमाचल के युवक और युवतियां बाल्यकाल से ही जैसा वह वृद्धों को करते देखते हैं उसी परिपाटी को अपने स्वभाव में सम्मिलित कर लेते हैं इसी तरह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हिमाचल के लोकनृत्य आगे बढ़ते रहे हैं और उनमें समय-समय पर परिवर्तन, संशोधन और रोचकता का विकास होता रहा है। चूंकि हिमाचल के लोक-नृत्य किसी विशेष शास्त्रीय नियम से बंधे हुए नहीं हैं इसलिए वे अत्यन्त सरल, सरस और हृदयग्राही हैं फिर भी उनकी विशिष्ट परम्परा है। इन लोक-नृत्यों में पर्वतीय लोक-जीवन के उद्गम, स्वभाव, गति की तीव्रता, अंग-संचालन में एक आकस्मिकता, कठोर मुद्रा, छोटे-मोटे आवेशपूर्ण नृत्य-खंडों में पहाड़ी जीवन की प्राकृतिक शोभा, धार्मिक, सामाजिक तथा अनेक रूढ़िवादी संस्कारों और विश्वासों की सुन्दर झलक मिलती है। हिमाचल के अधिकांश लोक-नृत्य सामूहिक उल्लास सुख-दुःख के भावपूर्ण क्षण और सामाजिक अवसरों से ही सम्बन्धित हैं चाहे कोई लोक-नृत्य ऋतु-उत्सव के सम्बन्ध में हो या धार्मिक और सामाजिक उत्सव के रूप में। आसपास के सभी पर्वतीय ग्रामों के लोग उसमें ठाठ-बाठ के साथ सम्मिलित होते हैं। यहां के लोक-नृत्य व्यक्तिगत कला विकास के साधन मात्र नहीं।

हिमाचली लोक-नृत्यों के साथ गीत इन्हें चार चांद लगा देते हैं। निःसंदेह लोक-नृत्य और गीत का जन्म साथ-साथ संघर्ष श्रम-साधनों के अवसर पर दिखायी जाने वाली भावमयी मुद्राओं के उन चरम क्षणों में हुआ जब जीवन का सौंदर्य जाग उठा और गीत फूट पड़े। चिरकाल से उद्यम और प्रयोजन के कारण, हिमाचल के लोक-नृत्य और नृत्यगीत अभिन्न अंग हैं और पर्वतीय सामाजिक जीवन को सचित्र, सजीव और प्रेरणात्मक बनाते हुए ये लोक-नृत्य लोकगीतों से विभूषित है। इनका सरल प्रवाहमान संगीत नृत्य को चाल-लय की कला-सौष्ठव प्रदान करता हैं। हृदय आकाश में सप्तरंगी इन्द्र धनुष का वितान फैल जाता है, नेत्र आत्म-विभोर हो उठते हैं, मन-मोर नाच उठते हैं और मानव की सहज अभिव्यक्ति मधु और अमृत के गीत गाने लगती है।

वास्तव में लोक-जीवन की प्रत्येक दिशा नृत्य से व्याप्त है। हिमाचल प्रदेश के विभिन्न भागों में प्रायः विभिन्न लोक-नृत्य प्रचलित है।

इसी प्रकार लोक-नृत्य के साथ गाये जाने वाले लोकगीत और वेशभूषा भी विभिन्न होती हैं इनमें से कुछ नृत्यों में केवल स्त्रियों और कुछ में केवल पुरुष ही नाचते हैं परन्तु ऐसे भी लोक-नृत्य हैं, जिनमें स्त्री-पुरुष दोनों ही नाचते हैं। इनमें अधिकतर सामूहिक-नृत्य हैं, परन्तु कुछ व्यक्तिगत नृत्य भी हैं। प्रायः सभी लोक-नृत्यों के साथ नृत्य-गीत गाये जाते हैं, इन लोकगीतों को बहुधा स्वयं नर्तक दल गाते हैं। प्रत्येक लोकगीत के साथ वाद्य-नरसिंगा, शहनाई, ढोल, बांसुरी, करनाल, खंजरी, करताल, डमरू इत्यादि बजाए जाते हैं। यदि अन्य लोक-वाद्य न भी हो, ढोलक या खंजरी के बिना गुजारा नहीं है। ये लोकगीत, लोक-वाद्य एंव लोक-नृत्य की त्रिवेणी इस पर्वतीय प्रदेश में अन्नतकाल से प्रवाहित होती रही हैं।

यदि आप कभी वर्ष भर में जुड़ने वाले अनेक मेलों, उत्सवों या त्योहारों के समय हिमाचल के किसी ग्राम में से होकर गुजर रहे हों, तो सहसा ढोलक या खंजरी की मधुर ध्वनि सुनकर आप स्थानीय ग्रामवासियों को गांव की किसी जगह पर एकत्रित पाएंगे और लोक-नृत्यों का आनन्द उठाते हुए देखेंगे। पहाड़ों के इन छोटे-छोटे ग्रामों में पहाड़ी लोक-कला की इस रसभरी समृद्ध थाती को अपने प्राचीन रूप एवं वैभव में सुरक्षित पाएंगे। इन लोक-नृत्यों की भावना भर्तृहरि लोकगीत में कितने सुंदर ढंग से प्रस्तुत हुई हैं।

लागी साधु री किन्दरी ऐ किन्दरी री बाई बाये।
आमां बोलौ ली बुढ्ड़ी बै मुन्दी नाचणै री आये।
एकि तारी री किन्दरी बोलौ सै नोखी-नोखी बाणी,
नाचौ लहोडलै बौडलै साथी सै घौदौ शौ राणी।

इन लोक-नृत्यों के साथ गाये जाने वाले प्रत्येक नृत्य-गीत की भाषा, शैली, छन्द, धुन, लय इत्यादि में भिन्नता है।

शुभ अवसर, त्योहार और अनेक सामाजिक मेल-मिलाप के हर्षोत्सवों को मनाने के लिए लोक-नृत्यों की विशेष भूमिका होती है, इसके लिए कोई पूर्व अभ्यास की आवश्यकता नहीं। क्षणिक प्रेरणा पर भी हिमाचली नाचना पसन्द करते हैं। इन परम्परागत और मनोहारी लोक-नृत्यों को देख प्रत्येक दर्शक पर इनके लय, सौन्दर्य-भावना की महानता प्रकट होती है।

जब हिमालय में कहीं भी चलचित्रों और आधुनिक मनोरंजन के साधनों का नाम-निशान भी नहीं था, तब भी यह चित्ताकर्षक लोक-नृत्य लोक-जीवन को सरस बनाते रहे और साधारण लय, ताल और गीतों के द्वारा लोकनृत्य और लोक-गीत पर्वत-पुत्रों के दैनिक परिश्रम और रूखे जीवन में उत्साह और रंग भरते रहे हैं। वनों, पहाड़ों, खेतों, खलिहानों और आंगन में दिनभर के कठिन कार्य के पश्चात् स्त्री-पुरुष गांव के खुले स्थान पर एकत्र होकर लोक-नृत्य द्वारा अपने दैनिक जीवन की कठोरता और करुणा को भुलाते रहे हैं। यह कार्यक्रम उत्सवों को छोड़कर प्रायः सर्दियों में अधिक चलता है। परन्तु ज्यों-ज्यों शिक्षा का प्रसार बढ़ा और सिनेमा, रेडियो, टी॰वी॰ और अन्य मनोरंजन के साधन गांव-गांव में पहुंचने लगे, इस ओर से नई पीढ़ी का ध्यान धीरे-धीरे हटता जा रहा है। उन पर आधुनिकता का आवरण चढ़ता जा रहा है। लोक-जीवन की श्रेष्ठ थाती के प्रति उनकी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया हीन भावना और लज्जा की ही होती है। इसका कारण शायद शिक्षित वर्ग एवं नगर की सभ्यता से प्रभावित वर्ग की यह धारणा है कि लोक-नर्तक पिछड़े एवं आदिवासी लोगों की आदिम सभ्यता का चिह्न है। ज्यों-ज्यों सभ्यता एवं संस्कृति का विकास होता जाता है लोक-जीवन का यह आकर्षण भी विस्मृति के गर्त में चला जाता है।

जब लोकवादक अपने विशेष वाद्यों पर मधुर ध्वनि की गूंज बिखेरते हैं तो युवक हो या वृद्ध सब एक-दूसरे का हाथ पकड़कर गोलाकार नृत्य, माला नृत्य आरम्भ करते हैं। नृत्य लोक-वाद्यों और लोक-नृत्यों की ताल पर तीव्र और उग्र हो जाता है। यह मालूम करना कठिन हो जाता है कि कब इसका समय पूरा हो गया और इसमें श्रेष्ठ नर्तक कौन है। दक्ष नर्तक के नेतृत्व में नर्तक दल दायीं दिशा में ताल पर पग बढ़ाता है। कभी छोटे कदम, कभी बड़े, कभी उछाल, कभी धीमी चाल, कभी आगे, कभी पीछे झुकना, कभी दौड़ और कभी छलांगें, कभी घुटने झुकाकर, कभी कैंची से कदम, इसी प्रकार नर्तक चलता रहता है। कई बार जब कोई दक्ष लोक-गायक या लोक-वादक नहीं होता तब नर्तक दल स्वयं ही लोकगीत गाता हुआ नाचता है। दो या तीन नर्तक या गायक आरम्भ में गाते हैं और शेष सब बाद में उन गीतों की पंक्तियों को दोहराते हैं। सभी गीत विलम्बित लय से शुरू होकर द्रुत-लय पर समाप्त हो जाते हैं। ऐसे अवसरों पर प्रायः नृत्य-गीत की गूंज वायुमण्डल में

बिखर जाती है और एक अद्‌भुत वातावरण की रचना हो जाती है। बांसुरी की मधुर लय से लोक-नृत्य आरम्भ होता है–

कृष्ण जीए मुरली बाजि।
मुरली बाजि, मुरली बाजि।
मुरली शुणियों नाचदे आजि।
नाचदै आजै नाचदै आजि।

ऐसे ही लोक-नृत्य गीतों की लय के साथ नर्तक दल शरीर के विभिन्न अंगों का संचालन करते हुए कदम से कदम मिलाकर, मस्त होकर नृत्य करते हैं। नर्तक दल अपने क्षेत्र में प्रचलित सभी प्रकार के लोकप्रिय लोक-नृत्य का प्रदर्शन करते हैं। यह प्रायः दक्ष नर्तक एवं लोकप्रिय वाद्य के वादक पर निर्भर करता है। लोग प्रायः जब इस प्रकार की नृत्य-शैली से ऊब जाते हैं तो कुछ देर बाद, दूसरा नृत्य गीत आरम्भ हो जाता है–

खेलादि आजे मेरी भावरूपीए औ-2।
कोखे रै खौलै मेरी भावरूपीये-2 ॥
भाटौ रै खोलै मेरी भावरूपीए-2।
जौगलू शौलै मेरी भावरूपीए-2 ॥

नृत्य गीत के अनुरूप ही नृत्य-शैली में भी परिवर्तन आ जाता है। लोकगीत की सुमधुर ओर लय के साथ जब लोक-वाद्य बजते हैं, तो लोक-नृत्य अपने पूरे यौवन पर आ जा है–

लच्छी बड़ी सूरतां वाली, तू मेरे कन्ने बोल लच्छिये।
हाय बो पियारिये हाथ बो दुलारिये
पतली कमर झुकी जांदी, तू छोटा घड़ा चुक लच्छिए
हाय बो पियारिये हाय बो दुलारिये

लोक-नृत्य को तीव्र गति देने के लिए द्रुतलय से लोकगीत गाया जाता है। जैसे–

लाल घीडिए सेरे न जाणा, सेरे न जाणा......
सेरे पाका मेरे गीहूं रा दाण, गीहूं रा दाणा.....
गीहूं रा दाणा घरे ले आणा घरे ले आणा....
गीहूं दाणा जादा नी खाणा, जादा नी खाणा....

इन सुमधुर नृत्य-गीतों से स्थानीय लोगों में अपने ग्राम, पहाड़ों, वनों,

खेतों, खलिहानों, नदी, नालों, झीलों, झरनों, देवी-देवताओं, वीरों, पूर्वजों, सुन्दर और निष्ठुर प्रेमी-प्रेमिकाओं के प्रति अनुरक्ति टपकती है और नर्तक दल भाव विभोर होकर झूम-झूम जाते हैं। मीठे और सुरीले कण्ठों से गाए जाने वाले लोकगीतों के साथ जब लोक-वाद्य बजने लगते हैं तो नर्तक दल ही नहीं, देवी-देवता भी पालकियों में नाचने लगते हैं और दर्शकगण आत्मविभोर होकर तन्मयता से इनका आनन्द उठाते हैं।

हिमाचल प्रदेश की संस्कृति एवं कला-परम्परा को भी एक प्रदेश विशेष की संस्कृति एवं कला के रूप में देखना उसकी महान् गौरवशाली परम्परा का अपमान करना है। हिमाचल की कला-परम्परा का निःसन्देह शेष भारत से गहरा सम्पर्क रहा है और उसे आत्मसात् किया है। समय के थपेड़ों ने इन्हें बरबाद करने के लिए कोई कसर शेष नहीं रखी परन्तु फिर भी जीवित रह सकी है तो एक बात स्पष्ट है कि इसकी नींव सुदृढ़ है और लोक-जीवन से इसका अटूट सम्पर्क सदैव बना रहा है।

समय के थपेड़ों ने इन्हें बर्बाद करने के लिए कोई कसर शेष नहीं रखी परन्तु फिर भी यह जीवित रह सकी है तो एक बात स्पष्ट है कि इसकी नींव सुदृढ़ है और लोक-जीवन से इसका अटूट सम्पर्क बना रहा है।

स्वतन्त्रता-उपरान्त हिमाचल प्रदेश में लोक-परम्परा को सुरक्षित रखने की दिशा में कुछ कदम उठाए गए हैं। जैसे प्रत्येक राष्ट्रीय एवं स्थानीय मेलों-ठेलों और युवा-उत्सवों में लोक-नृत्यों का प्रदर्शन एवं सरकार द्वारा प्रोत्साहन। फिर भी लोक-परम्परा को आज सुरक्षित रखने और उसे विकसित रूप देने की अधिक आवश्यकता है। राष्ट्रीय जीवन में जो सुन्दर है, श्रेष्ठ है, उसकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। उसको तो संरक्षण एंव प्रोत्साहन मिलना ही चाहिए ताकि राष्ट्र को एकसूत्र में बांधने वाली ये परम्पराएं सप्राण होकर राष्ट्रीयता की भावना को सुदृढ़ कर सकें।

–यस्यां गयान्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्याः व्यैलवाः,
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः।
सा नो भूमिः प्रणदतां सपत्नाम् असपत्नं,
मा पृथिवी कृणोतु।।

–

"जननी। तेरे वीर पुत्र जब राष्ट्रीयगीत हैं गाते

करते नृत्य मोद मदमाते उत्सव नित्य रचाते
विविध प्रांत भाषा के भाषी लोक-लोक के वासी
रणभेरी सुन मातृभूमि की रक्षाहित बलि जाते।"

वैसे तो हिमाचल प्रदेश के किसी क्षेत्र के लोक-नृत्य को गिनती की सीमा में नहीं बांधा जा सकता और न ही शास्त्रीय नृत्यों की तरह इन्हें किसी विशेष शैली या नियमों के बन्धनों में जकड़ा जा सकता है। प्रधानतः हिमाचल प्रदेश के लोक-नृत्यों की संख्या भी उतनी ही अधिक है, जितने ग्राम, समुदाय और कुछ लोक-नृत्यों का नामकरण भी ग्रामों के आधार पर हुआ है। जैसे सांगला-नृत्य, पंगवाल-नृत्य इत्यादि।

हिमाचल प्रदेश के लोक-नृत्यों में भाग लेने वाले लोगों की संख्या की दृष्टि से दो प्रकार के होते हैं।

(क) **व्यक्तिगत नृत्य :** ऐसे लोक-नृत्यों में तुरिण और मुंजरा गिने जा सकते हैं। इन नृत्यों में एक या दो नर्तक नाचते हैं।

लोकगायक, श्रोता और दर्शक उनको घेरकर बैठ जाते हैं। लोकगायक खंजरी, ढोलक, गज्जू, खड़ताल या हाथ की तालियों से लोकगीत की धुन और लय उठाते हैं और नर्तक धीरे-धीरे उठकर चारों ओर घूम-घूमकर अपने शरीर के हर अंग को लोकगीत की लय पर नचाता है। कभी-कभी बड़े लोक-गायकों के दो दल उन्हें उसी ढंग से दोहरा देते हैं। यह नृत्य गांव के छोटे उत्सवों पर प्रायः रात को होते हैं। ऐसे लोक-नृत्यों का प्रचलन अधिकतर शिमला, सिरमौर, कुल्लू, सोलन तथा मण्डी के ग्रामीण क्षेत्रों में है।

(ख) **समूह लोक-नृत्य :** ऐसे लोक-नृत्य का प्रदर्शन प्रत्येक बड़े उत्सव, मेलों पर होता है। यह प्रदेश के प्रत्येक भाग में और बाहर भी अधिक लोकप्रिय हैं।

इन लोक-नृत्यों का वर्गीकरण लिंग, जाति के आधार पर भी किया जा सकता है, जैसे—

(क) **महिला लोक-नृत्य :** लोक-नृत्यों में केवल स्त्रियां ही भाग लेती हैं। इन लोक-नृत्यों में हिमाचल के अनेक नृत्य गिने जा सकते हैं। जैसे चम्बा का घुरेही, तिलयोली डांगी और घौडायी लोक-नृत्य और शिमला का तुरिण नृत्य और कांगड़ा क्षेत्र के अनेक लोक-नृत्य गिने जा सकते हैं।

(ख) पुरुष लोक-नृत्य : ऐसे लोक-नृत्यों में केवल पुरुष ही नाचते हैं, जैसे सिरमौर और शिमला जनपदीय क्षेत्र के जोली, छट्टी, घुगती, ठोडा नृत्य, कुल्लू के तलवार, करथी, लाहौल स्पिति का कमर नृत्य के नाम लिए जा सकते हैं।

(ग) मिश्रित लोक-नृत्य : हिमाचल प्रदेश में ऐसे भी असंख्य लोक-नृत्य हैं जिनमें स्त्री-पुरुष मिलकर नाचते हैं। इनमें किन्नौर के अनेक लोक-नृत्य, कुल्लू के नाटी, सांगला, पेखा, चम्बा के गद्‌दी, पंगवाल नृत्य, शिमला की नाटी, माला इत्यादि लोक-नृत्य शामिल हैं।

इन लोक-नृत्यों का वर्गीकरण अवसर के आधार पर भी किया जा सकता है जैसे—

(क) धार्मिक लोक-नृत्य : धर्म हिमाचल प्रदेश की जनता के दैनिक जीवन का एक अंग है। इसलिए लोक-नृत्य में भी इसका महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इन लोक-नृत्यों में कांगड़ा क्षेत्र के रस, गुग्गा, भगत नृत्य, कुल्लू और शिमला क्षेत्र के देव खेल नृत्य, चम्बा के सेन नृत्य, तथा लाहौल स्पिति के मकर नृत्य शामिल हैं।

(ख) सामाजिक-धार्मिक नृत्य : प्रत्येक समाज के अपने-अपने मूल्य एवं आदर्श होते हैं। उनका समावेश वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कर लेता है। प्रत्येक जाति का जीवन इसी धुरी के इर्द-गिर्द घूमता है।

सामाजिक, धार्मिक लोक-नृत्य में प्रायः हिमाचल के सभी क्षेत्रों के सारे लोक-नृत्य गिने जा सकते हैं। कोई मेला या उत्सव देवी-देवता के बिना पूरा नहीं समझा जाता और उनमें लोक-नृत्य का न होना उसे रसहीन बना देता है।

(ग) अवकाश या आनन्द-नृत्य : ऐसे लोक-नृत्यों में फूकी नाटी, प्रयाण नृत्य, ठोडा लोक-नृत्य इत्यादि गिने जा सकते हैं। इन नृत्यों द्वारा मानव को आनन्द भावनाओं को यथेष्ट प्रकटीकरण का अवसर मिलता है।

क्षेत्रीय आधार : यहां पर सभी वर्गीकरण की प्रणालियों को संरक्षित रखते हुए हिमाचल के लोक-नृत्यों का परिचय क्षेत्रीय आधार पर देने का प्रयत्न किया गया है। क्षेत्रीय आधार पर इन लोक-नृत्यों को तीन भागों में बांटा जा सकता है। यह वर्गीकरण केवल परिचय के लिए उचित है मलेकिन अपने आपमें बिलकुल पूर्ण नहीं।

(क) पहाड़ी लोक-नृत्य

(ख) आदिवासी लोक-नृत्य

(ग) मैदानी लोक-नृत्य।

हिमाचल प्रदेश के लोकप्रिय नृत्यों में पहाड़ी और आदिवासी लोक-नृत्य की विशेष भूमिका है और हिमाचल के सभी लोक-नृत्यों की गिनती पहाड़ी लोक-नृत्य में भी की जा सकती है। पंजाब और हरियाणा की सीमा से लगे हुए थोड़े से क्षेत्रों में कुछ मैदानी लोक-नृत्यों जैसे गिद्धा और भंगड़ा भी कभी-कभी प्रदर्शित होते हैं। पर धीरे-धीरे पहाड़ी लोक-नृत्य ही वहां अधिक लोकप्रिय होते जा रहे हैं।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि हिमाचल प्रदेश के सभी लोकनृत्यों के बारे में विस्तार से लिखना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि जीवन की तरह इनका भी कोई निश्चित ओर-छोर नहीं। लोक-कलाकार की प्रतिभा, कल्पना-शक्ति, सौन्दर्य-प्रेम और आवश्यकता के अनुसार प्रत्येक लोक-नृत्य में परिवर्तन आते रहे हैं और आते रहेंगे। पर एक बात का विशेष ध्यान रखना होगा कि इन लोक-नृत्यों का लोक-जीवन से जो अटूट सम्बन्ध रहा है, वह कभी ढीला नहीं होना चाहिए। उसी अटूट रिश्ते को कायम रखने की दिशा में उठाये गये कदमों में कभी शिथिलता नहीं आनी चाहिए। कई बार आधुनिक एवं पाश्चात्य वाद्यों के साथ लोकगीतों एवं लोक-नृत्यों को जोड़ने का व्यर्थ प्रयत्न किया जाता है, जो सर्वथा निरर्थक एवं घातक सिद्ध होगा।

लोक-नृत्यों में कलाकार भले ही स्वान्तः सुखाय काम करता हो परन्तु अपनी कला को जनता के सामने लोक-रुचि अनुकूल रखना भी उसका सामाजिक कर्तव्य है। ये पहाड़ी लोक-नृत्य लोक-जीवन से सम्बन्धित होकर कोई पृथक् सत्ता नहीं रखते। उसकी उपादेयता वहीं तक है, जहां तक वह लोक-जीवन की आशाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति करे।

लोक-नृत्य परम्परा का आकर्षण, प्रभाव, शक्ति एवं सजीवता तब तक कायम रहेगी, जब तक वह अपनी मिट्टी की गंध और महिमा को अभिव्यक्ति देती रहेगी जिसकी वह उपज है, जो उसकी बाहरी तड़क-भड़क में जीवन-प्राण बनकर समा गई है।

यहां केवल हिमाचल प्रदेश के कुछ क्षेत्रों के लोकप्रिय लोक-नृत्यों का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयत्न किया गया है, क्योंकि शास्त्रीय नृत्यों की तरह

इन्हें किसी दृढ़ और स्पष्ट नियमों में बांधना संभव नहीं है और वास्तव में ये उन पक्षियों की तरह हैं जो स्वतन्त्र वातावरण में खूब फुदकते, उछलते, उड़ते, चहचहाते हैं परन्तु नियम रूपी पिंजरा चाहे सोने का ही हो, उसमें घुट-घुटकर मर जाते हैं।

कुछ जिलों के लोक-नृत्यों का परिचय अलग से यहां इसलिए भी नहीं दिया जा रहा, क्योंकि उनमें भी जो लोक-नृत्य प्रचलित हैं, उनका जिक्र अन्यत्र आ चुका है केवल नाम और वेशभूषा का ही कुछ अन्तर है और फिर कुछ क्षेत्रों में लोक-नृत्यों की परम्परा आज समाप्त-सी हो चुकी है। इस अरुचि के कारण भौगोलिक, सामाजिक एवं राजनैतिक सभी हो सकते हैं। क्योंकि भारत के नगर-क्षेत्रों की तरह वहां लोक-नृत्य परम्परा को उस आदर-भाव से नहीं देखा जाता जिसके कारण ये खिलते, पनपते और जीवित रहते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने यह मत प्रकट किया है जो ठीक भी दीखता है कि "हिमालय प्रदेश गंधर्व, यक्ष और अप्सराओं की निवास-भूमि है।" इनका समाज संभवतः उस स्तर पर था, जिसे आजकल के पंडित मुनालअन सोसाइटी कहते हैं। शायद इससे भी आदिम, परन्तु वे नाच-गाने में कुशल थे। इन्हीं जातियों के साथ किन्नरों का भी अधिक विस्तृत वर्णन मिलता है जो नृत्य और गायन-विद्या में दक्ष थे। यह तों इतिहासकारों की खोजबीन का विषय है, कि इन जातियों में से कौन-सी जातियां विशुद्ध रूप से हिमालय के इस क्षेत्र में अपनी परम्पराएं कहां तक सुरक्षित रख पाई हैं। परन्तु इतना आज भी स्पष्ट है कि हिमालय के इस प्रदेश में रहने वाले लोगों में अब भी लोक-नृत्य अत्यन्त लोकप्रिय हैं। हिमाचल प्रदेश के हरियाणा और पंजाब के साथ लगने वाले कुछ क्षेत्रों को छोड़कर असंख्य लोक-नृत्य अपने परम्परागत रूप में प्रत्येक उत्सव, त्योहार और मेलों पर प्रदर्शित होते हैं।

वीर धरती की शोभा हैं। वीर ही इस धरती पर जीने का आनन्द उठाते हैं। वीररस लोकजीवन में आनन्द, शक्ति की चेतना, साहस और उद्देश्य प्राप्ति के लिए अदम्य उत्साह और आगे बढ़ने की प्रेरणाशक्ति का संचार करता है।

हिमाचल प्रदेश के अनेक जनपदों में वीररस से भरपूर लोकगाथाएं, लोकगीत और उन्हें शरीर-संचालन, थिरकन और लोकवाद्यों द्वारा प्रकट करने की लोकपरम्परा आज तक जीवित है। परन्तु आज की वैज्ञानिक टैक्नौलॉजी प्रगति से पुरानी स्वस्थ लोकपरम्पराओं की ओर रुचि क्षीण होती जा रही है,

जिसके कारण जीवन में रुक्षता, निरसता और व्यक्तिगत स्वार्थ की मात्रा बढ़ गई है और सामूहिक जीवन के प्रति रुझान कम होता जा रहा है।

कायङ्ग लोकनृत्य : कहते हैं कहीं-कहीं ऊंची-ऊंची चोटियों में जो सदा बर्फ से ढंकी रहती हैं, बर्फ का राजा (हिमवान) युकुन्तरस अपनी दो बेटियों गौरी और गंगा के साथ रहता था। एक बार विष्णु ने महादेव को कहा—"मामा और तो सब ठीक है परन्तु बिना मामी के काम नहीं चल रहा। महादेव ने विवाह की स्वीकृति दे दी। भगवान विष्णु ने अष्टकोरिंड देवताओं को सभी जगह योग्य वधु खोजने का कार्य दिया। सभी असफल रहे। अन्त में विष्णु और महादेव साधू का वेष धारण कर बर्फ के राजा युकुन्तरस के पास पहुंचे। युकुन्तरस के महल में सोने, चांदी, लोहे, तांबे, पीतल, सिक्के और लकड़ी के सात द्वार थे। जिन्हें प्रत्येक डेवढ़ी पर रखे उसी धातु के नगाड़ों को बजाने के बाद खोला जा सकता था। इन दोनों साधुओं ने ऐसा ही किया। अन्दर जाकर विष्णु ने युकुन्तरस से ईशुरस के विवाह का प्रस्ताव रखा। युकुन्तरस को इन साधुओं का विवाह प्रस्ताव पसंद नहीं आया और वह उन पर क्रोधित हुआ। उसने साधु के वेश में महादेव को भगाने के लिए खूब बर्फ गिराने का निश्चय किया। साधु बाहर बैठे रहे और खूब बर्फ गिरती रही। राजा ने बाहर देखा तो इधर-उधर 12 फुट से ऊंची बर्फ गिर गई थी। परन्तु महादेव पर बर्फ का थोड़ा भी अंश नहीं गिरा था। यह देखकर युकुन्तरस की दोनों कन्याएं गौरी और गंगा पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। उन दोनों ने अपने पिता को विवाह प्रस्ताव मंजूर करने के लिए मना लिया। स्वीकृति की सूचना मिलते ही महादेव ने बारह सूर्य एक साथ चमकाकर एक ही क्षण में सारी बर्फ पिघला दी।

राजा युकुन्तरस (पर्वतराज) ने विवाह के लिए कुछ शर्तें रखीं। उसने विष्णु को बताया कि यदि "प्रत्येक बाराती एक-एक बकरे का मांस और 20 पथा (12 छटांक के बराबर) नमक खा ले तथा बकरों की खालों को नर्म करके एक ही रात में सुखाकर आटा पीसने को खालटा तैयार कर दे तो वह गौरी का विवाह महादेव से कर देंगे"।

विष्णु ने सब शर्तें मान लीं और निश्चित समय पर महादेव की बारात आ गई। राजा ने प्रत्येक बाराती के लिए बीस पथा नमक, बीस पथा चावल और एक-एक बकरा भेज दिया और बकरों को काटने को एक घन्न दिया। भगवान विष्णु यह सब समझ गये। उन्होंने सभी बारातियों को कायड. नृत्य

आरम्भ करने का सुझाव दिया। कायङ नृत्य में नर्तन करते हुए वे घन्न की भूमि पर एक सिरे से रगड़ते जाते, जिसके कारण वह घिसते-घिसते कुल्हाड़ा बन गया। तभी बकरों को बारी-बारी से काटकर एक-एक टुकड़ा मांस सभी नर्तक नमक लगाकर खाते जाते। कटे बकरों की खालें पांवों के नीचे दबाकर नर्तकों के पांवों से वे नर्म होती जातीं। शर्तें पूरी हो गयीं और गौरी का विवाह महादेव से हो गया। महादेव साथ में गंगा को भी ले आये। इससे आगे सृष्टि की उत्पत्ति की कथा आती है। कायड. लोक-नृत्य में लोक-नाट्य के अनेक रूप हैं, जिनमें वाकायङ थरकायङ, छेरकी कायड., नागसकायङ, शुना काय, और बोनयाग छु नृत्य इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

मुखैटा नृत्य : किन्नौर के लोग दुरात्माओं को भगाने के लिए यह नृत्य करते हैं। मुखौटे प्रायः लकड़ी के बने होते हैं। सिर और ठोड़ी पर स्थानीय पशुओं के बाल लगाए जाते हैं। सभी मुखोटों पर विभिन्न रंग चढ़ाए जाते हैं और उन्हें रंग-बिरंगे मणकों और पत्थरों से सजाया जाता है। ये प्रायः धार्मिक प्रकार के लोक-नृत्यों में अधिक उपयोग में लाए जाते हैं। ये प्रायः रक्षा के लिए मंदिरों में रखे जाते हैं और लामा के लिए ही उन्हें विशेष उत्सवों पर बाहर निकालते हैं।

शेर नृत्य : लामा या प्रेत नृत्य किन्नौर के आदिवासी भिक्षुओं में अधिक लोकप्रिय है। इस नृत्य का आयोजन भूत-प्रेतों को भगाने और प्राकृतिक प्रकोपों को हटाने के लिए किया जाता है। इस लोक-नृत्य में सभी नर्तक मुखौटा पहनकर नाचते हैं। नर्तकदल में से दो नर्तक शेर का मुखौटा पहनते हैं। इस नृत्य में शेष नर्तकदल इन दो शेरों को काबू करने का प्रयत्न करते हैं जिसका स्पष्ट अभिप्राय यही है कि भूत-प्रेत और आपत्ति को वीरता से काबू में किया जा सकता है। इस लोक-नृत्य के साथ ढोल, नरसिंगे और शहनाई बजाए जाते हैं। लाहौल-स्पिति के क्षेत्रों में भी यह लोक-नृत्य लोकप्रिय है।

थरक्यराङ नृत्य : इसमें थर (बाघ) की तरह नर्तक लोग तीव्र गति से नाचते हैं, आगे कदम बढ़ाते हैं और पीछे हटते हैं। इसके नृत्य-गीत भी नाटी की तरह ही होते हैं। इस नृत्य में बोर्ची नाटी का लोकगीत गाया जाता है। प्रायः यह नृत्य तभी प्रदर्शित होता है, जब कोई शिकारी बाघ को मारता है। ऐसे अवसर पर शिकारी के सिर पर वीरता की प्रशंसा के लिए पगड़ी बांधी जाती है और बाघ की खाल में भूसा भरकर उसे नचाया जाता है।

नागन कायङ नृत्य : यह नृत्य अधिक लोकप्रिय नहीं। कुछ विषेश जगहों पर इसका प्रदर्शन होता है। चगोव, फुल्याच या ऐराटङ, मेलों में यह नृत्य कभी-कभी प्रदर्शित होता है। इस नृत्य में एक विशेष व्यक्ति कण्डे की देवी नागिन बन जाता है और हाथ में पानी से भरा "क्रो" दिया जाता है। इससे गिरा हुआ पानी सौभाग्य-चिह्न समझा जाता है। इसलिए इस जल को अपने शरीर पर गिराने के लिए अन्य नर्तक सर्प की तरह नाचते हुए नागिन के पास जाते हैं।

मकर नृत्य : इस प्रकार के नृत्य (Dragon Dance) में नर्तक मुख पर मुखावरण पहनते हैं। शरीर पर लम्बा चोला पहनते हैं जिसके बाजू लम्बे होते हैं। इस पहनावे में नर्तक का कोई भी अंग दिखाई नहीं देता। इस नृत्य के साथ एक कथा भी जुड़ी हुई है। भोट राजाओं में लंग दर्मा राजा बहुत अत्याचारी था। उसने हिमाचल प्रदेश के धर्म और संस्कृति को नष्ट-भ्रष्ट करने में कोई भी कसर न उठा रखी थी। उसने अनेक बौद्ध-विहार, पुस्तकालय नष्ट किए। पंडित और लामा मौत के घाट उतारे। एक बार जब वह विजयोत्सव मना रहा था तो उसमें यह मकर नृत्य भी हो रहा था। वह नर्तक अपने कपड़ों में एक छुरा छिपाकर लाया और नाचते-नाचते राजा के समीप पहुंचा और छुरे से राजा की हत्या कर डाली। तब से यह नृत्य लाहौल-स्पिति का लोकप्रिय नृत्य समझा जाता रहा है। इस नृत्य में लामा लोग गिथर उत्सव पर नाचते हैं। नर्तक लोग खुखरी के साथ नाचते हैं।

छम या प्रेत नृत्य : यह लामाओं का धार्मिक नृत्य है और प्रायः बौद्ध गोम्पा में प्रदर्शित होता है। नर्तक चमकीले वस्त्र-आभूषण पहनकर जानवरों, पक्षियों और भड़कीले प्रेतों के चमकीले मुखौटे पहनते हैं। नर्तक बार-बार एक ही शैली में लयात्मक रूप में पांव पटकते हुए एक ही दायरे में नाचते हैं। हाथ में कढ़ाई किए झंडे लिए नर्तकों में अभिनय के साथ-साथ मुखौटा पहने नर्तक विनोद करते हुए एक विचित्र-सा प्रभाव वातावरण में फैला देते हैं। इस नृत्य में लामा लोग भी भाग लेते हैं और नर्तक के साथ कुछ मन्त्र भी पढ़ते हैं। नर्तक विभिन्न प्रकार के प्रायः आठ मुखौटे पहनते हैं। ये आठ करोढा भयानक रूप आठ महान बोद्धिसत्व के प्रतीक हैं।

यह लोक-नृत्य बौद्ध लामाओं की तान्त्रिक नृत्य पद्धति है। लोक-विश्वास अनुसार प्रसिद्ध बौद्ध लामा पल्दन ईश ते इस लोक-नृत्य की परम्परा आरम्भ

की। इस लोक-नृत्य का आयोजन मानव जाति के उत्थान और दुरात्माओं को भगाने के लिए किया जाता है। इसका आरम्भ बौद्ध मन्त्रों और प्रार्थना से किया जाता है। इसमें विशाल आकार के वाद्ययन्त्र—थङ्जेन (बहीकरनाल) डन (बड़ा ढोल) रालगो (बजाने की कटोरियां) और (ज्ञेलिङ) शहनाई बजाए जाते हैं।

नर्तक विशेष प्रकार की चमकीली वेश-भूषा में मंच पर आते हैं। मुकुट (चेसम) (कपाली) हाथ में लेने के लिए कमाल, फुरबू जिसे दायें हाथ में लिया जाता है, शानाक्या (टोपी) तोतयो (विशेष चोगा), कोएचिन (जैकेट-पंगदान) पहनते हैं।

इस नृत्य में प्रारम्भ में देवी-देवताओं से रक्षा और कल्याण के लिए आयोजन की सफलता के लिए आशीर्वाद और अन्त में धन्यवाद शामिल है। नृत्य के दौरान उपस्थित लामा अखण्ड मन्त्रोच्चारण करते रहते हैं। उनका विश्वास है कि मंत्रों से जिनका आह्वान किया जाता है, वे उपस्थित होकर विनती सुनते हैं। सारे छम्म नृत्य को वे 18 भागों में बांटते हैं। नर्तक लामा मुखौटे पहन कर, हाथ में कपाल और फुरबू लेकर नृत्य करते हैं। इसमें अन्य देवी-देवताओं के साथ-साथ कोएजल (यमराज) और उनकी धर्मपत्नी यम चामुण्डी का आह्वान किया जाता है। छम्म के मुख्य भाग सेरक्यम् में देवताओं को पेय भेंट किए जाते हैं। डल्योके में दुरात्माओं को भगाने की प्रार्थना की जाती है। छिगुल, छम्मबुन-छम्मनाचुसुड. को तेरह लामाओं का लोक-नृत्य भी कहा जाता है। गुकोर, लुबा, शिन्दौत, ढंग्येत्या, श्यावा, छम्मशुक, छोटग्यल, सेरक्यमु, छिदाक्मा, डल्योक और छम्मचोत् आदि इस आयोजन के विशेष-लोकनृत्य हैं। छम्म मुख्यतः मुखौटा नृत्य है।

स्पिति वादि के गुतोर उत्सव में छम्म का विशेष आयोजन नवम्बर में किया जाता है। तीन दिन सभी लोग प्रार्थना करते हैं और चौथे दिन छम्म नृत्य का आयोजन किया जाता है। छम्म-नृत्य के साथ-साथ थंकाओं (चित्रपटों) का पूजन और प्रदर्शन आवश्यक माना जाता है। लाहुल में क्येमूर, शाशुर और तिनन (गोन्धला) में ही लामाओं द्वारा छम्म का आयोजन किया जाता है। मुखौटे प्रायः प्रेतों जैसे होते हैं, इसलिए इसे प्रेत-नृत्य भी कहा जाता है।

भूछेन-नृत्य : चूंकि इस नृत्य में केवल भूचन जाति के लोग नाचते हैं, इसलिए इसका नाम भूछन पड़ गया है। इस नृत्य में तलवार चलाने की दक्षता

प्रदर्शित होती है। यह पिन घाटी का नृत्य है। इस जनपद में याक-नृत्य, सिंह-नृत्य बन्दर-नृत्य और बाघ-नृत्य का भी प्रचलन है। इन जानवरों की खालों में घुसकर कलाकार अपनी नृत्य कला का प्रदर्शन करते हैं। मुखौटों के अतिरिक्त मुंह में लाल, काला, हरा, पीला रंग लगाकर भी विभिन्न उत्सवों एवं अवसरों पर प्रदर्शित किए जाते हैं।

लाहौल-स्पिति में इन आदिवासी लोक-नृत्यों की अद्‌भुत वेश-भूषा और लोकवाद्यों से वातावरण पर एक विचित्र-सा प्रभाव छा जाता है। भले ही आप लोकगीत की कोई पंक्ति न समझ पा रहे हों, परन्तु मन-ही-मन आपको एक अपूर्व आनन्द का आभास होने लगता है और यही लोक-कला की श्रेष्ठता का प्रमाण है।

लाल्हड़ी नृत्य : कुल्लू के लालडी नृत्य को संवाद नृत्य भी कहा जा सकता है। इसमें लोकगीतों की उन्मुक्त धारा को खुली उड़ान की तुकबन्दी का रूप दिया जाता है। इसमें प्रायः नियम यह रहता है कि जिस नर्तक दल की पंक्ति (टप्पा) न जुड़ सके, वह पराजित समझी जाती हैं।

कुल्लू जनपद में लाल्हड़ी गाने वालों की टोलियां (युवतियां) दशहरा मेले के दिनों में रात के समय बारी-बारी प्रत्येक घर में जाकर लाल्हडी नृत्य रात-रात भर करती हैं। लाल्हडी में प्रायः ऐसे नृत्य-गीत सुने जा सकते हैं–

कुल्लू री ऐ पादु आलीए
घलो ऐबे घरा वे जाणा।

तब लड़कियों की टोलियां तुक मिलाती हैं–

कुल्लू री ऐ पादू आलीए
झेची मामी लायची दाणा।

इसमें नर्तक ही नृत्य करते हैं। दूसरे खड़े-खड़े उसका उत्तर ढूंढ़ते हैं जब एक दल चुप हो जाता है तो खड़े लोग (नर्तक) नाचते लगते हैं।

यह स्त्रियों का लोकप्रिय नृत्य है। इसमें गांव के देव-स्थानों पर स्त्री नर्तकदल दो पंक्तियों में बंट जाते हैं और आमने-सामने खड़े हो जाते हैं। एक दल लोकगीत की एक पंक्ति गाना आरम्भ करता हुआ कमर कुछ झुकाकर, दोनों हाथों से तालियां बजाता है और जब तक गीत की एक पंक्ति पूरी नहीं हो जाती, नर्तक पंक्ति आगे बढ़ती जाती है और दूसरा नर्तक दल पीछे हटते हुए नाचता हैं जब लोकगीत की पंक्तियां पूरी हो जाती हैं तब

पहली पंक्ति वाला नर्तक दल खड़ा हो जाता है और दूसरी नर्तक पंक्ति उसी तरह नीचे झुकती आगे बढ़ती, तालियां बजाती और गाने की दूसरी पंक्ति पूरी करती है और यही क्रम चलता रहता है।

हरण नृत्य : "हरण नृत्य" नाम से विख्यात इस नृत्य का किन्नर समुदाय के आदिम प्रागैतिहासिक स्वांग "होरिड.फो," कुल्लू जनपद के हरण और चम्बा क्षेत्र में प्रचलित "हरणातर" जैसे लोकधर्मी नाट्यों से पर्याप्त साम्य है।

कुल्लू में हरण नृत्य का शुभारंभ कुल्लू दशहरा के अन्तिम दिन "लंकादहन" की पूर्व संध्या "महल्ला रात्रि" पर महादेव का हेसण देवता के सामने विशिष्ट नृत्य करके संपन्न की जाती है। ढालपुर मैदान स्थित रघुनाथजी के अस्थायी मंदिर के सामने बिजली महादेव की हेसण (नाटी) नृत्य प्रदर्शन करती है। इस लोक-नृत्य का प्रदर्शन वर्ष की निश्चित अवधि में संभव है। कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा की पूर्व रात्रि से लेकर कुछ भागों में 15 पौष तक कुछ में माघी त्योहार तक और कुछ अन्य क्षेत्रों में होली तक लोक-नृत्य/नाट्य रात-रात भर आयोजित किया जाता है।

इस लोक-नृत्य में तीन मुख्य पात्र होते हैं : हरण, बूढ़ी और कान्ह ऊन के दो पट्टू (कम्बल) जो प्रायः दो मीटर लम्बे और एक मीटर चौड़े बारीक काले और सफेद खानों को लेकर उन्हें एक ओर चौड़ाई और एक ओर लम्बाई की ओर सिल दिया जाता है। चौड़ाई के खुले और लम्बाई के सिले भाग के किनारों को लेकर उसे एक व्यक्ति के सिर पर बारीक दुपट्टे से बांध दिया जाता है। साथ में 30 सें.मी. लम्बे भाग के सूखे पौधों के टुकड़े लेकर उनके चारों ओर फूल सजाकर सींग के रूप में उस व्यक्ति के सिर के दोनों ओर पट्टू के साथ बांध देते हैं। हरण बनाने के लिए दो पुरुषों को आगे और पीछे डालकर काले रंग की डिब्बियों वाले ऊनी पट्टू से ढककर अगला पुरुष थोड़ा आगे झुककर और दूसरा पहले पुरुष के नितम्ब के ऊपर दोनों हाथों से अपनी पकड़ मजबूत कर नाचने में सुविधा की दृष्टि से घोड़ीनुमा आकार ले लेता है। अगले पुरुष को अगली हरण और पिछले को पिछली हरण कहते हैं। एक युवक को पट्टू, सलवार, सिर पर थिपू, कुरती, गले में हार और अनेक तरह के आभूषण लगाकर बूढ़ी स्त्री बनाया जाता है और दूसरे को चोला, टोपी, चुड़ीदार पायजामा, कमीज पहनाकर कान्हा बनाया जाता है। तब ढोल, नगारा, काहुल (करनाल), रणसिंघा, शहनाई, बांसुरी और भाणा जैसे लोकवाद्य-यन्त्रों

के संगीत में हरण, बूढ़ी और कान्ह, बारह से अधिक प्रकार के विशिष्ट लोक-नृत्य करते हैं।

इस लोक-नृत्य में हरण खलियान के बीच में एक जगह धीरे-धीरे नाचती है और कान्हा और बूढ़ी उसके चारों ओर, आगे-पीछे, दायें-बायें नाचते हैं। कुछ नृत्यों में हाथ खाली और कुछ में हाथों में रूमाल या तलवार होते हैं। हरण नृत्य के प्रमुख रूप हैं—सन्हि-बधाई, सूने-रा-बाधूण, चन्द्रावली, देवारी खोली, दूध कटोरू और हरण-पहुणी-आयी विलम्बित ताल वाले धीमी गति के लोक-नृत्य हैं।

खड़यात्तर नृत्य : कुल्लू में भी प्रदेश के अन्य क्षेत्रों की तरह प्रायः प्रत्येक ग्राम देवता का अपना लोकगायक दल, लोक-वादक और लोक-वाद्य होते हैं, जो देवयात्रा के संग चलता है। ढोल और अन्य लोकवाद्य, शहनाई, करताल इत्यादि की सुमधुर गूंज में नर्तकदल की तलवारें अपनी विशेष नर्तक वेशभूषा में वाद्यों की ताल पर हाथों में हिलती हैं और तलवार-नृत्य आरम्भ हो जाता है। कुछ नर्तक विलग होकर नर्तन के साथ तलवार का खेल दिखाते हैं। इस खेल में प्रत्येक नर्तक नाचता हुआ, दूसरे प्रतिद्वन्द्वी के वार से बचाव करता है। शेष नर्तक दल एक हाथ में तलवार लेकर और दूसरे में ढाल लेकर नृत्य करते रहते हैं। तलवार नृत्य की समाप्ति पर नर्तक जोड़े फिर से माला में आकर लयात्मक गति के साथ नृत्य की मनोहर प्रदर्शन करते हैं। यह लोक-नृत्य आनन्ददायक होने के साथ-साथ धार्मिक वीर रस से भी भरा है।

सांगल नृत्य : सांगल नृत्य में स्त्री-पुरुष साथ नाचते हैं। यह नृत्य स्थानीय देवी-देवता और वीरपुरुषों की याद में प्रदर्शित होते हैं। इसमें पुरुष और स्त्रियां आमने-सामने अलग-अलग अर्द्धावृत्त बनाते हैं, परन्तु लोक-नृत्य की प्रगति के साथ-साथ वे आपस में मिल जाते हैं। लोकनर्तक प्रश्नोत्तर के रूप में नृत्य गीत गाते हुए नाचते हैं।

करथी नृत्य : कुल्लू का एक अन्य लोकप्रिय वीर नृत्य है—करथी। इस नृत्य में प्रायः स्त्री-पुरुष दोनों नाचते हैं। इस नृत्य में हाथ-पांव की थिरकन एक ओर और लय दूसरी ओर होती है। भड़कीले, सुन्दर और नये वस्त्र आभूषण में लोग गांव के खुले मैदान में आकर चांदनी रात में लोकगीत गाते हुए नाचते हैं। लोकनर्तक एक-दूसरे का हाथ थामकर एक वृत्त बनाते हैं और धीरे-धीरे संगीत और लोकनाच की ताल पर नाच आरम्भ होता है। शीघ्र ही

नृत्य में गति आने लगती है और नृत्य चर्मोत्कर्ष पर पहुंच जाता है तब नारी लोकनर्तक अपने सहायक नर्तक का आनन्द और भी बढ़ाकर अपने हाथ और पैरों के स्पन्दन से प्रेरित करती है। लोक-नृत्य की गति का लोक-संगीत की भावनाओं के साथ गहरा सम्बंध होता है। इन नृत्यगीतों की विषयवस्तु कहीं वीररस कहीं देवताओं की स्तुति दशहरा या अन्य प्रमुख उत्सवों पर कुल्लू के लोक-नृत्यों की शोभा देखते ही बनती है।

हुलकी नृत्य : देऊ खेल "के पूर्वरंग को" हुलकी नृत्य, भीं कह सकते हैं। हुलकी नृत्य में देवता अपनी प्रसन्नता प्रकट करता है। देवता की गुरमंडली के सभी सदस्य लम्बे चोले पहनकर सिर पर गोल कुल्वी टोपी रखकर पंक्तिबद्ध बैठ जाते हैं। गुरु आवश्यक पूजा पात्र कांसे या चांदी की थाली, जिसमें अक्षत (चावल) बिखरे-बिखरे रहते हैं, जलता पूजा का धनैरा (धौड़च) और पीतल की घंटी सामने रख देते हैं। सभी गूर मंत्रोच्चार करते हुए अपने दोनों हाथ, अगुलियों के बल कांसे की थाली में टिकाकर, देवस्तुति करते हैं। जब गुरु में कंपन प्रारम्भ होता है सिर से टोपियां एक ओर गिर जाती हैं। तभी देवता का वाद्यवृंद बजना प्रारम्भ हो जाता है जैसे करनाल, रणसिंघा, काहल बजायें जाते हैं। गुरु और दर्शक उठ खड़े होते हैं गुरु अपने हाथों में धडच और घण्टी लेकर देवरथ के समीप ले जाते हैं। देवता की सजी-धजी पालकी (रथ) को एक व्यक्ति सिर पर या दो व्यक्ति उसे डन्डे के सहारे कंधों पर उठाकर नृत्य प्रारम्भ हो जाता है। लोग भी नृत्य करते हुए मेला स्थल के तीन चक्कर काटते हैं।

देऊ खेल : देऊ खेल मूलतः देवताओं का नृत्य है। अनुष्ठान के रूप में देवता के गुर ही इसे प्रदर्शित करते हैं। इस नृत्य के लिए प्रत्येक देवता के भण्डार में रखे हुए विभिन्न प्रकार के शस्त्र निकाले जाते हैं। इनमें खंड़ा, लोहे की जंजीरें, माला, तीन-चार किस्म की लोहे की कटारें होती हैं। कहीं-कहीं जंजीरों में बंधा हुआ लोहे का एक कांटेदार गोला भी होता है। इन सारे हथियारों को देवता के चेले के आगे, जिसे 'गुर' कहते हैं, जमीन पर गाड़ दिया जाता है। तब गुर नंगा होकर इनमें से हरेक के प्रयोग का पूर्ण प्रदर्शन करते हैं तथा कटारों को अपने नंगे शरीर पर चलाता है। लोहे की जंजीरों से अपने नंगे शरीर को पीटता है साथ-साथ ढोल तथा अन्य लोकवाद्य की एक विशेष ताल पर नाचता भी जाता है। इस नृत्य को शक्ति पूजा का

प्राचीनतम रूप भी माना जा सकता है। इस नृत्य में मन्त्रोच्चार, गुर द्वारा नृत्य देखने योग्य है।

इसे हर स्थान पर या जब कभी प्रदर्शित नहीं किया जा सकता। देवताओं में मेलों-अनुष्ठानों में ही प्रदर्शित किया जाता है और यह मूक अभिनय का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। यह दो-तीन घण्टों तक लगातार चलता रहता है। देवता के गुर या चेले पात्र होते हैं। खेल का आरम्भ हुलकी नृत्य से होता है। देवता के दर्जनों ढोल, नगारे, दराघ, तुरही, ढोलक, दमामा, भांणा, थाली, कांहल(करनाल), रणसिंघा, शहनाई, ढोंसू, क्षेणे आदि वाद्ययंत्रों की धुन में पहले सभी लोग और गूर नाचते हुए देवता के मंदिर की परिक्रमा करते हैं और मंदिर के सामने मैदान में पहुंचते हैं। सभी लोग मैदान के चारों ओर बैठ जाते हैं। एक किनारे पर खड़े होकर वादक वाद्यवृन्द बजाते हैं। दूसरी ओर सभी गुर वरिष्ठता के आधार पर खड़े होते हैं। उसी समय देवता का कारदार उन सभी शस्त्रों को उठा-उठाकर मैदान के मध्य भाग में गाड़ देता है जिनके द्वारा उस देवता ने आदिकाल में दूत, भूत, दानव, प्रेत, पिशाच, राक्षस को मारकर अपनी जनता को शान्ति दिलाई थी।

गुरों ने लम्बे-लम्बे बाल रखे होते हैं। वे अपने चेलों के बाज उतार देते हैं। नंगे सिर, कमर तक नंगे शरीर और घुटनों से नीचे नंगी टांगों और पैरों में बिना जूते के वे सभी हाथ में विशेष यंत्र "धड़छ" लेकर वाद्य-यत्रों से संगीत में चारों दिशाओं में धूप का धुआं उछालता हुआ नाचता है। भूमि में गाड़े शस्त्रों में से गुर्ज को उठाता है। उसे दोनों हाथों में नचाता हैं। अपने शरीर को पीटता है और चारों दिशाओं में ऐसा प्रदर्शन करता है जिससे प्रकट होता है कि देवता ने अपने शत्रु को गुर्ज से कैसा मारा। उसके बाद जंजीरों के गुच्छे का प्रदर्शन करके दिखाता है कि उसने शत्रु को किस प्रकार जंजीरों से बांधा। उसके बाद बारी-बारी सभी शस्त्रों का प्रदर्शन करता है जिनमें कटारियां प्रमुख हैं। दोनों हाथों में कटारियां लेकर अपने शरीर के चारों ओर घुमाता है। इनके तेज सिरों को अपनी गालों, पेट और पसलियों में चुभोता हुआ वह दर्शाता है कि उसने शस्त्र को उनसे कैसे प्रहार किया। सबसे अन्त में भेखल झाड़ी का प्रदर्शन करता है जिसे सारे समाज में धन्न-धान्य, सुख-शांति, समृद्धि-सम्पन्नता की कामना की जाती है। यह सब कर लेने के बाद वे अन्य गुरों को इशारा करता है। वे एक-एक करके बारी-बारी आकर

उसके चरण छूते हैं और उसके साथ मिलकर सब शस्त्रों का प्रदर्शन पूर्ण करते हैं। देऊ खेल आदि से अन्त तक मूक अभिनय का विशिष्ट उदाहरण है और इस दृष्टि से प्राचीन संस्कृत साहित्य के उप-रूपकों का अवशेष है।

फागली नृत्य : कुल्लू में फागली का त्योहार विशेष रूप से मनाया जाता है। इस नृत्य में कुछ विशेष नर्तक राक्षसों का घास-फूस का लिबास और मुंह पर प्राचीन समय के लकड़ी के बने हुए राक्षसों के मुखौटे लगाकर नाचते हैं। उनका नाच और उनकी गति निःसन्देह मनुष्य की नहीं होती। एक-एक नर्तक (राक्षस) इस सुन्दर किले में से किसी सुन्दर स्त्री या अच्छी लड़की को तलाश करने का अभिनय करता है, जिससे स्पष्ट होता है कि राक्षसों का परस्पर नाच तो होता ही है, इसके साथ-साथ इस नृत्य में देवता के हाथों राक्षसों की पराजय या दूसरी अवस्था में राक्षस के साथ समझौता की कहानी दोहराई जाती है। इस नृत्य में उन हथियारों का भी प्रदर्शन किया जाता है, जो इस लड़ाई में प्रयोग में लाए गए थे।

पंगवाल नृत्य : गद्दियों की भांति पंगवाल भी मनमौजी लोग हैं और लोकगीत एवं लोक-नृत्य इनका लोकप्रिय मनोविनोद है। प्रत्येक उत्सव पर नृत्य आवश्यक समझा जाता है। जाति-पांति के भेदभाव के बिना सब नाचते हैं। देवी-देवता की यात्रा की शोभा भी लोक-नृत्य में है। नृत्य की प्रगति के साथ-साथ अन्य लोग भी नृत्य में शामिल होते जाते हैं। पंगवाल प्रायः सामूहिक नृत्य ही नाचते हैं। अकेला नृत्य का रिवाज नहीं है। स्त्री-पुरुष अलग-अलग नाचते हैं। पुरुष दिन में अधिक नाचते हैं और स्त्रियां सायं ढलने के बाद नाचना पसन्द करती हैं। लोक-नृत्य में ही तीसरा व्यक्ति नर्तक एक-दूसरे का हाथ पकड़कर वाद्यों और लोकगीतों की धुन और लय पर मस्त होकर नाचता है यहां के लोकवादक प्रायः हरिजन होते हैं। हरिजन बांसुरी और ढोल बजाते हैं। नर्तक गाते और नाचते हैं। नर्तक गाते हुए और नाचते हुए दायरे में शरीर को चारों ओर लहराते हुए हाथ-सिर ऊपर और कभी नीचे झुकाते हैं। जब नृत्य चर्मोत्कर्ष पर पहुंच जाता है तो उसमें स्फूर्ति आ जाती है। नर्तक तब तक चारों ओर घूमता हुआ नाचता रहता है, जब तक वह थक नहीं जाता।

सेन नृत्य : पंगवालों का सेन नृत्य धार्मिक है। यात्रा के दौरान यह नाचा जाता है। इसके साथ गीत नहीं होता। बांसुरी और ढोल की लय पर ही

नर्तक नाचते हैं। नर्तकदल में एक अगुआ होता है। उसके हाथ में एक गणेश (कुल्हाड़ी) होती है जिसे वह शरीर के साथ घुमाता रहता है। लेकिन हुन्डन की मन्वत की यात्रा पर दायें से बायें नाचते हैं। ऐसा कहा जाता है कि जब प्राचीन काल में सेन नृत्य हो रहा था, जब एक राक्षस पंगवाल के भेष में दल के मध्य नाचने लगा। वह किसी की जान लेना चाहता था, लेकिन वहां पांगी के दो भाइयों सन्नो और कर्मू को अपने स्थान से न हटा सका, उन्होंने किसी तरह नर्तकदल को संकेत किया कि वह सेन नृत्य को उल्टे तरह से करें ताकि वह राक्षस भाग न सके नृत्य और इसके साथ पवित्र धार्मिक मन्त्र का उच्चारण करें। सेन नृत्य सारी रात चलता रहा, तो लोगों को राक्षस का एक बड़ा मृतक शरीर देखकर आश्चर्य हुआ। इसीलिए वह सैन नृत्य को उल्टा नाचते हैं।

हरणात्तर नृत्य : यह लोक-नाट्य भी है और लोक-नृत्य भी। यह अधिकतर पियूहर, खस्सु, लिलह और साहो जनपद में अधिक लोकप्रिय है। यह कुल्लू के हरण नृत्य की भांति नाचा जाता है। प्रायः होली के दिन किसी मन्दिर में पात्र लोक नर्तक अपने आपको चन्द्रौली, हिरण, खप्पर, ज़ोगी और गद्‌दी विशेष रूप में सजाते हैं। चन्द्रोली के लिए पुरुष पात्र स्त्री की वेशभूषा में सजता है। खप्पर पुरुष मुखौटे पहनते हैं और गीत के साथ नृत्य करते हैं। एक पुरुष पात्र जोगी की वेशभूषा धारण करता है, जो अपने हाव-भाव और बातचीत से लोगों को हंसाता है।

हडनात्र के पात्र लोकवादकों के पीछे-पीछे जुलूस में चलते हैं और घर-घर जाकर उस रात नाचते और गाते हैं। सुबह होते ही यह लोकनाट्य भी समाप्त हो जाता है। घर-घर जाने से जौ अन्न मिलता है।

मुखौटा नृत्य : छतराड़ी यात्रा के प्रारम्भ में बटुक महादेव की रथ-यात्रा निकाली जाती है। इस यात्रा में आगे-आगे चार पुरुष मुखौटे पहने चलते हैं और मन्दिर के प्रांगण में नृत्य करते हैं। उनके साथ ही एक पुरुष स्त्री वेश में मुखौटा पहनकर लोक-नृत्य करता है।

स्त्री मुखौटाधारी शक्ति देवी का प्रतीक माना जाता है अन्य मुखौटाधारी पुरुष राक्षस के प्रतीक माने जाते हैं। नृत्य के समय देवी शक्ति नर्तन करते हुए प्रत्येक मुखौटाधारी पुरुष को धराशयी करती है। उन्हें बिच्छू बूटी के गट्‌ठे से पीटती है। नृत्य करते हुए, वह पुरुष नारी-शक्ति को प्राप्त करने का प्रयत्न

भी करते हैं। नारी शक्ति उनकी एक नहीं चलने देती। कुछ गीत इन पुरुष और स्त्री मुखौटाधारी नर्तकों द्वारा गाये जाते हैं, जैसे—

पठडे बहुरिया हेड़िया शिकोरिया
इस हरनी जो मत मारे हो।
जैसी जोड़ी मेरी, तैसी जोड़ी तेरी
ऐसी जोड़ी इस हरनी री हो।...

इस गीत को युवक और युवतियां साथ-साथ गाते हैं। इस प्रकार के लोकगीतों द्वारा वाद-विवाद और मनोभावों को प्रकट करते हुए अनेक गीत नर्तन के साथ गाये जाते हैं।

छट्टी लोक-नृत्य : यह वीर नृत्य लोक-नृत्यों की अपेक्षा कुछ कठिन है। इसके लिए काफी पूर्वाभ्यास की आवश्यकता रहती है। यह नृत्य भी प्रायः पुरुष ही नाचते हैं इसलिए साधारण लोक-नर्तक इस नृत्य को ठीक तरह से नहीं नाच पाते। इस नृत्य के लिए दक्ष नर्तक के साथ, दक्ष लोकवादक की भी आवश्यकता रहती है। इस नृत्य के साथ नृत्य-गीत यदि कण्ठों की अपेक्षा शहनाई पर भी गाया जाये तो भी काम चल पड़ता है। नहीं तो, ढाकिण या तुरिण स्त्री के मधुर कण्ठ से निकले गीत की लय और ढोलक या नगाड़े की ताल पर भी यह लोक-नृत्य अत्यन्त लुभावना लगता है। इस नृत्य के लिए विशेष लोकगीतों को उतार-चढ़ाव के साथ गाया जाता है। जैसे—

जोबनी दायिए लौए लवाई।
जोबनी दायिए लौवे लवाई ॥
झिशिकी देवी तू बैलीं न आई।
बैलीं न आई, बैलीं न आई ॥

इस लोक-नृत्य में एक-दूसरे के हाथ नहीं पकड़े जाते। नर्तक एक हाथ में रुमाल लेकर और दूसरे में खांडा या तलवार लेकर एक-दूसरे के आगे-पीछे गोल दायरे में क्रम से खड़े होकर झूम-झूमकर नाचते हैं। इसमें कदमों का क्रम अत्यन्त जटिल होता है। धूर में नाचने वाले नर्तक का अनुकरण करते हुए नर्तकदल के अन्य नर्तक नाचते हैं। इस नृत्य की गति बड़ी धीमी रहती है।

प्रयाण, विशू, बिरसू, युद्ध नृत्य : इस नृत्य में लोक-नर्तक हाथ में कोई डंडा, रुमाल, तलवार या डांगरू लेकर एक-दूसरे के पीछे या इधर-उधर बिना

क्रम के खड़े होकर नाचते हैं। जब नर्तकदल, देव मंदिर से मेले के मैदान में या अपने गांव से मेले के मैदान तक या एक गांव से दूसरे गांव तक नाचते हुए आते और जाते हैं, तब यह लोक-नृत्य प्रदर्शित होता है। इसमें ढोल, नरसिंहा, ढोलक, नगाड़ा, शहनाई और करनाल इत्यादि वाद्य बजाते हैं। दो नर्तक प्रारम्भ से गाते हैं, और शेष नाचते हुए आगे बढ़ते और गाते जाते हैं।

ऊंची जागह नाव औरी कीया हो मुहाला भाइयो,
सुता हुन्दा खौशिया जिलाकि न जाला भाइयो।

नृत्य के बीच में कोई बड़ी ऊंची आवाज से चिल्लाते हुए कहता है—

ऊंची जागहे रो फुलड़ फुलौ औ भाइयो,
ऊंची जागहे रा खौशिया पूजा औ भाइयो,
खुंदो री बलि जाईला भाइयो।

शेष सारे लोग एक स्वर में शोर मचाते हुए कहते हैं—हो, हो। इस नृत्य में प्रायः युद्धगीत (वीर-गीत) ही गाये जाते हैं। यह नृत्य तब तक चलता रहता है, जब तक नर्तकदल मेले के मैदान में या मंदिर तक नहीं पहुंच जाता है।

दिवाली नृत्य : दिवाली नृत्य में खुले मैदान के मध्य में बहुत सारी लकड़ियों को इकट्ठी कर उन्हें दिवाली की रात को जलाया जाता है और उसके चारों ओर लोग दिवाली नृत्य नाचते हैं। दो-दो नर्तकों की जोड़ी एक-दूसरे की कमर पर हाथ रखकर दूसरे हाथ में मशाल या रुमाल लेकर ढोल या खंजरी के साथ दिवाली के गीत गाते हुए नाचते हैं। इसमें नर्तक बारी-बारी दायें और बायें कदम उठाते, छलांगें लगाते हुए एक-दूसरे के पीछे-आगे बढ़ते हैं और दायरे में नाचते हैं। नृत्य के बीच कुछ अन्तराल बाद कहते हैं—

देवली बले देवलिए।

दिवाली के नृत्य-गीतों में प्रायः श्रीराम, श्रीकृष्ण और राजा बलि के गीत ही अधिक गाए जाते हैं। जैसे सीताहरण पर राम का शोकाकुल होना—

रामजी लागै औ रुदे। रामजी लागै औ रूदे ॥
जति सति बोलदे लागै। जति सति बोलदे लागै ॥
रूई नी भेडुआ रामा। रूई नी भेडुआ रामा ॥
छेवड़ि आणों मिं तौंई। छेवड़ी आणौं मिं तौंई ॥

राजा बलि के विषय में यह दिवाली नृत्य-गीत गाया जाता है—

बली राजैया जौगनो तेरे
बली राजैया जौगनो तेरे
भेखौ तो बावणों रा कीया
भेखौ तो बावणों रा कीया

ऐसे ही पौराणिक गीतों को स्थानीय लोकगीतों के सांचे में ढाला गया है। दर्शक इन्हें बड़ी तन्मयता से सुनते हैं। कभी-कभी दो दल छुलै छुलनी या ठाम्बरू (खूटी) खेल खेलते हैं साथ में गाते हैं--

साबसे मेरिंया हेनुवा बीरा।
लाकै री धारौ दा जींवदा फीरा ॥

इसमें आगे की जोड़ी को लंगड़ी देने की कोशिश करने के लिए तैयार होकर नाचती है। पिछला दल मौका पाकर लंगड़ी देकर गिराने की कोशिश करता है।

ठठईर ठोडा नृत्य : ठठईर रथेवला ताल में नाचा जाता है। क्योंकि कभी एक कबीला दूसरे कबीले या जाति का दुश्मन रहा है। जब लोग एक-दूसरे पर हमले के लिए जाते थे तो यह रथेवला ताल बजाया जाता था। लोग हाथ में डांगरू (गंडासा) डण्डा, तीर-कमान लेकर नाचते-झूमते, ललकारते हुए प्रतिद्वन्द्वी की ओर बढ़ते थे। आज भी बीशू, रिहाली, जान, मोण में लोग रथेवले में नाचकर एक विशेष स्थान में जाते हैं। यह नाचने वाले अलग-अलग होते हैं जिन्हें खून्द कहते हैं। यह खून्द कुछ शठा कुछ पाशा होते हैं फिर मोटे-मोटे पायजामे पहनकर कमान से एक-दूसरे की टांगों में गोड़े पर निशाना लगाते हैं। निशाना लगाने ५" निशानची बड़े झूम-झूमकर हाथ में कमान उठाए नाचता है।

यह नृत्य केवल कुछ विशेष मेलों पर ही प्रदर्शित किया जाता है। इस नृत्य में धनुष-बाण चलाने में दक्ष पुरुष ही भाग लेते हैं। वे ऊनी कपड़े का चूड़ीदार सूथन (पाजामा) और उसके अन्दर चमड़े की पेटी बांधकर नृत्य करते हैं। इसमें लोकगीत भी कभी-कभी गाये जाते हैं। इस नृत्य के लिए लोक-वाद्य की ताल और लय युद्ध के बाजों की तरह होती है, जिसे ठठोईर कहते हैं।

इस नृत्य में भाग लेने वालों को ठठौरी कहते हैं। नगाड़ा, ढोलक, गुज्जू, शहनाई और करनाल लोक-वाद्य बजाये जाते हैं। इसमें नर्तकों के दो दल शाठी और पाशी खूंद होते हैं। ठठोईर खेलने वाले या नाचते हुए धनुष

तानकर, बाण (शरा) अपने सामने वाले उछलते हुए ठठोरी, जो नाचता हुआ अपने बाप-दादा, गांव-देवता या इलाके का नाम लेता हुआ उछलता है और चीख मारकर अपने प्रतिद्वन्द्वी को ललकारता है, "गुरु पूजा मेरिया तेरी जुबड़ी दा" और यदि शरी न लगे तो दूसरा ठठौरी ऐसे ही ललकारता है "ही, ही, शीघी ठलके मैरियै षटवाहणीये मेरी जुबड़ी दी।" लोक-नृत्य का रंग इसी तरह धीरे-धीरे चढ़ता जाता है। इसी तरह अनेक जोड़ियां नाचती रहती हैं। जो थक जाते हैं उनका स्थान दूसरे जोड़े ले लेते हैं।

द्रौढ़ी नृत्य : यह भी देव-नृत्य है। पांजडा, भारतो, पोआडा गाने पर पाप, नेवा, देवी इत्यादि कई छोटे-छोटे देवी-देवता हिंगरते हैं। हुल्की या हुडक, खंजरी लिये गाने वाले भी झूम-झूमकर नाचते रहते हैं। यह इष्टदेव से रक्षा के लिए घर में ही आयोजित होता है। मनोरंजन का सामान्य क्रम नहीं होता। यह किसी कार्य सफलता की मानता होती है। द्रौढ़ी हरिजनों में देव आराधना हेतु देव-यज्ञ माना जाता है।

हिमाचल प्रदेश के लोक-नृत्यों के साथ लोकगीत इन्हें चार चांद लगा देते हैं। निःसन्देह लोक-नृत्य और गीत का जन्म साथ-साथ संघर्ष और श्रम साधनों के अवसर पर दिखाई जाने वाली भावमयी मुद्राओं के उन चरम क्षणों से हुआ, जिनसे जीवन का सौन्दर्य जाग उठा और गीत फूट पड़े। चिरकाल के समान उदय और प्रयोजन के कारण हिमाचल के लोक-नृत्य और गीत लोक-जीवन के अभिन्न अंग रहे हैं और पर्वतीय सामाजिक जीवन को सजीव और प्रेरित करते हुए लोक-नृत्य गीतों से विभूषित हैं। इनका सरल प्रवाहमान संगीत, नृत्य की ताल, लय को कला प्रदान करता है और तब दर्शक की आत्मा मन्त्रमुग्ध-सी अलौकिक आनन्द का रसास्वादन करने लगती है। हृदय आकाश में सप्तरंगी इन्द्रधनुष का वितान फैल जाता है, नेत्र भाव-विभोर हो उठते हैं, मनमोर नाच उठता है और प्रकृति का रोम-रोम पुलकित हो उठता है और मानव की सहज अभिव्यक्तियां मधु और अमृत के गीत गाने लगती हैं।

द्रुतगति या तांडव द्रंग के नृत्यों में अन्य कार्य संभव नहीं हो सकता। लम्बे कार्यक्रमों में तो धीमी गति नृत्य 90 प्रतिशत समय लेते ही हैं। छोटे कार्यक्रमों में भी इन्हें अन्त तक एक चौथाई समय ही मिलता है, जिससे लाहुली चम्बियाली, चाखली, उजगजमा, खंडायता, आदि की लास्यता से

विश्रांति पाते हैं। परन्तु अन्ततः वे भी चंचल हो जाते हैं। (यह पग विलम्बित नृत्यों में एक-दो इंच से अधिक नहीं होता) दाहिने बढ़ा (ताली चार), बाम पादक का वही ठुमका दिया (ताली पांच), बायां पांव पीछे किया (ताली छः), दायें पैर का आगे ठुमका (ताली सात), दायां पांव पीछे अपने स्थान पर रखा (ताली आठ), इस प्रकार चक्रों से आगे बढ़ते-बढ़ते सैकड़ों, सहस्रों चक्रों के अनगिनत फेरे नर्तकों की पंक्ति बजंतरियों के समताल लगाती चलती हैं। तबले के तालों की भांति नृत्य तालों के भी अनेक ताल भिन्न-भिन्न संख्या की मात्राओं में होते हैं। परन्तु यदि, प्रक्षेप, अंग, चेष्टाएं तालियों पर ही होती हैं, जो भिन्न-भिन्न नृत्यों की भिन्न-भिन्न संख्या की मात्राओं पर होती हैं। ये ताल छः, आठ, दस, सौदी, सोलह और चौबीस मात्राओं के पाये जाते हैं। ताल कितनी मात्रा का भी हो नृत्य का चक्र (लूडी तरासे छोड़कर) आठ ही तालियों का चलता रहेगा, ताल के सम पर लौटने का प्रभाव तोड़ के अवसर के अतिरिक्त परिलक्षित नहीं होता, इस प्रकार नृत्य का भरपूर आनन्द नाच देखने के अलावा बजाने वाले भी लेते हैं।

नृत्यगीत : नृत्यों का आयोजन जितना लम्बा हो उसी के अनुसार वे नृत्य बदले जाते हैं। उसी अनुपात से प्रत्येक नृत्य को समय देकर अगले का आरम्भ होता है।

खाना रामपुर बोलो खोना रामपुर
कुमो दरबारो बोलो
कुमा दरबारो ॥
कुमो दरबारो बोलो।
कुमो दरबारो ॥
तैगोतू देन महाराच बोलो,
तौगौतू देन महाराच ॥
तौगौतु देन महाराच बोलो,
तौगौतू देन महाराच।
गीतातू देन शुमगुर बोलो,
गीलामु देन शुमगुर ॥
गीलाम देन शुमगर बोलो,
गीलामु देन शुमगुर ॥

लोकगीत बहुत लम्बा है। इस गीत में जमाल बजीर की कर्तव्यनिष्ठा का चित्रण है। किस तरह उसे डोडरा क्वार क्षेत्र में कर वसूल करने की आज्ञा राजा ने दी, पर उसने जाने से पहले मां-बाप से मिलने की आज्ञा मांगी, जो नहीं मिली। आज्ञा पालन करते हुए वह वहां से चला गया पर फिर कभी वह घर नहीं लौट सका।

हिमाचल के अनपढ़ ग्रामवासियों की इस समृद्ध लोकनिधि में जीवन के असीम दुःखों को भुला देने की क्षमता है। इसमें युगों-युगों की बुद्धिमत्ता और आनन्द तत्त्व के दर्शन सर्वत्र होते हैं। इस नृत्यगीत को देखिए—
सिंह राजा लोतो भई ता

अड. सिङोनी हम तौन भई
इचू बातङ रिङ तौक भई
इचू बातङ रिङ तौक भई
गता कनौरिङ बितौक भई
गता कनौरिङ बितौक भई
बयंग माचू शा जामू भई
बयंग कारू शा जामू भई
बयंग माचू शा जामू भई
बयंग कारू शा जामू भई
सिंध रानीस लोतो भई
का कानौरिङ थाब्यू भई

सर्दियों में बाघ शिकार की तलाश में गांव तक पहुंच जाता है। तंग आकर लोग उसे मारने की योजना बनाते हैं। बाघ जब मारा जाता है, तो उसकी खाल में भूसा भरकर लोग घर-घर नाचते और गाते हैं।

बाघ मारने वाले को इनाम भी दिया जाता है। इसी बात की ओर संकेत इस गीत में है। गीत और नृत्य का आत्मा और शरीर का-सा साथ है। कुछ गीतों की पंक्तियां यहां दी जा रही हैं :—

परससामा

एरे बोलो खूनिया परसरामा म्हारे बोलो देखणी धीया
एकी भाइये हिकडू छूहणो दूजे बोलौ भांइये हीया

पोरे कर ऐसा मूओं री कफनी म्हारे बोलो देखणी चीया
एकी खेता रे मटरौ बीजै, दूजे खेता दे आलू
बड़ी भाभी री बेसर बीकी, छोटी भाभी रा बालू
बालू बोले खूनिया परसरामा छोटी बोलो भाभी रे बालू
ठारा शोआ रे मटर बीके, बारह शौआ रे आलू
धौरो बेशी मुकदमा खेलू, नई जुणणे छाडू
छाडू बोलो खूनिया परसरामा, नई जुणणे छाडू

इस गीत के नायक ने किसी व्यक्ति को मार दिया था। फांसी से बचने के लिए नायक के घर का सारा समान बिक गया और कैद भुगतनी पड़ी।

लाहौल-स्पिति अपने प्राचीन वैभव और गाथाओं के लिए अधिक प्रसिद्ध है। लोक-जीवन की परम्परागत थाती लोक-नृत्य एवं नृत्य-गीत अपने प्राचीन सौंदर्य के साथ वर्तमान की चकाचौंध में भी जीवित रह पाए हैं तो उसका श्रेय उसमें निहित लोकमंगल और कल्याण की भावना को दें तो अतिशयोक्ति न होगी।

टशी कलज़म

पारे बाणे ओ एकी मिरगे आगे ओ–2
पुतार टशी कलज़म हेड़े ओ त्यारी ओ–2
माई तां बाबू ऐ समझाणे लाई ओ–2
पुतरा टशी कालज़म मनुणे री लाई ओ–2
लाडी ता ज़िला जोम समझाणे लाइ ओ–2
पुतरा टशी कलज़म मनुणे री लाई ओ–2
पारे बणा ओ गजा गजा हिंवे ओ–2
पुतरा टशी कलज़म बुदूकों सवारा ओ–2
पुतरा टशी कलज़म बंदूका भारी ओ–2

इस गीत में नायक जंगली जानवरों का शिकार करने जाना चाहता है और उसके मां-बाप और पत्नी उसे जाने से रोकते हैं, पर वह तैयार होकर चला जाता है। वीर नहीं रुकते।

वेशभूषा

विशेष अवसर के लिए लोक-नर्तक दल बढ़िया किस्म के आकर्षक रंग बिरंगे वस्त्र-आभूषण पहनते हैं। परन्तु उनमें स्थानीय छाप अवश्य रहती है।

इसी प्रकार आभूषणों का आविष्कार भी निश्चय ही मनुष्य की अपने को सजाने की सहज प्रवृत्ति के ही कारण हुआ होगा। साधारण जनता के प्राकृतिक वातावरण की वस्तुओं, फूलों, जंगली पत्तों, वनस्पतियों, पशु की खालों और पक्षियों के पंखों को आभूषणों में परिणत कर दिया गया। आज तक अनेक जनजातियों द्वारा खालों, परों, फलों इत्यादि का उपयोग सजावट के काम के लिए किया जाता है। यह जातीय सजावट लोक-नृत्यों के अवसर पर प्रायः देखने को मिलती है। इन नर्तकों की वेश-भूषा को पांच भागों में बांटा जा सकता है। पहला सिर जिसमें टोपी, पगड़ी, चादर और धाटु (थीपू) आते हैं। दूसरा छाती का जिसमें स्त्रियों की अंगिया, सदरी, पुरुषों का जैकट इत्यादि। तीसरे छाती से कमर तक के, इसमें कोट, अचकन, पटु, शाल, कुरता, रेजटा इत्यादि गिने जा सकते हैं। चौथे, कमर से घुटने तक जिसमें पाजाभा, सलवार, धोती और पांचवें, पांव के जूते, लैटे/पूले, पाजेब, जुराबें इत्यादि का वर्णन किया जा सकता हैं। प्रायः ऋतु के अनुसार नर्तक सूती या ऊनी, नए चमकीले और भड़कीले वस्त्र पहनते हैं। ऊनी वस्त्र 5000 फुट से ऊंची जगह पर ही पहने जाते हैं। कांगड़ा, मंडी, सुकेत, बिलासपुर इत्यादि में नर्तक प्रायः खद्दर या रेशमी कुर्ता व तंग पाजामा, सिर पर टोपी साधारण-सा कपड़ा, कन्धे पर छोटा लाल रंग का कपड़ा, कभी-कभी लट्ठा या पापलीन की कमीज और वोस्की का पजामा तथा संतरी रंग की पगड़ी पहनते हैं। गले में सोने का जेवर सिंगी डालते हैं और कानों में नंतियां। महिलाएं चूड़ीदार पाजामा या काली सलवार, चांदी का लम्बा हार (जैसे गहने) ऊंचा चाक, हाथों में गजरू, कानों में बालियां (सोने या चांदी की) कोटे, नाक व नथ, लोंग, तीली, माथे पर सिंगार पट्टी, हाथों में चूड़ियां, हार, मुरकू पहनते हैं। पांव में झांझर या पाजेब डाली जाती हैं।

सोलन, शिमला और सिरमौर में पुरुष गर्म कोट (चोलटी) अंगरखा, झुगा, लुइया, गाची (कमरबन्द) टोपी, चूड़ीदार पाजामा, (सूथन) पहनते हैं और स्त्रियां टालकू या धाट्टू, चमकीला कुर्ता, चूड़ीदार पाजामा, गर्म या सूती कोट, रेजटा और अलंकार पहनती हैं। जेवरों में प्रायः पाजेब (तोड़) हांथों में कड़े, घुंघरूवाली चूड़ियां छल्ले, अंगूठी (मुन्दरी), गजरे, कांच की रंगीन चूड़ियां, गले में पांच लड़ियों का हार, चांदी और मूंगे के दाने से बनी कंठी, चाक, माथे पर बिन्दी और चार लड़ी की शृंगार पट्टी, कानों में बालियां, कांटे और नाक

में सोने का चौड़ा लोंग (बेसर), सोने की मुर्की और नथ पहनती हैं। शिमला के क्षेत्र में नर्तक दल चोगा, सफेद अचकन, चूड़ीदार पाजामा, सफेद पगड़ी, कलगी मुकट (जिसे सामने से बांधते हैं) से सजधज कर नाचते हैं। कई बार अचकन या जैकेट, चूड़ीदार पाजामा और बुशैहरी टोपी पहनते हैं। कुल्लू के नर्तक दल और कहीं-कहीं मण्डी के ग्रामीण क्षेत्र के नर्तक दल की प्रायः अपने हाथों से बुनी गोलाकार कलगीदार काली टोपी और उसके किनारों पर फूलों या चांदी की सुनहरी झालर और मोणाल पक्षी की कलगी की शोभा देखते ही बनती है। सफेद लम्बा ऊनी कोट और चूड़ीदार पाजामा, लाल, पीला, भूरा, ऊनी कोट कमरबन्द, तुणकी, दुपट्टे के साथ पहनते हैं। इसे पटकू द्वारा कमर में इस तरह बांधा जाता है कि चारों ओर तहों से चित्र-सा बन जाता है। उसके ऊपर एक चादर लटकाकार (बायें कंधे पर) दायीं कमर पर बांधी जाती है। पुराने समय में यही सैनिक वेशभूषा होती थी। औरतें शरीर पर लच्छे, फरोड, सिर पर प्रायः धाटू (थीपू) पहनती हैं।

किन्नौर और लाहौल-स्पिति की स्त्रियां अपनी परम्परागत फूलों से सुसज्जित टोपियां पहनती हैं। फूलों की मालाएं तो प्रायः सभी क्षेत्र के नर्तक दल गले और सिर में पहनना पसन्द करते हैं। कुल्लू और किन्नौर जिलों की स्त्रियां अपनी टोपियों के दोनों ओर पीपल पत्र नाम का एक गहना पहनती हैं, जो पीपल पत्र के आधार की चांदी का बना होता है और चांदी के ही एक मीनाकारी लिये हुए खंडी पर कसा रहता है। इस गहने से स्त्रियों के चेहरे पर एक आभा-सी झिलमिलाती रहती है। इनके हार धातुओं की बड़ी-बड़ी पतरों में से काटकर बनाये जाते हैं जिन पर इस क्षेत्र की लोक परम्परागत डिजाइनों की खुदाई और हरी तथा पीली मीनाकारी रहती है। मीनाकारी वाले इन पतरों को चन्द्रहार की चांदी की जंजीरों से जोड़ दिया जाता है।

कुल्लू के नाच वाले गहनों में बड़ी नथ और एक पत्र की बलाक वाली डिजाइन (शायद ही कहीं और देखने को मिले) नाक पर सोने की बारीक लोंग और उसकी अर्धगोलाकार नलकी पर दानेदार जटिल आकृतियां अत्यन्त सुन्दर फबती हैं। लाहौल-स्पिति में नर्तक गाऊन की तरह लम्बा ऊनी चोलू और पाजामा, सिर पर विशेष प्रकार की ऊंची रंगीन टोपी, गले में मणि का हार, कानों में सोने के तुंगल, माथे पर गुदी हुई सोने या चांदी की कढ़ी हुई दो मणियां, तंग पाजामा और बर्फ से सुरक्षा करने वाले बेट पहनते हैं। चोगा

की तरह कुरतों के साथ स्त्रियां कमरबन्द बांधती हैं। और जैकेट के साथ प्रायः मरून या भूरे रंग के कपड़े अधिक पसन्द किये जाते हैं। बाल अनेक छोटी-छोटी चोटियों में गुंथे जाते हैं। पुरुष अपने कोट के दायीं ओर बटन लगाते हैं और स्त्रियां उसकी जगह डोरी बांधती हैं। स्त्रियों के पाजामे चूड़ीदार पाजामे की तरह होते हैं। औरतें प्रायः नीले और पीले जैकेट पहनती हैं और गर्मियों में कोट पहनती हैं। बौद्ध औरतें नंगे सिर रहती हैं। स्वांगला, शिपी और लोहार स्त्रियां टोपियां पहनती हैं। अविवाहित लड़कियां सिर पर कुछ नहीं पहनतीं। स्पिति क्षेत्र में पुरुष बालदार ऊंची टोपी, लिंगजिमा एक लम्बी ढीली, फ्राक या ऊन का कोट (रिबोये) या भेड़-बकरी की खाल (थकया) या सूती कपड़े के साथ बालदार (चारलाक) डोरा या किरा, ऊनी पाजामा (सूंथन), लम्बे चमड़े के बूट पहनते हैं। पाजामा बूट के सिरे से इस तरह पहने जाते हैं जिससे ठण्ड नहीं पहुंचती। कुछ तो रेशमी या सूती तोचे पहनते हैं। स्त्रियां बैरंग, बिना बटन के पूरे स्लीप की कमीज (हजूब) एक सूती ढीली फ्राक (तोचे) ऊन के फ्राक की तरह का कोट (रिघोच) जिसके किनारे पर धारीधार रंग (थचर्म) सिला होता है और चमकदार धारीधार रेशमी सश (किरा) का कमरबन्द, ढीवकला पाजामा, ऊनी शाल (लिंगचे) बालदार ऊनी लोकपा पहनती हैं। वृद्ध पुरुष सोने की अंगूठियां, बालियां, (मुर्की) और क्यांति पहनते हैं। नई पीढ़ी के लोग ऐसा नहीं करते। स्त्रियां प्रायः चांदी के अलंकार अधिक पहनती हैं। लाहौली स्त्रियां माला के रंग-बिरंगे मणकों से शरीर को सजाती हैं। इसी प्रकार अन्य जेवर जो वह पहनती हैं, वे हैं—डुंगक्री, क्यीर-किरस, किरकित्सी ताटका, पोशेल, फन्स अलांग, युतांद छोटा-बड़ा फुली, डुन्केत्सा, झूलमू मुतिग कांति, शमशा, भंग गुईंथ, बुरकी शुव, क्यांति।

स्पिति के लोग सोने-चांदी के जेवर पसन्द करते हैं, वे हीरे-मोती, मणके इत्यादि अधिक पहनते हैं। हिमाचल के गद्दी नर्तक डोरा और सफेद ऊनी चोला-फरगल जो चोगे जैसा होता है, फरगल के नीचे के भाग में असंख्य सलवटें पड़ी रहती हैं और घेरा भी काफी बड़ा होता है। इस फरगल पर काली ऊनी, पशमीनी या रेशमी लम्बी रस्सी कसकर कमर पर लपेट लेते हैं। गले में रंगीन दुपट्टा या रुमाल लपेट लेते हैं। सिर पर ऊंची पगड़ी या टोपी पहनते हैं। जिसमें पक्षियों के रंगीले एवं चमकीले पंख सुसज्जित होते हैं। चूड़ीदार पाजामा पहनकर गद्दी नर्तक स्वर, लय और ताल पर मनोहर लोकनृत्य करते हैं। स्त्री नर्तक शलवार, रंग-बिरंगा, बंगाली कुर्ता, सिर पर

दुपट्टा और घरों में पाणी पहनती हैं। कई बार तो गद्दी औरतें पुरुषों का ही पहनावा पहन लेती हैं। पुरुष कानों में सोने की नांनती, बाली, कमीज पर चांदी के बटन और सोने-चांदी की अंगूठियां पहनते हैं। स्त्रियां सिर पर चांदी का चौक माथे पर बंदीयान जो जंजीर-सा होता है, कानों में फेर, बालबरियां, कर्णफूल पहनती हैं। नाक सोने के बालू, लोंग, फूली, कोका नथनी से सजाती हैं। गले में चांदी की दंडी माला, डोडमाला, लच्छा, पहनती हैं और कलाई में चांदी का टीका, कांगनू, बंगियां, पाजेब, झांझर, गुथरी फूलू से पांव सजाती हैं। पांगी के नर्तक प्रायः हाथ से बुने मोटे ऊन के कोट और गोल टोपी जाजो पाजामा और पैरों में फूले पहनते हैं।

स्त्रियां कुर्ता, तंग गहरे रंग का पाजामा, कुर्ते पर ऊनी शाल पहनती हैं। ज़ेवरों में करू, मुर्की पसन्द करती हैं। हिमाचल प्रदेश के हर भाग में तरह-तरह की वेशभूषा का प्रचलन है। प्रत्येक क्षेत्र की एक विशिष्ट शैली है। इसी तरह अलग-अलग क्षेत्रों में गहनों की अलग-अलग डिजाइन और उन्हें बनाने की विभिन्न प्रणालियां प्रचलित हैं। उनके लिए जिस धातु का उपयोग होता है वह उन्हें पहनने वाले की सामाजिक तथा आर्थिक हैसियत पर निर्भर करता है उसके हिसाब से भी इन प्रणालियों का विकास हुआ है। लोक-नृत्यों के प्रदर्शन के लिए जितने आवश्यक लोकगीत और लोकवाद्य हैं, उतनी ही आवश्यक लोकनर्तक की वेश-भूषा भी है। लोक-नृत्यों का रूप और रंग अपने स्थानीय वेश-भूषा से ही मनोहर बन पाता है। इसलिए लोक-नृत्य-परम्परा में वेश-भूषा की अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

नृत्य मंडलियां

हिमाचल प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में नृत्य मण्डलियां तो हैं, परन्तु इस व्यवसाय में अधिक कमाई न होने के कारण ऐसी मंडलियां प्रतिवर्ष बनकर समाप्त भी हो जाती हैं। व्यवसायिक नाट्य नृत्य मंडलियों के अभाव में स्तरीय गीत नाटक, लोक-नाटकों एवं लोक-नृत्यों में कमी बढ़ती जा रही है। अधुनातन प्रेक्षागृहों की कमी के कारण लोक-नाटक एंव लोक-नृत्य सिनेमा और घटिया नृत्यों से प्रतियोगिता करने में असमर्थ रहते हैं। कोई सुनियोजित कार्यक्रम न होने के कारण, लोक-नृत्य बिखरते-टूटते और नष्ट होते जा रहे हैं। इसके परम्परागत स्वरूप में श्रेष्ठता और सुन्दरता बढ़ने की अपेक्षा घटती जा रही है। वास्तविकता तो यह है कि कौवा चला हंस की चाल और अपनी भी भूल गया। लोक-नृत्यों, लोक-नाट्यों की कमी और उपयुक्त प्रेक्षागृहों तथा

रंगकर्मियों आदि की कमी के कारण लोक संस्कृति की इमेज(Image) धीरे-धीरे धुंधली पड़ती जा रही है क्योंकि शहरी संस्कृति उस पर प्रभाव डालती जा रही है। इसमें सामाजिक और लोक सांस्कृतिक जागृति की मौलिक प्रवृत्ति का विकासक्रम क्षतिग्रस्त होता जा रहा हैं। जितनी जल्दी यह ह्रास रुक सके उतना ही हम लोक-नृत्यों का वास्तविक स्वरूप सुरक्षित रख सकेंगे। हमारा यह आग्रह है, कि हिमाचल प्रदेश की अकादमी एवं संस्कृति विभाग, सांस्कृतिक सभाओं के अन्य कार्यों के साथ-साथ यह भी कार्य करें कि इन लोक-नृत्यों को जो बहुत समय से उपेक्षित रहे, एक मंच पर लाने, निखारने और लोक संस्कृति की पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए उन्हें सुरक्षित रखने के लिए सामयिक, ठोस व्यवहारिक एवं योजनाबद्ध कार्यक्रम बनाए जायें। इन कार्यक्रमों को व्यवहारिक रूप देने के लिए अकादमी, शिक्षा विभाग, लोक सम्पर्क विभाग, पंचायत विभाग, संस्कृति एवं भाषा विभाग, ग्रामीण विकास, विभाग का वित्तीय एवं प्रशसानिक सहयोग अत्यन्त आवश्यक है। इन विभागों के सहयोग से प्रशिक्षण कार्य योजनाबद्ध नियमित कार्यक्रम चलाया जा सकता है।

विश्वविद्यालय स्तर पर या अलग से लोक-कला एवं संस्कृति को प्रोत्साहन देने के लिए राजकीय स्वायत्त सांस्कृतिक एवं कला केन्द्र की स्थापना होनी चाहिए। लोककला-सृजन की स्वतन्त्रता में सरकार का हस्तक्षेप अनावश्यक एवं हानिकारक ही रहता है। पर राज्य ऐसी सामाजिक और कानूनी व्यवस्थाएं पैदा कर सकता है, जिनमें कलाकार अपने आपको पूरी तरह प्रस्तुत कर सके और अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति कर सके, क्योंकि सभी कलाओं के मूल में आत्म निवेदन है। प्रत्येक जाति एवं जनपद का आत्मप्रकाशन अपनी संस्कृति के अनुसार ही संभव है। इसलिए सरकार हिमाचल प्रदेश एकादमी को स्वयत्तता प्रदान करे और उसे प्रतिवर्ष उदारतापूर्ण अनुदान देकर इस दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती है। आज अनेक समस्याएं इस सम्बन्ध मे मुंह खोले खड़ी हैं। आज उन लोक-नर्तकों और वाद्य-वादकों की दशा अत्यन्त शोचनीय है। यह स्पष्ट है कि वे सब अन्य व्यवसाय द्वारा अपना पेट भर लेते हैं परन्तु ऐसा कब तक चलता रहेगा। यदि हम चाहते हैं कि इस पर्वतीय जनपद की सांस्कृतिक धरोहर कुछ परम्परायें सत्यम्, शिवम्, एवं सुन्दरम् की द्योतक हैं। उनमें समाज को आगे ले जाने में कुछ बुराई नहीं आती, अपितु समाज में इनसे मधुरता घोली जा सकती है, तो इस थाती के परम्परागत कार्यकर्ताओं के जीवनोपार्जन एवं सुधार पर भी ध्यान देना होगा।

□

हिमाचल प्रदेश के उत्तर प्रदेश की सीमा के साथ लगते क्षेत्रों के प्रमुख ताल वाद्य

सी॰ आर॰ बी॰ ललित

सामान्य परिचय

हिमाचल प्रदेश के दक्षिणी-पूर्वी क्षेत्र में हाथ से बजायी जाने वाली ताली से लेकर नगाड़ा तक अनेकों ताल वाद्य प्रचलित हैं। वैदिक तथा पौराणिक काल में आर्यों ने इस क्षेत्र में पहले से चली आ रही, किन्नर, किरात, मोन, गंधर्व तथा असुर सांस्कृतिक परम्पराओं के साथ ताल-मेल से एक समृद्ध सांस्कृतिक परम्पराओं के साथ समृद्ध सांस्कृतिक परिवेश का सृजन किया और जहां आर्यों का प्रवाह इस क्षेत्र को चीरता हुआ मैदानों की ओर बढ़ा, वहां इस क्षेत्र में इन सभी समुदायों के साथ रहते हुए उन्होंने एक समन्वित संस्कृति का सृजन किया, जिससे इन क्षेत्रों के निवासी आज भी आप्लावित हैं, क्योंकि इन क्षेत्रों का बाह्य जगत से दुर्गम भौगोलिक स्थिति के कारण आदान-प्रदान अधिक में नहीं हो सका।

यह देखकर आश्चर्य होता है कि आज भी 5000 वर्ष ई॰ पूर्व की संस्कृति कुछ क्षेत्रों में लगभग वसी की वैसी बची हुई है। देश के अन्य क्षेत्रों की तरह यहां भी गायन, वादन एवं नर्तन देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना हेतु किया जाता है। अपने अलग आनुष्ठानिक महत्त्व के अतिरिक्त ये विधाएं लोकानुरंजन का माध्यम भी बनती हैं। उत्तर प्रदेश के उत्तर काशी, देहरादून तथा सहारनपुर जिले के साथ लगने वाले किन्नौर, सिरमौर तथा शिमला के क्षेत्रों में आज भी सामवेद में वर्णित तीन स्वरों की गायन शैली प्रचलित है तथा उसी के अनुरूप ताल वाद्य भी उपलब्ध हैं। इनमें ढोल, नगाड़ा, खंजरी, दमामा, भाणा, टकोरा, झाकुली, ढोल, ढोलकी, गुज्जु आदि प्रमुख हैं। इनकी संगत के लिए जिन सुषिर वाद्यों का सहारा लिया जाता है, उनमें करनाल, नरसिंघा (रणसिंघा) शहनाई तथा बांसुरी आदि प्रमुख हैं। तुन्तु वाद्यों में किन्दरी, सारदी तथा रूबाना आदि वाद्य भी प्रचलित हैं। हाथ की ताली, लकड़ी

के फर्श पर एड़ी की चोट और पानी के खाली घड़े पर हथेलियों की थाप से भी कर्णप्रिय संगीत का सृजन किया जाता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है गायन शैली में, जो मौलिक लोकगीतों पर आधारित है, मात्र तीन सुरों का प्रयोग होता है। इन लोकगीतों की स्वरलिपि निर्धारित करने के लिए व्यवस्थित रूप से कोई कार्यवाही नहीं की गई है किन्तु विद्वान यही मानते हैं कि इन क्षेत्रों की गायन विधा यद्यपि सामवेद कालीन स्वरज्ञान पर आधारित है तथापि उसमें विभिन्न प्रकार के परनों का प्रयोग किया जाता है। इनकी मौलिकता उन्हें शास्त्रीय विधि विधान से अलग लौकिक धरातल पर खड़ा करती है।

इस क्षेत्र में देव-मन्दिरों में चार समय पूजा की जाती है, जिसे 'चौघड़ी-पूजा विधान' कहा जाता है। ब्रह्म मुहूर्त में 'प्रभाती', मध्याह्न में 'पाची', संध्याकाल में सधीवा तथा रात्रिकाल में 'बेल' अथवा 'नौवत' बजाई जाती है। इनका विवरण निम्न प्रकार से है–

1. **प्रभाती :** सभी वाद्यों के माध्यम से ब्रह्म मुहूर्त काल की 'प्रभाती' का मंगल वादन किया जाता है, जिसकी 16 मात्रायें होती हैं। प्रभाती पूजा में मात्र नगाड़ा बजाया जाता है। इस प्रभातकालीन पूजा को 'चौघड़ी' के नाम से भी जाना जाता है।

2. **पाची (मध्याह्न पूजा) :** मध्याह्न पूजा अथवा पाची अलग-अलग देव मन्दिरों में 11.00 बजे से 4.00 बजे तक दिन में किसी भी समय की जाती है। इसे कई स्थानों पर 16 मात्राओं में और कई स्थानों पर 12 मात्राओं में बजाया जाता है। इस पूजा में शंख ध्वनि तथा समस्त तंतु व सुषिर वाद्य यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। पुजारी हाथ में पूजा पात्र जैसे 'डोकी' या 'धुनारा' को लेकर छांबर तथा घी के मिश्रण वाले धूप से पूजा करता है और साथ ही घंटी बजाता हुआ लौकिक मन्त्रोच्चारण भी करता है। शिरगुल (शिव, वज्रेश्वर) तथा महेश्वर आदि देवताओं की पूजा मध्याह्न के आस-पास तथा महासू देवता की पूजा 4.00 बजे के आस-पास की जाती है। पूजा की समाप्ति शंख ध्वनि से की जाती है।

3. **सधीवा (सधीउआ) (संध्याकालीन पूजा वादन) :** इस समय मात्र नगाड़ा बजाया जाता है तथा पुजारी हाथ में घंटी बजाता हुआ धूप-दीप देता हुआ मन्त्रोच्चारण करता है। इस अवसर पर नगाड़ा 8 मात्रा में बजाया जाता है तथा वादन का संचालन मध्य लय में होता है।

4. **बेल/नौवत (सायंकालीन पूजा) :** 16 मात्राओं में तीन ताल की चाल में नौवत रात्रि के लगभग 10.00 बजे बजाई जाती है। इसे नगाड़े पर विभिन्न परनों, तिहायियों एवं लग्गियों के साथ बजाया जाता है।

इन क्षेत्रों में ब्रह्म ताल जिसे बधाई ताल (28 मात्राएं) भी कहा जाता है,

दादरा ताल (12 मात्राएं), गी ताल (8 मात्राएं), बड़हंस ताल (मृतक के घर पर होने के समय 7 मात्राओं में तथा श्मशान में चिता की तैयारी के समय 6 मात्राओं में), ध्रेवणी ताल (8 मात्राएं), गड़ाई ताल (मक्की की गोड़ाई के समय 7 मात्रायें), खुदाई ताल (खुदाई के समय जोश दिलाने के लिए 16 मात्राओं में), ठोडा ताल (9 मात्राएं), झिंझोटी ताल (14 मात्राएं), ध्मार ताल (14 मात्राएं), करयाला जंग ताल (8 मात्राएं) आदि ताल प्रसिद्ध हैं।

एक विचित्र परम्परा यह भी है कि शिरगुल, महेश्वर, बिजट (बज्रेश्वरो) महासू, बनाड़ तथा अन्य इसी कोटि के देवता अपनी देव यात्रा पर इलाके के भ्रमण पर निकलते हैं तो उनके मूल मन्दिर में चौधड़ी पूजा आदि नहीं होती है।

देवता बज्र (बज्रेश्वर), इन्द्र, इस क्षेत्र का एक ऐसा देवता है, जिसके मन्दिर में चारों समय की पूजायें अन्य सभी देवताओं की पूजाओं से उल्टे बाज में बजाई जाती हैं यानि अन्य क्षेत्रों में जो वाद्य यन्त्र किसी व्यक्ति की मृत्यु के समय बजाये जाते हैं और मांगलिक अवसरों पर जिन्हें बजाया जाना निषद्ध होता है, उन तालों पर ब्रजेश्वर अर्चन किया जाता है। ऐंसा सम्भवतः इस कारण है क्योंकि इन्द्र के स्वर्गलोक में मनुष्य मरणोपरान्त ही प्रवेश करता है। एक अन्य लोकश्रुति के अनुसार प्राचीन काल मे बज्रेश्वर को यमपुरी (जौंनसार बाबर में एक स्थान विशेष के सम्बन्ध में धारणा है कि यम यहीं का शासक रहा होगा। स्वर्गारोहण से पूर्व पाण्डव यमपुरी में रह रहे दुर्योधन से मिले थे। (जौनसार शब्द में 'जौं' का सम्बन्ध 'यम' से है) उसको जहां कैद किया हुआ था यहां से ठुण्डू वंश के खश समुदाय के लोगों द्वारा उन्हें वापिस लाया गया था, जिसके उपरान्त ठुण्डू वंश को 'देवे' की उपाधि दी गई तथा आज भी इस वंश के सभी लोगों को 'देवे' कहकर ही पुकारा जाता है। इसी प्रकरण के उपरांत बिजट देवता की पूजा में उल्टे बाज (वाद्य शैली) बजाने का प्रचलन हुआ।

उपरोक्त समस्त ताल वाद्यों के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण परिशिष्ट पर है।

विभिन्न मांगलिक उत्सवों पर बजाये जाने वाले बाज (वादन शैलियां)

1. **फुलावल :** फुलावल वादन बसंत ऋतु में देव मन्दिरों में पुष्प बंदनवार टांगने का पर्व होता है जो विभिन्न स्थानों की भौगोलिक परिस्थितियों के अनुकूल पुष्पों के पल्लवित होने पर मनाया जाता है। यह सिरमौर तथा सोलन में मार्च के प्रथम अथवा द्वितीय सप्ताह में तथा सिरमौर के ऊपरी क्षेत्रों तथा शिमला जिला में मार्च के द्वितीय पक्ष में मनाया जाता है। किन्नर क्षेत्र (वर्तमान किन्नौर जिला) में इस उत्सव को फुलाइच या फुल्याच कहा जाता है और यह अगस्त-सितम्बर में मनाया जाता है। आमतौर पर बरास के फूल पूरी तरह खिलौने के उपरान्त उन्हें निर्धारित

उत्सव से एक दिन पूर्व विधि-विधान से जंगल से काटकर लाया जाता है तथा मूंज की रस्सी से एक बंदनवार तैयार की जाती है। उत्सव के दिन गंधर्व (तुरी) जाति की महिलायें मन्दिर के प्रांगण में, जिसे स्थानीय भाषा में 'पटांगण' कहा जाता है, चौले-घाघरे पहनकर तथा आभूषणों से सुसज्जित होकर नृत्य करती हैं। इसमें 16, 14, 12 तथा 8 मात्राओं के विभिन्न लोकगीत गाए जाते हैं तथा उन्हीं की लय पर महिलायें नृत्य करती हैं। इस अवसर पर आमतौर पर देव प्रशस्ति के लोकगीत गाये जाते हैं। यही मंगलाचरण है। देव मन्दिर में होने वाले प्रमुख उत्सव के उपरान्त क्षेत्र के विभिन्न कार्यक्रमों में भी यह उत्सव मनाया जाता है, जिसमें गीतों में शृंगारिकता अधिक होती है। चम्बा में रानी सूई के मेले पर महिलाओं द्वारा घुरई नृत्य किया जाता है।

2. विशु : विशु उत्सव बैशाख महीने (बैशाखी) से आरम्भ होकर आषाढ़ महीने तक चलता है। इसका आयोजन शृंखलाबद्ध तरीके से अलग-अलग परगनों में अलग-अलग तिथियों पर किया जाता है, जिसमें स्थानीय समुदायों के लोग किसी अन्य समुदाय को आमंत्रित करते हैं। इस क्षेत्र में प्रत्येक समुदाय अपने आपको विशिष्ट वर्ग का 'खूंद' कहता है। इनमें झांख, पिंगाण, अंगराऊ ठुण्ड, कमराऊ, शिल्लू, परालू खूंद हैं। इन खूंदों में कुछ शाठी तथा कुछ पाशी होते हैं। जनश्रुति शाठियों को कौरवो तथा पाशियों को पाण्डवों से जोड़ती है। पाशी का अर्थ पांच तथा शाठी का अर्थ साठ होता है। लोक विश्वास के अनुसार कौरवों की संख्या साठ मानी गई है अतः ठोडा लोक नाट्य में दोनों दलों को क्रमशः पाशा व शाठा कहा जाता है। यह खूंद समुदाय सूरमा प्रकृति के होते हैं तथा ठोडा लोक नाट्य में डांगरा (परशुराम का कुंठार), खड्ग (तलवार), धणुशरी (धनुषाण), डींग (लाठी) आदि आयुद्धों को लेकर मैदान में उतरते हैं तथा मेहमान कबीला कुलदेवी का आशीर्वाद लेकर ब्यूह रचना करता है और आमन्त्रित कबीले को उस ब्यूह को तोड़ना होता है। इसमें अनेकों बार योद्धाओं को अपने शीशा कटाने पड़े हैं किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् यह प्रक्रिया सौहार्दपूर्ण तरीके से पूर्ण की जाती है। ब्यूह के उपरान्त दोनों पक्षों के शरसंधान प्रक्रिया में दक्ष खिलाड़ी कमर में डांगरा बांधे और हाथ में धनुष और शर लेकर कान तक प्रत्यंचा खींचकर एक-दूसरे की टांग पर घुटने और टखने के मध्य मांसल भाग पर शर प्रहार करते हैं। कान तक धनुष खींचने में दक्ष होने कारण कन्नेत (कान ऐत) भी कहा गया है जो सम्भवतः पौराणिक कुनिंदों के वंशज भी हो सकते हैं।

ठोडे की नाटी नगाड़ा, ढोल, दमामा, करनाल, शहनाई, रणसिंगा, आदि वाद्य यन्त्रों के वादन से सामारिक धुनों पर आधारित होती है जो आमतौर पर एक ताल पर बजाई जाती है। यह बिलम्बित से शुरू होकर द्रुतलय तक पहुंचती है। ठोडा के

मैदान का दृश्य समरांगण की भांति ही लोमहर्षक होता है और जब कोई खिलाड़ी शरों की चोट से आहत होकर क्षेत्र से खेल खेल कर बाहर हो जाता है तो वह अपने समुदाय की हार मानता है।

3. मोण नृत्य : इस क्षेत्र में छोटी-छोटी नदियों के संगम पर पत्थरों की शिलाओं को जोड़कर कृत्रिम जलाशय बना दिए जाते थे जिनमें सुराठ (विशेष प्रकार की कैक्टस जाति का वृक्ष) के दूध अथवा टिम्बर (तिरमिर) की जड़ें, पत्तियां आदि कूट कर बनाए गए पाउडर की मात्रा-विशेष को जलाशय में फैंक दिया जाता था। इसकी मादकता से प्रभावित होकर मच्छलियां जल के ऊपर आ जातीं थीं और संगम के साथ लगने वाले तीनों छोरों के खूंद कबीले आकर अपने-अपने हिस्से की मछलियां बटोर कर ले जाते थे। इस मादक धूली मात्र से मछलियां शुद्ध जल के प्रवाह में चली जाती थीं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् यह त्यौहार कई स्थानों पर लगभग समाप्त कर दिया गया है किन्तु मीनस के स्थान पर, जो हिमाचल के शिमला-सिरमौर ओर उत्तर प्रदेश की सीमा पर पौराणिक तट पर अवस्थित है, आज भी यह त्यौहार पूरी धूमधाम के साथ मनाया जाता है।

इस त्यौहार को मौण उत्सव अथवा 'टिम्बराच़' भी कहा जाता है। सम्भवतः आर्यों के इस क्षेत्र में आगमन से पूर्व इस क्षेत्र में मोण जाति निवास करती थी और यह उन्हीं की प्रथा विशेष का अवशेष है। इस उत्सव में भाग लेने के लिए कोली जाति के लोगों के नेतृत्व में प्रत्येक कबीले का दल मोण उत्सव के स्थल की ओर अपने-अपने कुल देवता/देवी का आशीर्वाद प्राप्त कर निर्धारित समय पर पहुंचने के लिए देवालय से दौड़ता हुआ आता है तथा दल का नेता नागा संन्यासी साधुओं की भांति पूर्णतः नग्न अवस्था में अपने दल को उत्सव स्थल की ओर नाचता हुआ ले जाता है। इस अवसर पर अति अश्लील लोकगीतों के साथ नृत्य किया जाता है तथा हाथ में डण्डे व डांगरे तथा अन्य हथियार लेकर नाचते हुए लोग युद्ध का परिवेश उत्पन्न कर देते हैं और मछलियां पकड़ने की निर्धारित प्रक्रिया में यदि प्राचीन काल में कोई भी कबीला एक भी गलती कर देता था तो उस व्यक्ति का सिर उसी समय धड़ से अलग कर दिया जाता था। इस दशा में उसके कबीले के अन्य लोग अपने कबीले से सदस्य की इस गलती पर कोई भी पुलिस कार्यवाही नहीं करते थे और यदि भूल अथवा चूक से किसी सदस्य पर गलती से प्रहार हो भी जाता था मात्र एक रुपया का दण्ड देकर दोषी को दोष-मुक्त कर दिया जाता था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त इस प्रकार की परम्पराओं को बन्द कर दिया गया है और अश्लीलता प्रदर्शन पर भी स्वाभाविक रूप से कमी आई है।

4. पांजवी वादन : महासू देवता के देवालयों में सभी स्थानों पर ऋषि पंचमी

की रात को देव गाथायें गा-गा कर नृत्य किया जाता है जिसमें हुड़की, दमामा, गुजु, ढोल, नगाड़ा, शहनाई, सारदी, किंदरी आदि सभी वाद्यों का समावेश रहता है। इस अवसर पर प्रायः सभी उपस्थित नर-नारियों को नृत्य में भाग लेना होता है और इस प्रकार कई बार तो एक ही नर्तक पंक्ति (माला) सैंकड़ों गज लम्बी हो जाती है। कलाकार सर्पाकार शैली में मोड़ काटते हुए माला (विशेष नृत्य मुद्रा) में नृत्य करते हैं। वादन की गति इसमें मध्य लय से आरम्भ होकर दुत में समाप्त हो जाती है।

5. चड़ेवली वादन : चड़ेवली मशालों का त्योहार है। भादों की संक्रान्ति को दो गोल पत्थरों की शिलाओं के मध्य मिट्टी का शिवलिंग प्रायः हर घर में स्थापित किया जाता है जिसके ऊपरी भाग पर जौ तथा सूरजमुखी के बीज बो दिए जाते हैं तथा पूरा मास घर के सदस्यों द्वारा उस पर तेलयुक्त लकड़ी का अलाव जलाया जाता है, जिसे 'चीड़ा' कहा जाता है। महीने के पश्चात् चीड़े को गिराने के उपरान्त प्रत्येक घर के लोग एक विशेष स्थान पर एकत्र होते हैं जहां क्षेत्र के हर गांव से जली हुई मशालों के जलूस के जलूस आकर स्थानीय इष्ट देवता के पास अपने-अपने हाथ में मशालें लेकर नृत्य करते हैं जहां लकड़ी के गट्ठों में उन्हें झोंक देते हैं, जिस आवंड़ (अग्निकुंड) कहते हैं। उसके उपरान्त सारी रात आंवड़ या घियाने के चारों ओर नृत्य किया जाता है तथा प्रभातवाला में सीता हरण के लोकगीत के साथ उस रात्रि नृत्य की परिणति होती है। नृत्य के मध्य लोक नाटियो का प्रदर्शन भी किया जाता है, जिन्हें 'स्वांग' अथवा 'खोल' अथवा 'करयाला' कहा जाता है। कई स्थानों पर 'बलदी चड़ेवली' यानि भादों संक्रान्ति का उत्सव आयोजित किया जाता है तथा कई स्थानों पर आश्विन 'ढलदी चडेवली' यानि संक्रान्ति का उत्सव भी आयोजित किया जाता है।

इस अवसर पर जिन ताल वाद्यों का प्रयोग किया जाता है वे हैं—हुड़की, दमामा, भाणा, टणकोरा, गुजु, खंजरी आदि। लोक नृत्यों के समय अधिकांशतः 6 मात्र तथा 8 मात्राओं के लय के साथ ताल बजाये जाते हैं।

6. दीपावली वादन : दीपावली आश्विन अमावस्या को बनाई जाती है। इसे शिमला के ऊपरी क्षेत्रों में नई दीवाली कहते हैं। नई दीवाली के एक मास के बाद बूढ़ी दीवाली मनाई जाती है। नई दीवाली के अवसर पर परम्परागत नृत्य किए जाते हैं तथा बूढ़ी दीवाली के अवसर पर हुड़की, दमामा, भाणा, गुजु, करनाल आदि के साथ अर्द्ध रात्रि के पश्चात् द्रुतलय पर गीत गये जाते हैं, जिनमें अश्लीलता की प्रधानता रहती है तथा नृत्य की भावभंगिमा भी अति शृंगारिक होती हैं। इस अवसर पर ठामरू शैली का नृत्य भी किया जाता है। इसमें हर्षोल्लास से प्रतिनिधि नर्तक एवं एक अन्य एक दूसरे की टांग पर पैर फैलाकर अन्य नर्तकों को चित्त गिराने

का प्रयत्न करते हैं, इसे लंगड़ी कहा जाता है। मालानृत्य दीवाली का विशेष आकर्षण होता है। बूढ़ी दीवाली इस क्षेत्र का विशिष्ट त्योहार है। इस अवसर पर कई स्थानों पर अठारह काण्डों का 'काव' (भोक महाकाव्य) गाने का भी प्रचलन है। निरमण्ड तथा अन्य कुछ गांवों में वह महाकाव्य 'कबेरी' अथवा 'फकीरी' ब्राह्मणों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

लोकानुरंजन वादन

1. **गीह/माला वादन :** किसी भी मांगलिक अवसर पर गांव के लोग गांव के प्रांगण में और देवालय के सामने मालायें (एक दूसरे के हाथ पकड़कर) बनाकर विभिन्न लयों के साथ लोकगीत गाते हुए नृत्य करते हैं।

इस नृत्य को चौपाल में गीह, ठियोग में तथा सोलन के क्षेत्रों में माला व सिरमौर के क्षेत्रों में रासा कहा जाता है। इस अवसर पर प्रचलित वादन शैलियां विभिन्न क्षेत्रों के भिन्न होते हुए भी एकात्मकता की परिचायक हैं। किन्नौर क्षेत्र में इसे क्यांग (कायङ्) नृत्य कहा जाता है। इसमें ढोल, नगाड़ा, हुड़की, खांजरी, शहनाई, करनाल, भाणा, रणसिंगा आदि सभी वाद्यों का प्रयोग अवसरानुकूल किया जाता है तथा बिलम्बित, मध्य और द्रुत तीनों लयों का प्रयोग किया जाता है।

2. **मुज़रा :** मुज़रा घर के भीतर एकत्र होकर किए जाने वाला नृत्य है। इसमें दर्शकगण चारों ओर बैठे होते हैं तथा बीच में नर्तकों के लिए स्थान खाली कर दिया जाता है, जिसस कुछ दूरी पर गोलाकार वृत्त बनाकर वादक तथा गायक बैठे होते हैं। इसमें आमतौर पर ढोलकी, खंज़री, टणकोरा वाद्य ही बजाये जाते हैं और सारदी का भी प्रयोग किया जाता है। इसमें तालियां और ढोलक तथा एक एड़ी को फर्श पर बजाते हुए मुद्रा का भी प्रयोग किया जाता है। नर्तक भी अपनी एड़ियों से फर्श पर पदाघात करता हुआ उसमें सम्मिलित होता है। मुज़रे में हस्तको तथा कटि संचालन करते हुए नर्तक स्वयं भी गाते हुए गीत के शब्दों को नृत्य में ढालकर अभिनय करते हैं। जहां माला नृत्य में सभी नर्तक व्यवस्थात्मक ढंग से सामूहिक तौर पर नाचते हैं वहां मुज़रा में नर्तक जिसमें केवल दो पुरुष अथवा दो स्त्रियां भी हो सकते हैं अथवा एक पुरुष तथा एक महिला भी नृत्य कर सकते हैं। नर्तक अपनी विशिष्ट आंगिक चेष्टाओं तथा नेत्र, भृकुटि एवं पद संचालन को लय के अनुरूप करते हुए उपस्थित दर्शकों को आनन्द प्रदान करते हैं।

इसमें एकहरी तथा दोहरी खंज़री बजाकर विविधता उत्पन्न की जाती है।

3. **हुड़किया नाटी :** हुड़किया नाटी हुड़की, दमामा, टणकोरा आदि वाद्यों के द्रुत ताल पर किया जाने वाला पुरुष प्रधान ताण्डव नृत्य है। इसका मुख्य वाद्य हुड़की अथवा हुड़का, डमरू के प्रकार का बड़ा वाद्य यन्त्र है, जिसके एक ओर चमड़े

पर अंगलियों की थाप पड़ने से एक विशेष प्रकार की गूंज पैदा होती है, जो नज़दीक कम तथा दूरस्थ स्थान पर अधिक रमणीय प्रतीत होती है। इसे 'ताऊली नाटी' भी कहा जाता है।

4. ठोडा नृत्य : नगाड़ा, ढोल, करनाल, रणसिंगा आदि के साथ विलम्बित, मध्य तथा द्रुत लय पर 12 मात्राओं की ताल के साथ नाचा जाने वाला यह सामरिक नृत्य-नाट्य है, जिसे मुख्यतः बिशु के अवसर पर अभिनीत किया जाता है। इसमें जब किसी खिलाड़ी का तीर अपने प्रतिद्वन्द्वी पर ठीक निशाने पर जा लगता है तो वह विशेष हर्षोल्लास करता हुआ अपने प्रतिद्वन्द्वी को ललकारता है और विजय के उन्माद में हाथ में डांगरा लेकर नाचता है। यह एक प्रकार का युद्ध नृत्य है।

(घ) सांस्कारिक वादन

1. जन्मोत्सव का नृत्य : जन्म के अवसर पर गांव का सारा समाज पिता को बधाई देने के लिए उसके घर पर एकत्र होता है और वहां शहनाई, ढोल, नगाड़ा, करनाल, आदि वाद्य यन्त्रों के साथ बधाई बजाई जाती है, जिसे 'शंटु' भी कहते हैं। यह ताल 28 मात्रा में बजाया जाता है और इसमे विभिन्न लयकारियों, परनों, तिहायिओं का मिश्रण रहता है। इस अवसर पर मुज़रा तथा लुड्डी नृत्य किए जाते हैं। कराल ताल (8 मात्राएं) भियाई ताल (16 मात्रायें) जंग ताल आदि भी संस्कारों से सम्बन्धित ताल हैं।

2. विवाह उत्सव वादन एवं नृत्य : विवाह के अवसर पर मांगलिक वाद्यों शहनाई, ढोल, नगाड़ा, करनाल आदि की ताल पर विभिन्न मात्राओं एवं छन्दों के लोकगीत गाये जाते हैं। इस अवसर पर दोनों पक्षों से संगीतज्ञों में वाद-विवाद प्रतियोगिता भी होती है, जिसे ज़ोडी-भारत भी कहते हैं। इसमें 16 मात्राओं तथा 14 मात्राओं की आड़ वियाड़, कुआड़ में वादन किया जाता है। जिसमें विभिन्न लयकारियां तथा लग्गियां, वीयों, मोहरों के साथ प्रयोग की जाती हैं। नगाड़ा और ढोल ही युगलबंदी 'जोड़ी-भरत' का प्राण होते हैं लेकिन इसमें स्वर सामंजस्य के लिए शहनाई का प्रयोग भी किया जाता है।

शिवालिक क्षेत्रों में इस अवसर पर पड़वा नृत्य भी किया जाता है जिसमें मात्र महिलायें भाग लेती है तथा ढोलक की थाप पर एक-एक अथवा दो-दो की जोड़ी में विभिन्न भावभंगिमाओं में नृत्य करती हैं। कांगड़ा क्षेत्र में झमाकड़ा तथा ऊना में गिद्धा भी विवाह के अवसर के नृत्य हैं।

3. मरणोपरांत पर वादन : इसे स्थानीय भाषा में मड़ाव कहते हैं। यह पूर्णतः निषिध ताल है जो मांगलिक तालों से उल्टा बजाया जाता है। इस ताल पर मात्र ढोल का ही प्रयोग किया जाता है और घर से बाहर जैसे ही मृत व्यक्ति का शव

देवदार की लकड़ी के बने संदूक (फड़की) रखकर चार व्यक्ति कन्धा देते हैं वैसे ही इस ताल का वादन आरम्भ कर दिया जाता है तथा शमशान पहुंचने पर जब कन्धों पर से शव को उतारते हैं तो वादन बंद कर दिया जाता है। मृत्यु के अवसर पर गायन अथवा नृत्य का प्रचलन नहीं है परन्तु अनेक स्थानों पर पर्याप्त आयु के पश्चात् मृत्यु को शुभ माना जाता है। किन्नौर में फुल्याच उत्सव के अवसर पर मृत्यु सम्बन्धी गीत 'गितकारेस गीथङ' गाए जाने का प्रचलन है तथा मण्डी क्षेत्र में भी इस प्रकार के गीतों व वादन का प्रचलन रहा है। गीतहंस ताल, जिसे फट्ताल भी कहा जाता है, मृत्यु के समय दो प्रकार के बजाया जाता है। पहला प्रकार अर्थी की तैयारी तथा दूसरा ताल छः मात्राओं में श्मशान घाट पर बजाया जाता है।

4. आखेट : प्राचीनकाल में जैसे ही पहाड़ियों पर 2-3 फुट बर्फ पड़ जाती थी तो स्थानीय सभी नौजवान व्यक्ति लोईया, सुथण, खुरश तथा खुरशे पहनकर डींगा (दराट) आदि लेकर सघन जंगलों की ओर निकल पड़ते थे वहां वे विभिन्न वन्य जीवों का आाखेट करते थे, जिसे 'आड़' अथवा आहड़ कहते थे। इसमें बन्दूक का प्रयोग प्रतिबन्धित था और जब आखेट करने के उपरान्त दल गांव की ओर रवाना होता था तो आखेट को बांटने के उपरान्त शिकारी लिम्बर लगाते हुए वापिस आते थे, जिसमें ढोल तथा खंजरियों की ताल पर हर्ष प्रदर्शित करने हेतु विशेष ताल में द्रुत लय के गीत गाये जाते थे जिसे 'लिम्बर' शैली में रखा जाता है। किन्नौर में प्रचलित बोर्चो नाटी के नृत्य व लोकगीत इसी श्रेणी में आते हैं। किन्नौर में बाघ का शिकार करने वाले शिकारी के सिर पर पगड़ी बांधकर उसे गांव-गांव ससम्मान घुमाया जाता है तथा गांव के लोग बोर्चो नाटी के गीत गाते हैं। इनमें 'सिंह राजा बेटा' अर्थात मृत बाघ की कहानी तथा वीर शिकारी की दक्षता की गाथा गाई जाती है।

5. आक्रमण सूचना वादन : पहाड़ी क्षेत्रों में जब भी किसी ओर से लुटेरे अथवा आक्रमणकारी आते थे तो एक धार से दूसरी धार तक संदेश पहुंचाने के लिए विभिन्न संकेत निर्धारित किए जाते थे और उसी के अनुसार नगाड़े पर चोट करके ताल संकेत सम्प्रेषित किए जाते थे और राज्य की राजधानी तक कुछ ही मिनटों में सूचना पहुंच जाती थी। इन ता संकेतों को 'नबद' कहा जाता था। नबद विभिन्न राज्य प्रमुखों द्वारा विभिन्न तालों पर आबद्ध करवाया जाता था। राज परिवार में जब किसी शिशु का जन्म होता था या किसी की मृत्यु होती थी तो अलग-अलग ताल प्रकारों में अबद्ध नबद के माध्यम से संदेश पूरी प्रजा को कुछ मिनटों में ही भेज दिया जाता था ताकि हर्ष के अवसर पर समस्त साम्राज्य में खुशियां मनाई जाए और शोक की स्थिति में मातम मनाया जाए जिसे 'ठेक' कहा जाता था। इसी प्रकार राजा को जब युद्ध अथवा विपत्ति के अवसर पर बेगार की

आवश्यकता पड़ती तो भी विशिष्ट ताल संकेतों के माध्यम से प्रजा को बुलाया जाता था।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि विभिन्न लोकतालों व वाद्य यन्त्रों का प्रचलन हिमाचल प्रदेश के जनजीवन का महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक आधार है। वैदिक काल की स्वर लहरियों का प्रयोग ग्राम देवताओं के गूरों तथा पुरोहितों द्वारा अनुष्ठानों के अवसरों पर अब भी किया जाता है। लोक वाद्यों के रख-रखाव तथा वाद्य वादन की परम्पराएं ग्राम देवताओं द्वारा निरीक्षित तथा संरक्षित रहती है और अनेक गांवों में पालकियों में ग्राम देवता अपने बजन्तरियों की लय तालों का वार्षिक निरीक्षण भी करते हैं। बौद्ध धर्म के अन्तर्गत किन्नौर व लाहुल-स्पिति क्षेत्रों मे वाद्य यन्त्रों तथा तालों पर भोटी प्रभाव है। किन्नौर का क्षेत्र उत्तर प्रदेश की सीमा से सटा हुआ है अतः किन्नरों के ताल वाद्यों का अध्ययन उत्तर प्रदेश के मारछा, माणा, भोट आदि समुदायों की परम्पराओं के साथ किया जाना समीचीन व युक्तिसंगत होगा।

(क) साज का विवरण

1. **नगाड़ा** : नगाड़ा लकड़ी, लोहे, पीतल तथा चांदी के खोल का बना होता है जो ऊपर से चौड़ा तथा नीचे से संकरा होता है जिस पर चमड़े की खाल मढ़ी होती है और मज़बूत चमड़े की बेत से बुना हुआ होता है। यह हिमाचल प्रदेश के लगभग सभी क्षेत्रों में बनाया जाता है। यह वाद्य यन्त्र प्रायः जोड़ी के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। बायें नगाड़े को दमामा तथा द्रायें नगाड़े को तार कहते हैं। यह भैंस के चमड़े से मढ़ा जाता है। यह चमड़े की डोरी जिसे बेत कहते हैं, से कसा जाता है। इसे लकड़ी की छड़ियों से बजाया जाता है। इन छड़ियों को 'बैणे' कहा जाता है। प्राचीन काल में दुंदुभी के नाम से जाना जाता था। इसका स्थानीय नाम 'धौंसा' भी है।

2. **ढोल** : यह लकड़ी, पीतल, तांबें या चांदी का बना होता है। यह आम, आक, सानन आदि की लकड़ी से भी बनाया जाता है। यह गोलाकार बड़ा खोल होता है। इसमें पूड़े बकरी के खाल के होते हैं तथा सूत की रस्सियों से मढ़ा हुआ होता है जिसकी एक तरफ की आवाज़ बारीक होती है और दूसरी तरफ की मोटी होती है। जिसके अन्दर गुगल व स्याही का लगा मिश्रण मोटी आवाज पैदा करता है। यह आमतौर पर गले में रस्सी डाल कर बजाया जाता है। यह शिमला जिले के रोहडू तहसील व ठियोग में महासू पडारन चौपाल में धबास में भी बनाया जाता है। इसे बजाने के लिए दो छड़ियां प्रयोग में लाई जाती हैं। इस वाद्य का प्रयोग शहनाई, नगारा तथा अन्य वाद्यों के साथ भी किया जाता है। ढोल अवनद्ध वाद्य

है। इसके दोनों भागों को क्रमशः नर तथा मादा कहा जाता है। इसके दायीं ओर को मादा तथा बाईं ओर को नर भाग कहा जाता है। नर भाग के लिए मुड़ी हुई तथा मादा भाग के लिए सीधी छड़ी 'वायणे' का प्रयोग किया जाता है। ढोल को गले में रस्सी से लटका कर बजाने में सुविधा होती है।

3. करनाल : यह चांदी तथा पीतल का बना हुआ होता है। अन्दर से खाली होता है। इसके दो भाग होते हैं। पिछला भाग पतला तथा आगे का अपेक्षाकृत मोटा होता है। पिछले भाग को सिक्का कहते हैं। दूसरा भाग हार्न की तरह चौड़ा होता है। इससे आवाज में गूंज पैदा होती है। इन दोनों भागों को जोड़ दिया जाता है। यह भी ऊपर लिखित स्थानों में बनाया जाता है। यह फूंक मार कर बजाया जाता है। यह नलिका अथवा सारस की गर्दन के आकार का होता है।

4. रणसिंगा : यह पीतल या तांबे का बना होता है। इसके भी दो भाग होते हैं और यह अन्दर से खोखला होता है। इसका निचला भाग अर्द्धव्यास में मुड़ा होता है तथा दूसरा भाग पहले से कुछ चौड़ा होता है। यह विपरीत अर्द्धव्यास में मुड़ा होता है। इन दोनों भागों को जोड़कर बजाया जाता है। यह भी ऊपरलिखित स्थानों पर बनाया जाता है। इसका आकार अंग्रेजी के "S" की तरह होता है।

5. हुड़की : यह लकड़ी की बनी होती है। इसका बीच का भाग कमर की तरह पतला होता है। इसे यहां से हाथ से पकड़ा जा सकता है। इसके दोनों सिरे चौड़े होते हैं। यह डमरू से तनिक लम्बा वाद्य यन्त्र होता है। यह बीच से खाली होता है। इस पर बकरे की खाल के पूड़े रस्सियों से इस तरह चढ़ाये जाते हैं कि यह उन्हें हिलने से बजती है और गमक पैदा करती है। इसे चौपाल, सतोता तथा ठियोग में कलगांव में बनाया जाता है। इसे सिरमौर में भी बनाया जाता है।

6. दमामा : यह एक छोटा नगाड़ा होता है, जो कड़ाही की तरह लोहे के खोल का बना होता है। इस पर चमड़े की पतली खाल मढ़ी जाती है और इसे चमड़े की ही बेत से बुना जाता है। इसे दो लकड़ी की छड़ियों से बजाया जाता है। इन्हें दमामठी कहा जाता है। यह भी उन्हीं स्थानों पर बनता है जहां नगाड़े बनाए जाते हैं।

7. भाणा : यह कांसे का बना होता है। यह पीछे से गोल तथा आगे से गोलाई में सीधा होता है। इसकी आगे की सतह लगभग अढ़ाई या तीन इंच चौड़ी होती है और यह गोलाकार में होता है। ये दो बनाए जाते हैं और दोनों में कांसे के पिछले हिस्सों में छेद किए जाते हैं जिनमें रस्सी बांधी जाती है ताकि दोनों को एक-दूसरे पर चोट करने से झंकार पैदा हो। इसे किन्नौर में बुगजाल कहते हैं। यह प्रायः देव मन्दिरों में ही होता है और विशेषकर ढोल, करनाल, नगाड़ा और रणसीगां के साथ प्रयोग किया जाता है।

8. टणकोरा : यह कटोरीनुमा वाद्य यन्त्र कांसे या पीतल का होता है। इसका पैंदा कुछ थोड़ा ऊंचा होता जिससे आवाज में फर्क न पड़े। इसे लकड़ी की छड़ी से बजाया जाता है। मुंज़रा तथा माला में भी प्रयोग किया जाता है।

9. खंज़री : यह लकड़ी के तीन इंच मोटे टुकड़े तथा 20 इंच वृत्ताकार की बनी होती है और इसे बीच से काट दिया जाता है। इसकी मोटाई 1/4 इंच के करीब रखी जाती है ताकि इसे हाथ में पकड़ा जा सके और एक तरफ इसमें बकरे की खाल का पतला पुड़ा चढ़ाया जाता है तथा इसमें 2 इंच लम्बा और 1/5 इंच चौड़ा छेद कर दिया जाता है, जिसमें दो पीतल की तालियां कील से लगा दी जाती हैं जो झंकार पैदा करती है। यह छलनी की आकार की होती है और इसमें झंकार उत्पन्न करने के लिए धातु के छोटे टुकड़े किनारों पर लगाए जाते हैं।

10. गुज्जु : यह भी लकड़ी और खाल का गोलाकार वाद्य यन्त्र है। यह छोटी ढोलक की तरह बना होता है। मगर इसकी बीच की गोलाई कम होती है। इसके दोनों ओर पतली सूत की रस्सियों से बकरे की खाल के पूड़े चढ़ाये जाते हैं। यह एक तरफ से लकड़ी की छड़ी से बजता है और दूसरी ओर हाथ की ऊंगली से।

11. शहनाई : शहनाई को लोक भाषा में नफीरी तथा सनाई कहा जाता है। यह लकड़ी की एक पौरी की भांति होती है। यह शास्त्रीय वाद्य शहनाई से लम्बाई में छोटी होती है। इसमें सात सुरों के छेद और मुंह से बजने वाला पत्ता भी शास्त्रीय शहनाई की तरह का ही होता है।

12. ढोलकी या ढोलक : यह लकड़ी का गोलाकार खोखला वाद्य यन्त्र है। यह बीच से उभरा हुआ तथा साइडों से कुछ कम चौड़ा होता है। यह बीच से खाली होता है। ढोल दो आकारों के होता हैं। ढोलकी हाथ से बजाई जाती है। यह बीच से खाली होती है। यह मुख्यतः मुंज़रे में प्रयुक्त होती है। इसका आकार छोटा होता है तथा जो छटी बैणे से बजाई जाती है उसका आकार बड़ा होता है। इस पर भी बकरे के खाल के पूड़े सूत की रस्सियों से चढ़ाये जाते हैं। इसकी एक तरफ की आवाज मोटी होती है उसे अन्दर के हिस्से में गुगल तथा राल धूप लगाया जाता है। इससे इसमें गमक पैदा होती है। इसे सुर में करने के लिए सूत की दो रस्सियों में एक पतला लोहे का रिंग लगाया जाता है। यह भी सभी स्थानों पर बनाई जाती है।

13. दुतारी या किंदरी : यह लकड़ी की बनी होती है। इसका आकार सारंगी की तरह ही होता है। सारंगी में ज्यादा तारें होती है इसलिए उसका अगला हिस्सा चौड़ा होता है और दुतारी में केवल चार तारें ही होती हैं इसलिए उसका अगला हिस्सा कम चौड़ा होता है और अगले हिस्से के सिरे में चार खूंटियां लगी होती हैं जिनसे तारें स्वर में मिलाई जाती हैं। जिस सिरे में खूंटियां होती है वह घोड़े तथा

शेर के मुंह के आकार में कुछ मुड़ा हुआ बना होता है। इसे गज़ से बजाया जाता है जो धनुष के आकार में पतली लकड़ी का बना होता है। इसके बाल भांग के छिलके के बने होते हैं। यह किन्नौर में बनाई जाती है। चौपाल क्षेत्र के देव मंदिरों में भी यह उपलब्ध है।

14. सारदी : सारदी की लकड़ी लम्बाई में होती है। उसके पिछले हिस्सें में मोटा तूंबा होता है तथा ऊपर वाले हिस्से पर बकरे की खाल मढ़ी होती है तथा उस पर एक लकड़ी की छोटी सी बृज लगाई जाती है और तूम्बे के पीछे कील लगी होती है। उसमें तार का पहला सिरा बंधा होता है। तार का दूसरा सिरा गोलाकार लकड़ी के साथ खूंटें से बांधा जाता है और उसे (एक ऊंगली से) तर्जनी से छेड़ा जाता है। यह हिमाचल प्रदेश के प्रायः सभी स्थानों पर बनायी जाती है।

15. रूबाना : सरोद की तरह रूबाना केवल लकड़ी का ही बना होता है। इसके अगले सिरे पर भी चार खूंटियां होती हैं और चार ही तारें होती हैं। इसके पिछले सिरे पर बकरे की खाल मढ़ी होती है। यह लकड़ी की पत्ती से ही बजाया जाता है। यह केवल चम्बा में ही बनाया जात्ता है।

लकड़ी के वाद्य यन्त्र शीशम या अखरोट की लकड़ी से ही बनाने का प्रचलन है।

(ख) प्रदर्शन का विवरण

1. नगाड़ा : इसे दो प्रकार से बजाया जाता है। यदि विवाहोत्सव या जात्र हो तो नगाड़ा एक आदमी की पीठ पर रखा जाता है तथा इसे दो छड़ियों जिन्हें, नगारियां या बैणियां कहा जाता है से या फिर बैठकर बजाया जाता है। नगाड़ों को उसके दोनों किनारों को मिलाया रखा जाता है। एक नगाड़े का स्वर बारीक होता है और दूसरे का मोटा। उन्हें नगारठियों या बैणियों से विभिन्न लयकारी में बजाया जाता है।

2. ढोल : यह विशेषतया खड़े होकर ही बजाया जाता है। इसे लकड़ी की पतली छड़ियों से बजाया जाता है जिन्हें छटी बैणी कहा जाता है। इसे गले में लटकाकर दायें-बायें के हिसाब से बजाया जाता है।

3. करनाल : इसे फूंक द्वारा बजाया जाता है। एक हाथ से सिक्का वाला हिस्सा तथा दूसरे से अगला हिस्सा पकड़कर बजाया जाता है। इसमें दो स्वरों का मेल तान शैली के साथ किया जाता है। इसे पहले तार सप्तक से शुरू किया जाता है और फिर मध्य सप्तक के सा पर तान का और आन्दोलन सहित फूंक द्वारा लाया जाता है। जिस लय में ढोल, नगारा बज रहे हों उसी लय में करनाल बजाई जाती है। इसकी ध्वनि बड़ी कर्णप्रिय होती है। इसे बजाने के लिए विशिष्ट श्वास प्रक्षेपण कौशल की आवश्यकता होती है।

4. रणसिंगा : इसे भी फूंक से करनाल की ही तरह बजाया जाता है। इसमें तीन सुरों का प्रयोग होता है। यह मध्य से केन्द्र तथा फिर सप्तक के सा तक फूंक द्वारा कुहुक की सी आवाज में बजाया जाता है।

5. हुड़की : यह कंधे पर लटका कर बजाई जाती है। इसके बजाने का विशेष ढंग है जिसे कुशल वादक ही बजा सकता है। इसे हाथ से एक ओर से ही बजाते हैं परन्तु बजाते हुए दूसरे हाथ से इसको हिलाने का विशेष ढंग है जिसे बहुत ही भली गूंज पैदा होती है। इसके साथ जिस्म को भी उसी आवाज़ व लय से हिलाना पड़ता है। यह साज़ द्रुत गति का ही है।

6. दमामटु : इसे गले में लटका कर दो दमामठियों (छड़ियों) से बजाया जाता है। इसे विशेषकर तार सप्तक में ही रखा जाता है। दमामटु हुड़की की संगीत के लिए बजाया जाता है। यह हुड़की के साथ इस प्रकार साथ देता है जैसे तबला और हुड़की दामे का साथ देता है जिससे यह बहुत ही कर्णप्रिय हो जाता है।

7. भाणा : इसे विशेषतः ढोल, करनाल, नगाड़ा के साथ संगत के लिए बजाया जाता है। इसका कटोरानुमा हिस्सा एक हाथ में पकड़ा जाता है और दूसरे से चोट की जाती है जिससे झंकार पैदा होती है। इसके दोनों हिस्सों में रस्सी बंधी होती है। जिससे चोट करने में आसानी रहती है।

8. टणकोरा : टणकोरा लकड़ी की छड़ी से बजाया जाता है। लकड़ी की छड़ी की चोट ऊपर किनारे पर या साइड में लगाई जाती है, जिससे एक विशेष खनक पैदा होती है। इसका प्रयोग अधिकतर मुंज़रा और माला में ढोल और खंज़री के साथ संगत के लिए किया जाता है।

9. खंज़री : खंज़री को दोनों हाथों से बजाया जाता है। एक हाथ लकड़ी के खोल और पूड़े पर इस तरह रखा जाता है कि उसकी उंगलियों पूड़े के किनारे को दबाती रहें और दूसरे हाथ से उंगलियों से पूरी खंज़री पर ताल बजाया जाता है जिससे गूंज पैदा होती है और तालियों से झंकार। खंजरी बैठकर और खड़े होकर बजाई जाती है। जोगी लोग अपनी पहाड़ी शैली में लोक गाथायें खंजरी के साथ गाते हैं। इसका प्रयोग मुंज़रा, लामण आदि में भी किया जाता है।

10. गुज्जु : गुज्जु को एक तरफ से बैणे से अर्थात् लकड़ी की छड़ी से बजाते है तथा दूसरी तरफ से ऊंगली से रगड़ देते हैं जिससे बहुत ही विचित्र गूंज पैदा होती है। इसे भी गले में लटकाकर बजाया जाता है। यह हुड़की, दमामा, टणकोरा आदि है साथ प्रयुक्त किया जाता है।

11. शहनाई : यह शास्त्रीय शहनाई की तरह ही उंगलियों को संचालन तथा पत्ते से फूंक देकर बजाई जाती है परन्तु इसका चलन शास्त्रीय शहनाई से अलग होता है। यह लोकगीतों के लिए उपयुक्त वाद्य है।

12. ढोलकी या ढोलक : इसे दोनों हाथों से बजाते हैं। मोटी आवाज़ वाले हिस्से को हथेली की रगड़ से तथा बारीक आवाज़ वाले हिस्से को दो उंगलियों से बजाते हैं। इसे अधिकतर मुंज़रे, पड़ुए में प्रयोग किया जाता है। बड़े आकार की ढोलक को छड़ी अथवा बैणे से बजाया जाता है। यह विशेषतः नगाड़े के साथ संगत के लिय प्रयुक्त होता है।

13. दुतारी या किंदरी : इसे धनुष अकार गज से बजाया जाता है। जिसे भांग की रस्सी के बारीक धागे में लयबद्ध तरीके की रगड़ से चलाया जाता है और दूसरे हिस्से पर, जो आगे से कम चौड़ा होता है, तारों पर बायें हाथ की उंगलियों से धुन विशेष को बजाया जाता है। इसकी आवाज़ सारंगी अथवा वायलन की तरह होती है। इसे गायन के साथ ही संगत के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

14. सारदी : दायें हाथ की तर्जनी उंगली से तुम्बे वाले हिस्से पर सारदी के तारे को इस तरह छेड़ा जाता है कि उसमें उंगली के नाखून और नाखून के निचले हिस्से का लय का आघात सुसम्बद्ध तरीके से हो ताकि उस स्वर से गायक अपना गीत सुचारू रूप से गा सके। इसके साथ का गायन विशेषकर गाथाओं, लोक भजनों के लिए होता है।

15. रूबाना : इसकी तारों पर दायें हाथ में लकड़ी की पत्ती को पकड़ कर बैंजो और गिटार की तरह आघात करते हैं तथा बायें हाथ की उंगलियों से रूबाना के अगले सिरे से धुन विशेष का संचालन किया जाता है। इसमें सुर और ताल मिलते हैं। इसे भी गायन के साथ प्रयुक्त किया जाता है। इसकी आवाज़ गिटार व सरोद की तरह होती है।

■ ■ ■

हिमाचल प्रदेश का लोक संगीत

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी